श्रीमातृवाणी

माताजी के वचन

I

श्रीअरविन्द आश्रम, पॉण्डिचेरी

माताजी के वचन

I

श्रीमाताजी

माताजी के वचन

I

श्रीअरविन्द आश्रम
पॉण्डिचेरी

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा प्रकाशित १९८१
श्रीअरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित
प्रथम संस्करण (संशोधित) २००९
संशोधनकर्त्री : सन्तोष गुप्ता

Rs 190

ISBN 978-81-7058-906-8

© श्रीअरविन्द आश्रम ट्रस्ट २००९
प्रकाशक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पॉण्डिचेरी ६०५ ००२
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

Mataji ke Vachan - I (Hindi)
Words of the Mother - I by the Mother

Published by Sri Aurobindo Society 1981
First published by
Sri Aurobindo Ashram Publication Department 2009

© Sri Aurobindo Ashram Trust 2009
Published by Sri Aurobindo Ashram Publication Department
Pondicherry 605 002
Web http://www.sabda.in

Printed at Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry
PRINTED IN INDIA

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस खण्ड में मुख्यतया श्रीअरविन्द के बारे में, अपने बारे में, श्रीअरविन्द आश्रम, ओरोवील, भारत और भारत से इतर राष्ट्रों के बारे में माताजी के संक्षिप्त लिखित वक्तव्य हैं। सन् १९१४ से १९७३ तक के लगभग साठ वर्ष के अन्तराल में लिखे ये वक्तव्य उनके परिपत्रों, सन्देशों और शिष्यों के साथ पत्रव्यवहार से संकलित किये गये हैं। इनमें से लगभग साठ प्रतिशत अंग्रेजी में लिखे गये थे, शेष फ्रेंच में।

खण्ड में अनेक वार्ताएं भी दी गयी हैं। वे अधिकतर ओरोवील वाले भाग में संग्रहीत हैं। एक वार्ता को छोड़कर शेष सब फ्रेंच में दी गयी थीं। माताजी की टिप्पणियों के कुछ मौखिक विवरण भी हैं। ये विवरण कुछ शिष्यों ने स्मृति के आधार पर लिख लिये थे और बाद में प्रकाशन के लिए माताजी को दिखाकर उनकी अनुमति ले ली गयी थी। ये सब माताजी ने अंग्रेजी में कहे हैं। इन विवरणों के आगे यह चिह्न † दिया गया है।

खण्ड को विषयानुसार छः भागों में सजाया गया है। हर भाग में कई उपविभाग हैं। उपविभागों में तारीखवाले वक्तव्यों को कालक्रमानुसार रखा गया है और बिना तारीखवालों को विषयानुसार।

ध्यान रहे कि अधिकतर वक्तव्य अमुक व्यक्तियों को अमुक परिस्थितियों में लिखे गये थे। इनके द्वारा दिया गया सन्देश सब पर लागू नहीं भी हो सकता।

विषय-सूची

भाग १ : श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द ३
महासमाधि ६
चिरन्तन उपस्थिति १०
शताब्दी १४
कार्य और शिक्षा २२
प्रकीर्ण २८
श्रीअरविन्द और माताजी ३३

भाग २ : माताजी

माताजी ३७
बाह्य जीवन ४३
कार्य और शिक्षा ४७
शरीर की साधना ५५
आशीर्वाद ६१
प्रकीर्ण ६३
दूसरों के साथ संबंध ६८
"मैं तुम्हारे साथ हूं" ६८
"मेरे निकट होना" ७९
शारीरिक सामीप्य ८०
पथ-प्रदर्शक की भूमिका ८३
"जो चाहो करो" ८७
"मैं नाराज नहीं हूं" ९०
काम का तरीका ९४
अफवाहें १००
प्रत्यादेश १०४

भाग ३ : श्रीअरविन्दाश्रम

श्रीअरविन्दाश्रम १११
प्रवेश की शर्तें ११७
उचित आचार-व्यवहार १२१
राजनीति नहीं १२६
सुख-सुविधाएं १३४
आश्रम में आना १३८
आश्रम से जाना १४६
आश्रम से बाहर के लोगों के साथ संबंध १५५
वित्त और मितव्ययिता १६०
व्यवस्था और कार्य १६५
वैतनिक कर्मचारी १८१
प्रकीर्ण १९२

भाग ४ : ओरोवील

लक्ष्य और नियम-सिद्धांत २०१
मातृमंदिर २४१
कम्यूनिटी-संबंधी कामकाज २४६
सर्वसामान्य २४६
सामाजिक नियम २५५
स्थानीय गांववालों के साथ संबंध २६१
वित्तीय व्यवस्था २६७
पहले की वार्ताएं २७२
मातृमंदिर के बारे में ३०१
'ऐस्पिरेशन' वालों के साथ वार्ताएं ३३७
३० मार्च, १९७२ की वार्ता ३७७

भाग ५ : भारत

भारत ३८१

भाग ६ : भारत से इतर राष्ट्र

भारत से इतर राष्ट्र ४१३

Do not take my words for a teaching. Always they are a force in action, uttered with a definite purpose, and they lose their true power when separated from that purpose.

मेरे वचनों को एक शिक्षा के रूप में न लो। वे हमेशा क्रियाशील शक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहा जाता है और उन्हें उस उद्देश्य से अलग कर दिया जाये तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो बैठते हैं।

—श्रीमां

भाग १

श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द

(२९ मार्च को श्रीअरविन्द से पहली बार मिलने के बाद अगले दिन माताजी ने अपनी दैनन्दिनी में भगवान् को सम्बोधित करते हुए लिखा :)

अगर हजारों लोग घने-से-घने अंधकार में धंसे हुए हैं तो कोई परवाह नहीं। जिन्हें हमने कल देखा वे तो धरती पर हैं; उनकी उपस्थिति इस बात को सिद्ध करने के लिए काफी है कि वह दिन आयेगा जब अंधकार प्रकाश में बदल जायेगा, और तेरा राज्य सचमुच धरती पर स्थापित होगा।

हे प्रभो, इस चमत्कार के 'दिव्य रचयिता'! जब मैं इस विषय में सोचती हूं तो मेरा हृदय आनन्द और कृतज्ञता से उमड़ने लगता है, और मेरी आशा की कोई सीमा नहीं रहती।

मेरी आराधना शब्दातीत है और मेरी श्रद्धा नीरव।

३० मार्च, १९१४

*

What Sri Aurobindo represents in the world's history is not a teaching, not even a revelation; it is a decisive action direct from the Supreme

जगत् के इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, वह कोई अन्त:प्रकाश भी नहीं है; वह है सीधे परम पुरुष से आयी निर्णायक क्रिया।

१४ फरवरी, १९६१

*

('आकाशवाणी', तिरुचिरापल्ली से प्रसारण के लिए दिया गया सन्देश)

श्रीअरविन्द धरती की आध्यात्मिक प्रगति के इतिहास में जिस चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, कोई अन्त:प्रकाश भी नहीं है; वह है सीधी परम पुरुष से आनेवाली एक महती क्रिया।

१५ अगस्त, १९६४

*

(श्रीअरविन्द की स्मृति में छपने वाले डाक-टिकट के जारी करने के समय दिया गया सन्देश)

वे धरती को यह आदेश देने आये हैं कि वह अपने प्रकाशमय भविष्य के लिए तैयारी करे।

१५ अगस्त, १९६४

*

श्रीअरविन्द जगत् के लिए दिव्य भविष्य का आश्वासन लाये।

*

श्रीअरविन्द धरती पर पुराने मतों अथवा पुरानी शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिए कोई शिक्षा या मत लाने के लिए नहीं आये हैं, वे अतीत को पार करने का तरीका दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य के लिए सुस्पष्ट मार्ग बनाने आये हैं।

२२ फरवरी, १९६७

*

श्रीअरविन्द अतीत के नहीं हैं और न ही इतिहास के।

श्रीअरविन्द वह 'भविष्य' हैं जो चरितार्थ होने के लिए आगे बढ़ रहा है।

अतः हमें द्रुत प्रगति के लिए आवश्यक चिर यौवन को प्रश्रय देना चाहिये ताकि हम रास्ते पर फिसड्डी न बन जायें।

२ अप्रैल, १९६७

महासमाधि

Lord, this morning Thou hast given me the assurance that Thou wouldst stay with us until Thy work is achieved, not only as a consciousness which guides and illumines but also as a dynamic Presence in action. In unmistakable terms Thou hast promised that all of Thyself would remain here and not leave the earth atmosphere until earth is transformed. Grant that we may be worthy of this marvellous Presence and that henceforth everything in us be concentrated on the one will to be more and more perfectly consecrated to the fulfilment of Thy sublime Work.

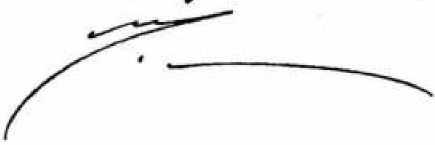

हे प्रभो, आज प्रातः तूने मुझे यह आश्वासन दिया है कि जब तक तेरा कार्य संपन्न नहीं हो जाता, तब तक तू हमारे साथ रहेगा, केवल एक चेतना के रूप में ही नहीं जो पथ-प्रदर्शन करती और प्रदीप्त करती है बल्कि कार्यरत एक गतिशील 'उपस्थिति' के रूप में भी। तूने अचूक शब्दों में वचन दिया है कि तेरा सर्वांश यहां विद्यमान रहेगा और पार्थिव वातावरण को तब तक न छोड़ेगा जब तक पृथ्वी का रूपान्तर नहीं हो जायेगा। वर दे कि हम इस अद्‌भुत 'उपस्थिति' के योग्य बन सकें, अब से हमारे अन्दर की प्रत्येक वस्तु तेरे उदात्त कार्य को पूर्ण करने हेतु अधिकाधिक परिपूर्णता से समर्पित होने के एकमात्र संकल्प पर एकाग्र हो।

७ दिसम्बर, १९५०

*

श्रीअरविन्द ने अपने शरीर के बारे में जो निर्णय किया उसके लिए बहुत हद तक धरती और मनुष्यों में ग्रहणशीलता का अभाव जिम्मेदार है। लेकिन एक चीज निश्चित है : भौतिक स्तर पर जो कुछ हुआ है उसका असर किसी तरह से भी उनकी शिक्षा के सत्य पर नहीं पड़ता। उन्होंने जो कुछ कहा है वह सब पूरी तरह सत्य है और सत्य ही बना हुआ है। समय और घटनाक्रम इसे पर्याप्त रूप में सिद्ध करेंगे।

८ दिसम्बर, १९५०

*

तुम्हारे प्रति जो हमारे प्रभु के भौतिक आवरण रहे हो, तुम्हारे प्रति हमारा असीम आभार है। तुमने हमारे लिए इतना कुछ किया, हमारे लिए कर्म किया, संघर्ष किये, कष्ट झेले, आशा की, इतना सहन किया, तुमने हम सबके लिए संकल्प किये, प्रयत्न किये, तैयार किया, हमारे लिए सब कुछ प्राप्त किया, तुम्हारे आगे हम नतमस्तक हैं और यह प्रार्थना करते हैं कि हम एक क्षण के लिए भी कभी तुम्हारे ऋण को न भूलें।

९ दिसम्बर, १९५०

*

शोक करना श्रीअरविन्द का अपमान है, वे हमारे साथ यहां सचेतन और जीवित रूप में विद्यमान हैं।

१४ दिसम्बर, १९५०

*

हमें प्रतीतियों से चकरा नहीं जाना चाहिये। श्रीअरविन्द ने हमें छोड़ा नहीं है। श्रीअरविन्द यहां हैं, शाश्वत काल तक जीवित और विद्यमान। अब यह हमारे जिम्मे है कि उनके काम को उसके लिए आवश्यक पूरी सच्चाई, व्यग्रता और एकाग्रता के साथ संपन्न करें।

१५ दिसम्बर, १९५०

*

तुम यहां आश्रम में जो पुस्तिका बांट रहे हो उसका अनुवाद सुनकर मुझे बड़ा दुःखद धक्का लगा। मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि हमारे प्रभु के लिए, जिन्होंने हमारे लिए पूरी तरह से अपनी बलि दे दी, तुम्हारे अन्दर समझ का, आदर और भक्ति का इस कदर अभाव होगा। श्रीअरविन्द पंगु नहीं हुए थे; अपना शरीर त्यागने से कुछ घंटे पहले वे अपने पलंग से उठकर काफी समय तक अपनी आराम कुरसी पर बैठे और उन्होंने अपने इर्द-गिर्द के लोगों से खुलकर बातचीत की। श्रीअरविन्द अपना शरीर छोड़ने के लिए बाधित नहीं थे, उन्होंने ऐसे कारणों से शरीर त्यागने का फैसला किया जो इतने महान् हैं कि मानव बुद्धि की पहुंच से परे हैं।

और जब तुम समझ नहीं सकते तो करने लायक एक ही चीज होती है : सादर मौन।

२६ दिसम्बर, १९५०

*

लोग यह नहीं जानते कि श्रीअरविन्द ने जगत् के लिए कितनी भारी बलि दी है। लगभग एक वर्ष पहले, जब मैं उनके साथ बातचीत कर रही थी, तो मैंने कहा कि मेरी इच्छा हो रही है कि मैं शरीर छोड़ दूं। उन्होंने बड़े दृढ़ स्वर में कहा : "नहीं, यह हर्गिज नहीं हो सकता, अगर इस रूपान्तर के लिए जरूरी हुआ, तो शायद मैं चला जाऊं, तुम्हें हमारे अतिमानसिक अवतरण और रूपान्तर के योग को पूरा करना होगा।"†

१९५०

*

हे प्रभो, हम धरती पर तेरे रूपान्तर के काम को पूरा करने के लिए हैं। यह हमारा एकमात्र संकल्प, हमारी एकमात्र धुन है। वर दे कि यह हमारा

† इस निशान का अर्थ है कि किसी साधक ने माताजी की कही बात को बाद में स्मृति से लिख लिया था और प्रकाशन के लिए उस पर माताजी की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

एकमात्र कार्य भी हो, हमारी सभी क्रियाएं हमें इस एकमात्र लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायता दें।

१ जनवरी, १९५१

*

हम 'उनकी' दिव्य 'उपस्थिति' की छत्रछाया में खड़े हैं जिन्होंने अपने भौतिक जीवन की बलि दे दी ताकि अपने रूपान्तर के काम में अधिक पूर्णता के साथ सहायता कर सकें।

'वे' हमेशा हमारे साथ हैं, हमारे सभी कार्यकलापों, सभी विचारों, हमारे सभी भावों और हमारी सभी क्रियाओं से अवगत हैं।

१८ जनवरी, १९५१

*

जब मैंने उनसे (८ दिसम्बर, १९५० को) अपने शरीर को पुनरुज्जीवित करने के लिए कहा, तो उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया : "मैंने जान-बूझकर यह शरीर छोड़ा है। मैं इसे वापिस नहीं लूंगा। मैं पुनः अतिमानसिक तरीके से बनाये गये पहले अतिमानसिक शरीर में आविर्भूत होऊंगा।"

११ अप्रैल, १९५२

*

श्रीअरविन्द का अपना शरीर त्यागना परम निःस्वार्थता का कार्य है। उन्होंने अपने शरीर में होनेवाली उपलब्धि को इसलिए त्यागा कि सामूहिक उपलब्धि का मुहूर्त जल्दी आ सके। निश्चय ही, अगर धरती अधिक ग्रहणशील होती, तो यह जरूरी न होता।

१२ अप्रैल, १९५३

चिरन्तन उपस्थिति

आपने श्रीअरविन्द के जन्म को विश्व-इतिहास में "शाश्वत" बतलाया है। "शाश्वत" का ठीक अर्थ क्या है?

इसे चेतना के चार आरोही स्तरों पर चार भिन्न तरीकों से समझा जा सकता है:

१. भौतिक रूप में, जन्म के परिणाम जगत् के लिए शाश्वत महत्त्व के होंगे।

२. मानसिक रूप में, यह एक ऐसा जन्म है जिसे विश्व इतिहास शाश्वत काल तक याद रखेगा।

३. चैत्य रूप से, एक ऐसा जन्म जो धरती पर युग-युग में हमेशा होता रहता है।

४. आध्यात्मिक रूप से, 'शाश्वत' का धरती पर जन्म।

१९५७

*

पृथ्वी के इतिहास में आरम्भ से ही श्रीअरविन्द ने किसी-न-किसी रूप में, किसी-न-किसी नाम से हमेशा पृथ्वी के महान् रूपान्तरों का संचालन किया है।

*

कहा जाता है कि श्रीअरविन्द ने अपने एक पिछले जन्म में फरासीसी क्रान्ति में सक्रिय भाग लिया था। क्या यह सच है?

तुम कह सकते हो कि सारे इतिहास में ही श्रीअरविन्द ने सक्रिय भाग लिया था। विशेष रूप से इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के समय वे उपस्थित थे—और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख भूमिका निभा रहे थे। पर हां, वे हमेशा सामने न होते थे।

२३ जनवरी, १९६०

*

श्रीअरविन्द निरन्तर हमारे साथ हैं और जो लोग उन्हें देखने और सुनने के लिए तैयार हैं उनके आगे अपने-आपको प्रकट करते हैं।

आशीर्वाद।

*

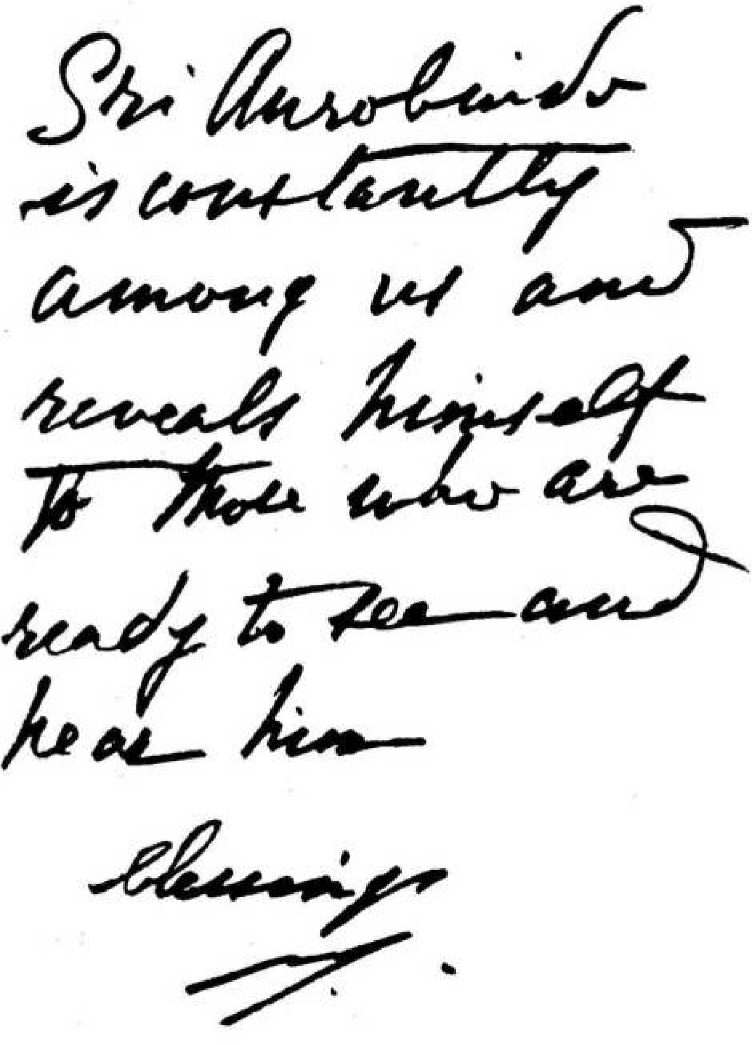
Sri Aurobindo
is constantly
among us and
reveals himself
to those who are
ready to see and
hear him

Blessings

श्रीअरविन्द बहुत विशाल और मूर्त रूप में (सूक्ष्म शरीर में) ध्यान के समय सारे अहाते पर आसीन थे।

२८ अगस्त, १९६२

*

पिछली रात, हम (तुम, मैं और कुछ अन्य लोग) काफी देर तक श्रीअरविन्द के स्थायी निवास-स्थान में एक साथ थे, वह स्थान जिसका अस्तित्व सूक्ष्म भौतिक में है (जिसे श्रीअरविन्द ने वास्तविक भौतिक जगत् कहा है)।

१ फरवरी, १९६३

*

श्रीअरविन्द सूक्ष्म भौतिक जगत् में हैं, अगर तुम यह जानते हो कि वहां कैसे जाया जाये, तो तुम उनसे नींद में मिल सकते हो।

१३ अगस्त, १९६४

*

(एक साधक ने सोते हुए सूक्ष्म भौतिक जगत् में विराजमान सूक्ष्म भौतिक शरीरधारी श्रीअरविन्द का अन्तर्दर्शन किया। उसने इसके बारे में माताजी को लिखा। माताजी का उत्तर :)

श्रीअरविन्द हर एक की आवश्यकता के अनुसार उसे दर्शन देते हैं और सूक्ष्म भौतिक में चीजें यहां के जैसी नियत नहीं हैं।

तुमने जो देखा है उसके विवरण की अपेक्षा अन्तर्दर्शन से उत्पन्न भावना को ज्यादा महत्त्व दो।

*

सारा दिन, तड़के से ही श्रीअरविन्द सदा की तरह विद्यमान थे, बहुत जीवित-जाग्रत्; कभी-कभी चुप रहना मेरे लिए मुश्किल हो जाता था, मैं अपने अन्दर-ही-अन्दर बुदबुदाता रहा। आज ऐसा होना शायद ठीक नहीं था, ठीक था क्या माताजी? लेकिन श्रीअरविन्द इतने

नजदीक और इतने सजीव थे।

इसके विपरीत, यह बिलकुल ठीक है, वे अब जितने सजीव हैं उतने कभी नहीं रहे!

५ दिसम्बर, १९६७

*

श्रीअरविन्द सूक्ष्म भौतिक में निरन्तर रहते हैं और वहां बहुत कार्यरत हैं। मैं प्राय: प्रतिदिन उनसे मिलती हूं। कल रात मैंने उनके साथ कई घंटे बिताये।

अगर तुम सूक्ष्म भौतिक में सचेतन हो जाओ तो तुम निश्चय ही उनसे मिलोगे। यह वही है जिसे श्रीअरविन्द सच्चा भौतिक कहते हैं— इसका चैत्य से कोई सम्बन्ध नहीं।

२१ दिसम्बर, १९६९

*

श्रीअरविन्द की सहायता चिरन्तन है : हमें उसे ग्रहण करना सीखना चाहिये।

*

श्रीअरविन्द हमेशा हमारे साथ हैं, हमें प्रकाश देते हैं, रास्ता दिखाते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। हम पूर्णनिष्ठ बनकर ही उनकी कृपा के पात्र बन सकेंगे।

शताब्दी

(आकाशवाणी, पॉण्डिचेरी से प्रसारित सन्देश)

आज श्रीअरविन्द के शताब्दी-वर्ष का पहला दिन है। यद्यपि उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया है, फिर भी वे हमारे साथ हैं—जीवित और सक्रिय।

श्रीअरविन्द भविष्य के हैं; वे भविष्य के सन्देशवाहक हैं। वे अब भी हमें 'भागवत संकल्प' द्वारा निर्मित उज्ज्वल भविष्य को जल्दी चरितार्थ करने के लिए जिस राह का अनुसरण करना चाहिये वह दिखलाते हैं।

जो मानवजाति की प्रगति और भारत की ज्योतिर्मयी नियति के लिए सहयोग देना चाहते हैं, उन सबको भविष्यदर्शी अभीप्सा और प्रबुद्ध कार्य के लिए मिलकर काम करना चाहिये।

१५ अगस्त, १९७१

*

जिन लोगों का माताजी और श्रीअरविन्द के साथ सम्बन्ध है वे श्रीअरविन्द की जन्म-शताब्दी को अच्छे-से-अच्छी तरह कैसे मना सकते हैं?

अभीप्सा करो और अपने प्रयास में सच्चे और आग्रही बनो।

सामान्य लोग श्रीअरविन्द की जन्म-शताब्दी को अच्छे-से-अच्छी तरह कैसे मना सकते हैं?

समझदारी और मेल-मिलाप में प्रगति करने का प्रयास करके।

१४ सितम्बर, १९७१

*

श्रीअरविन्द की चेतना के प्रति खुलो और उसे अपने जीवन को रूपान्तरित करने दो।

२६ *सितम्बर, १९७१*

*

श्रीअरविन्द हमेशा उपस्थित हैं।

सच्चे, निष्कपट और निष्ठावान् बनो।

यह पहली शर्त है।

आशीर्वाद।

२९ *सितम्बर, १९७१*

*

("श्रीअरविन्द और मानव एकता" पर ५ से ९ दिसम्बर १९७२ तक दिल्ली में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार के लिए दिया गया सन्देश)

हम अतिमानसिक जाति के आगमन की तैयारी करके ही श्रीअरविन्द को सर्वोत्तम श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं।

नवम्बर, १९७२

*

श्रीअरविन्द जगत् को उस भविष्य के सौन्दर्य के बारे में बतलाने आये थे जिसे चरितार्थ होना ही है।

वे उस भव्यता की आशा नहीं, निश्चिति देने आये थे जिसकी ओर जगत् बढ़ रहा है। जगत् एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना नहीं है, यह एक ऐसा अचम्भा है जो अपनी अभिव्यक्ति की ओर गति कर रहा है।

जगत् के भविष्य के सौन्दर्य की निश्चिति की जरूरत है। और श्रीअरविन्द ने यह आश्वासन दिया है।

२७ *नवम्बर, १९७१*

*

श्रीअरविन्द हमें यह बताने आये थे कि 'तुझे' किस तरह पायें और किस तरह 'तेरी' सेवा करें।

वर दे कि उनके इस शताब्दी-वर्ष में हम उनकी शिक्षा को सचमुच समझ सकें और पूरी सचाई के साथ उसे कार्यान्वित करें।

६ दिसम्बर, १९७१

*

लाल कमल श्रीअरविन्द का फूल है, लेकिन उनकी शताब्दी के लिए हम विशेष रूप से नील कमल को चुनेंगे जो उनके भौतिक प्रभामण्डल का रंग है, जो धरती पर परम पुरुष की अभिव्यक्ति की शताब्दी का प्रतीक होगा।

२१ दिसम्बर, १९७१

*

श्रीअरविन्द ने अपना जीवन दे दिया ताकि हम 'भागवत चेतना' में जन्म ले सकें।

२४ दिसम्बर, १९७१

*

१९७२

नया वर्ष शुभ हो

यह वर्ष श्रीअरविन्द को निवेदित है।

श्रीअरविन्द धरती पर जो प्रकाश, ज्ञान और शक्ति इतनी उदारता के साथ लेकर आये हैं उस सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए सबसे अच्छा उपाय है कि हम उनकी शिक्षा को अच्छी तरह समझने और उसे कार्यान्वित करने की कोशिश करें।

उनकी शिक्षा हमें प्रकाश दे और हमारा मार्ग-दर्शन करे, आज हम जिस चीज को नहीं कर पाते, उसे निश्चय ही कल कर लेंगे।

आओ, हम पूरी सचाई और निष्कपटता के साथ उचित मनोभाव अपनायें, तब यह सचमुच शुभ वर्ष होगा।

३१ दिसम्बर, १९७१

*

भगवान् के बिना हम सीमित, अक्षम और असहाय प्राणी हैं; भगवान् के साथ यदि हम अपने-आपको पूरी तरह उन्हें समर्पित कर सकें, तो सब कुछ सम्भव है और हमारी प्रगति असीम होगी।

श्रीअरविन्द के शताब्दी-वर्ष के लिए एक विशेष सहायता धरती पर आयी है; आओ, अहंकार पर विजय प्राप्त करने और प्रकाश में उभर आने के लिए हम इसका लाभ उठायें।

शुभ वर्ष।

१ जनवरी, १९७२

*

श्रीअरविन्द किसी एक देश के नहीं, सारी पृथ्वी के हैं। उनकी शिक्षा हमें ज्यादा अच्छे भविष्य की ओर ले जाती है।

१ जनवरी १९७२

*

जब श्रीअरविन्द ने अपना शरीर त्यागा तो उन्होंने कहा था कि वे हमें छोड़ न देंगे। और, सचमुच इन इक्कीस वर्षों के दौरान, वे हमेशा हमारे साथ रहे हैं और जो उनके प्रभाव के प्रति ग्रहणशील और खुले हुए हैं उन्हें रास्ता दिखाते और उनकी सहायता करते रहे हैं।

उनके इस शताब्दी-वर्ष में उनकी सहायता और भी सशक्त होगी। यह हम पर निर्भर है कि हम और अधिक खुलें और जानें कि इससे लाभ कैसे उठाना है। भविष्य उनके लिए है जिनमें एक वीर की अन्तरात्मा है। हमारी श्रद्धा जितनी अधिक अडिग और सच्ची होगी, आने वाली सहायता भी उतनी ही सशक्त और प्रभावकारी होगी।

२ जनवरी, १९७२

*

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानसिक जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये थे और उन्होंने इस अभिव्यक्ति की घोषणा ही नहीं की बल्कि अंशत: अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और अपने उदाहरण से दिखलाया कि उसे अभिव्यक्त करने के लिए हमें कैसे तैयारी करनी चाहिये। हम सर्वोत्तम चीज यही कर सकते हैं कि उन्होंने जो कुछ बतलाया है उसका अध्ययन करें और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

यह चीज जीवन को उसका असली अर्थ प्रदान करती है और हमें सभी बाधाओं पर विजय पाने में सहायता देगी।

आओ, हम नूतन सृष्टि के लिए जियें और हम युवा एवं प्रगतिशील रहते हुए अधिकाधिक बलवान् बनेंगे।

३० जनवरी, १९७२

*

आश्रम के शारीरिक शिक्षण विभाग की १९७२ की प्रतियोगिता के लिए सन्देश)

आओ, इस वर्ष, हम अपनी शरीर-सम्बन्धी समस्त गतिविधियां श्रीअरविन्द को निवेदित और समर्पित कर दें।

१ अप्रैल, १९७२

*

('श्रीअरविन्द—ए गार्लैंड ऑफ ट्रिब्यूट्स' नामक पुस्तक के लिए सन्देश)

श्रीअरविन्द परम पुरुष से आयी एक विभूति हैं जो धरती पर एक नयी जाति और एक नये जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये थे, वह है : अतिमानसिक।

आओ, हम पूरी सच्चाई और लगन के साथ उसके लिए तैयारी करें।

२० जून, १९७२

*

Sri Aurobindo is an emanation of the Supreme who came on earth to announce the manifestation of the new race and a new world: the Supramental.

Let us prepare for it in all sincerity and eagerness.

श्रीअरविन्द ने हमें वह आध्यात्मिक शिक्षा दी है जो हमें भगवान् के सीधे सम्पर्क में आना सिखाती है।

जुलाई, १९७२

*

श्रीअरविन्द हमें शानदार भविष्य की ओर जाने का मार्ग दिखाते हैं।

अगस्त, १९७२

*

(दर्शन सन्देश)

श्रीअरविन्द का सन्देश भविष्य पर विकीरित होता हुआ अमर सूर्यालोक है।

१५ *अगस्त*, १९७२

*

श्रीअरविन्द परम पुरुष के यहां से धरती पर एक नयी जाति और एक नये जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये थे, और वह है : अतिमानसिक।

आओ, हम पूरी सच्चाई और लगन के साथ उसके लिए तैयारी करें।

१५ *अगस्त*, १९७२

*

मनुष्य बीते कल की सृष्टि है।

श्रीअरविन्द घोषणा करने आये थे आगामी कल की सृष्टि की: अतिमानसिक सत्ता के आगमन की।

१५ *अगस्त*, १९७२

*

उनकी शताब्दी के अवसर पर हम श्रीअरविन्द को सर्वोत्तम श्रद्धांजलि यही दे सकते हैं कि हमारे अन्दर प्रगति के लिए प्यास हो और हम अपनी सारी

सत्ता को उस 'भागवत प्रभाव' के प्रति खोल दें जिसके श्रीअरविन्द पृथ्वी पर 'सन्देशवाहक' हैं।

१५ अगस्त, १९७२

*

१५-८-७२

'शाश्वत' क़ी ओर एक और कदम।

कार्य और शिक्षा

श्रीअरविन्द का कार्य है एक अनोखा पार्थिव रूपान्तर।

*

श्रीअरविन्द ने अतिमानसिक चेतना को मानव शरीर में मूर्तिमन्त किया। उन्होंने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये उसकी प्रकृति और उस पर चलने का न केवल तरीका ही बताया बल्कि अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि के द्वारा हमारे सामने उदाहरण भी रखा। उन्होंने हमारे सामने प्रमाण रखा कि यह किया जा सकता है और बताया कि उसे करने का समय भी अभी है।

*

क्षण-भर के लिए भी यह विश्वास करने में न हिचकिचाओ कि श्रीअरविन्द ने परिवर्तन के जिस महान् कार्य के लिए बीड़ा उठाया है उसकी पूर्णाहुति सफलता में ही होगी। क्योंकि यह वस्तुतः एक तथ्य है : हमने जो काम हाथ में लिया है उसके बारे में सन्देह की कोई छाया भी नहीं है...। रूपान्तर होगा ही होगा : कोई चीज उसे नहीं रोक सकती, सर्वशक्तिमान् के आदेश को कोई विफल नहीं कर सकता। समस्त शंकाशीलता और दुर्बलता को उठा फेंको और उस महान् दिवस के आने तक कुछ समय वीरता के साथ सहन करने का निश्चय करो, यह लम्बा युद्ध चिर विजय में बदल जायेगा।

*

हमें श्रीअरविन्द पर श्रद्धा है।

हम अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिए उसे शब्दबद्ध करते हैं, वे शब्द हमें बिलकुल सटीक लगते हैं और हम श्रीअरविन्द को उसी रूप में मानते हैं। स्पष्ट है कि ये शब्द हमारे अनुभव को शब्दबद्ध करने के लिए हमारी दृष्टि से सर्वोत्तम हैं।

लेकिन अगर हम अपने उत्साह में यह मान बैठें कि श्रीअरविन्द जो हैं

और उन्होंने हमें जो अनुभूति दी है उसे ठीक से व्यक्त करने के लिए केवल ये ही शब्द उपयुक्त हैं, तो हम मतांध बन जायेंगे और एक धर्म की स्थापना करने की तैयारी में होंगे।

जिसके पास आध्यात्मिक अनुभूति और श्रद्धा हो, वह उसे अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करता है।

लेकिन अगर वह यह मान बैठे कि इस अनुभूति और श्रद्धा की बस यही एकमात्र सही और सच्ची अभिव्यक्ति है, तो वह मतांध बन जाता है और एक धर्म स्थापित करने की ओर प्रवृत्त होता है।

*

हर एक के अपने विचार होते हैं और वह श्रीअरविन्द के लेखों में से अपने विचारों का समर्थन करने वाले वाक्य खोज निकालता है। जो लोग इन विचारों का विरोध करते हैं वे भी उनके लेखों के अनुकूल वाक्य पा सकते हैं। पारस्परिक विरोध इसी तरह काम करता है। जब तक वस्तुओं के बारे में श्रीअरविन्द की समग्र दृष्टि को न लिया जाये तब तक सचमुच कुछ नहीं किया जा सकता।

१० अक्तूबर, १९५४

*

संभवन की शाश्वतता में प्रत्येक अवतार केवल एक अधिक पूर्ण सिद्धि का उद्घोषक और अग्रदूत होता है।

फिर भी लोगों की हमेशा यह वृत्ति रहती है कि भविष्य के अवतारों के विरोध में भूतकाल के अवतार की पूजा करें।

अब फिर से श्रीअरविन्द जगत् के सामने आगामी कल की उपलब्धि की घोषणा करने आये हैं; और फिर से उनके सन्देश का उसी तरह विरोध हो रहा है जैसा उनसे पहले आने वालों का हुआ था।

लेकिन आगामी कल उनके द्वारा प्रकाश में लाये गये सत्य को प्रमाणित करेगा और उनका कार्य पूरा होगा।

२१ फरवरी, १९५७

*

तुम्हारी मुख्य भूल यह थी कि तुमने श्रीअरविन्द की शिक्षा को आध्यात्मिक शिक्षाओं में से एक मान लिया—और यहां होने वाले कार्य को भागवत कार्यों के बहुत-से पहलुओं में से एक जाना।

इसने तुम्हारी आधारभूत स्थिति को मिथ्या बना दिया और यही सभी कठिनाइयों और गड़बड़ों का कारण है।

अगर तुम्हारे मन और तुम्हारी वृत्ति में यह भूल ठीक कर ली जाये तो दूसरी सब कठिनाइयां आसानी से गायब हो जायेंगी।

तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि विश्व इतिहास में श्रीअरविन्द जिस चीज के प्रतिनिधि हैं, वह कोई शिक्षा नहीं है, कोई अन्त:प्रकाश भी नहीं है; यह सीधा परम प्रभु से आया हुआ **निर्णायक कार्य** है।

और मैं बस उस कार्य को पूरा करने की कोशिश कर रही हूं।

१९६१

*

एक मित्र के गांधीजी के बारे में लिखे गये निबन्ध की आलोचना करते हुए मैंने अहिंसा तथा कुछ अन्य सिद्धान्तों पर श्रीअरविन्द के उद्धरण दिये थे। इन विषयों को गांधीवाद में "स्वत: प्रमाण" माना जाता है। मेरे मित्र ने इसका विरोध करते हुए लिखा है कि श्रीअरविन्द के लिए आदर-सम्मान के कारण मुझे अन्य महापुरुषों के बारे में अंधा नहीं हो जाना चाहिये: उसके अनुसार, सभी ने 'सत्य' की झांकी पायी है। मुझे लगा कि औरों के साथ श्रीअरविन्द की बात रखकर मैंने भूल की। मैं इस बारे में विस्तार से उत्तर देना चाहता हूं। लेकिन मैं तभी लिखूंगा जब आपकी स्वीकृति मिल जाये। अगर आप अपना उत्तर दे सकें तो मुझे बहुत खुशी होगी।

'सत्य' तक पहुंचने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए मानवजाति ने जो प्रयत्न किया है उसमें उन सबका स्थान है जिन्होंने कोई खोजकार्य किया है, वह चाहे जितना छोटा क्यों न हो, और गांधी उनमें से एक हैं।

लेकिन हमेशा यह बड़ी भूल होती आयी है कि इन आंशिक खोजों को परम सामंजस्य में एक करने की जगह इनका विरोध किया गया है। इसी

लिए मानवजाति अभी तक अंधेरे में टटोल रही है।

श्रीअरविन्द यह प्रकट करने के लिए आये हैं कि यह परम सामंजस्य विद्यमान है। वे हमें उसे खोजने का मार्ग दिखाने आये हैं।

मार्च, १९७०

*

(एक समस्या के बारे में)

तुम्हें श्रीअरविन्द की चीजें पढ़कर उत्तर जान लेना चाहिये।

१९ अक्तूबर, १९७२

*

अगर कोई सावधानी से श्रीअरविन्द की चीजें पढ़े तो वह जो कुछ जानना चाहता है उसका उत्तर मिल जाता है।

२५ अक्तूबर, १९७२

*

श्रीअरविन्द ने **सभी विषयों** पर जो कुछ कहा है उसका सावधानी के साथ अध्ययन करने से तुम इस जगत् की सभी चीजों के पूर्ण ज्ञान तक पहुंच सकते हो।

*

श्रीअरविन्द के लेखों का अध्ययन करो और उनकी साधना का अनुसरण करो।

*

सावित्री
श्रीअरविन्द की
अन्तर्दृष्टि का
परम अन्तर्ज्ञान

*

('सावित्री' के बारे में)

१) लिखने वाले व्यक्ति की आध्यात्मिक अनुभूतियों का दैनिक विवरण।

२) जो लोग पूर्णयोग का अनुसरण करना चाहते हैं उनके लिए मार्गदर्शन करने वाली एक पूर्ण योग-पद्धति।

३) भगवान् की ओर आरोहण करती हुई 'धरती' का योग।

४) दिव्य जननी ने जो शरीर धारण किया है और धरती पर जिस अविद्या और मिथ्यात्व में अवतरित हुई हैं, अपने-आपको उसके अनुकूल बनाने में उनकी अनुभूतियां।

*

(आश्रम की एक साधिका ने माताजी के साथ 'सावित्री' विषयक चित्र बनाये थे, "मेडिटेशन ऑन सावित्री" नाम से उनकी प्रदर्शनी की गयी थी। उस प्रदर्शनी के लिए सन्देश)

सावित्री का महत्त्व अपरिमित है।

इसका विषय सार्वभौम है। इसका अन्तर्ज्ञान भविष्यवाणी है।

इसके वातावरण में बिताया गया समय व्यर्थ नहीं जाता।

इस प्रदर्शनी को देखने में यथावश्यक समय दो। मनुष्य जो कुछ करते हैं उसमें एक उत्तेजनाभरी हड़बड़ी होती है, यह उसकी एक अच्छी क्षतिपूर्ति है।

१० फरवरी, १९६७

The importance of Savitri is immense.
Its subject is universal.
Its revelation is prophetic.
The time spent in its atmosphere is not wasted.

Take all the time necessary to see this exhibition. It will be a happy compensation for the feverish haste men put now in all they do.

10.2.67.

प्रकीर्ण

भगवान् क्या हैं?

तुम श्रीअरविन्द के अन्दर जिनकी आराधना करते हो वे ही भगवान् हैं।

२८ मार्च, १९३२

*

कैसा सुन्दर होता है वह दिन जब हम अपनी भक्ति श्रीअरविन्द को अर्पित कर सकें।

*

तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये कि श्रीअरविन्द तुम्हें देख रहे हैं।

*

यह आज्ञाभंग का प्रश्न नहीं है। तुमने 'लाइफ स्केच' में क्या बढ़ाया है और वह कहां से लिया है इसके बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरा दृष्टिकोण यह है कि श्रीअरविन्द के बारे में किसी साधक की लिखी हुई ऐसी चीज जो उन्हें सामान्य स्तर पर उतार लाती है और पाठक को उनके साथ गपशप लगाने योग्य अति परिचय के स्तर पर लाती है, वह उनके और उनके कार्य के प्रति निष्ठाहीनता है। अच्छे इरादे ही काफी नहीं हैं, यह जरूरी है कि हर एक इस बात को समझ ले।

३ जून, १९३१

*

श्रीअरविन्द कहते हैं कि उनके लिए राजनीतिक कार्य को हाथ में लेना और राजनीतिक क्षेत्र में उतरना असम्भव है। इसके लिए उन्हें अपने आध्यात्मिक कार्य की बलि चढ़ानी होगी।

वे देश को और व्यक्तिगत रूप से सभी अभीप्सुओं को आध्यात्मिक सहायता देते हैं। वे इस सहायता को जारी रखने के लिए और जरूरी हो तो बढ़ाने के लिए भी तैयार हैं। लेकिन उन्हें विश्वास है कि केवल लिखित

सन्देश स्थायी प्रभाव के लिए या काफी विस्तृत प्रभाव के लिए भी पर्याप्त नहीं है।

*

(१९५७ की दुर्गा पूजा के लिए सन्देश)

श्रीअरविन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उनकी शिक्षा के जीवित-जाग्रत् उदाहरण बनने से बढ़कर और कुछ नहीं है।

३० सितम्बर, १९५७

*

श्रीअरविन्द का प्रतीक

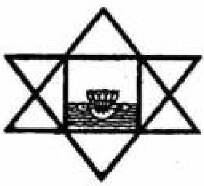

The descending triangle represents Sat-Chit-Ananda.

The ascending triangle represents the aspiring answer from matter under the form of life, light and love.

The junction of both - the central square - is the perfect manifestation having at its centre the Avatar of the Supreme - the lotus.

The water - inside the square - represents the multiplicity, the creation.

नीचे उतरता हुआ त्रिकोण सत्, चित्, आनन्द का प्रतीक है।

ऊपर उठता हुआ त्रिकोण जीवन, ज्योति और प्रेम के रूप में अभीप्सा करते जड़-द्रव्य के उत्तर का प्रतीक है।

दोनों का संयोजन—बीच का समचतुष्कोण—है पूर्ण अभिव्यक्ति जिसके बीच में परम पुरुष का अवतार—कमल—है।

समचतुष्कोण के अन्दर जल बहुलता का, सृष्टि का प्रतीक है।

४ अप्रैल, १९५८

*

उनकी 'कृपा' हमेशा उन लोगों के साथ रहती है जो प्रगति करना और आगामी कल के 'सत्य' को उपलब्ध करना चाहते हैं।

१० जनवरी, १९५९

*

कोई फिर से श्रीअरविन्द के कमरे में जाना और वहां बैठकर कुछ समय के लिए ध्यान करना चाहता है।

इस महान् सौभाग्य के लिए उसके पास क्या योग्यताएं और उपाधियां हैं?

फिर से जाना ठीक है। लोग श्रीअरविन्द के कमरे में आ सकते हैं। लेकिन वहां बैठकर ध्यान करने की अनुमति पाने के लिए यह जरूरी है कि तुमने श्रीअरविन्द के लिए बहुत कुछ किया हो।

११ जून, १९६०

*

मधुर मां, आपने कहा है कि श्रीअरविन्द के कमरे में बैठकर ध्यान करने की अनुमति पाने के लिए "यह जरूरी है कि तुमने श्रीअरविन्द के लिए बहुत कुछ किया हो।" इससे आपका क्या मतलब है? हम प्रभु के लिए क्या कर सकते हैं जो "बहुत कुछ" हो?

प्रभु के लिए कुछ करने का मतलब है तुम्हारे पास जो है, या तुम जो करते हो, या तुम जो हो उसमें से कुछ उन्हें देना, यानी, उन्हें अपनी

सम्पत्ति में से एक भाग देना या तुम्हारे पास जो कुछ है वह सब उन्हें अर्पित करना, अपने कार्य का एक भाग या अपने सभी कर्म उन्हें अर्पित करना, या अपने-आपको बिना कुछ बचाये पूरी तरह दे देना ताकि वे हमारी प्रकृति पर अधिकार कर लें और उसे रूपान्तरित करके दिव्य बना सकें। लेकिन बहुत-से लोग ऐसे हैं जो बिना कुछ दिये हमेशा लेना और पाना चाहते हैं। ये लोग स्वार्थी हैं और श्रीअरविन्द के कमरे में बैठकर ध्यान करने के लिए अयोग्य हैं।

१७ अगस्त, १९६०

*

मैं आशा करती हूं कि एक दिन आयेगा जब हम सच्चे और खुले दिल से कह सकेंगे कि पॉण्डिचेरी नगर के लिए श्रीअरविन्द की 'उपस्थिति' क्या मायने रखती थी...।

१२ जनवरी, १९६१

*

कुछ समय पहले आपने मुझे सलाह दी थी: "सभी मानव निरूपणों के परे जाओ और सीधे परम प्रभु से आवेदन करो।"

मैं श्रीअरविन्द की ओर मुड़ा करता था। मैं अपनी कठिनाइयां उनके आगे रखकर उनसे प्रार्थना करता था और प्रायः सदा ही उनका उत्तर मिलता था। अब मैं उनके बारे में नहीं सोचता, मैं उनकी ओर नहीं मुड़ता। मैं सीधा प्रभु की ओर मुड़ता हूं, लेकिन वह मेरा अरण्यरोदन होता है।

क्या मेरा श्रीअरविन्द से सम्बन्ध काट लेना ठीक है?

श्रीअरविन्द के साथ सम्बन्ध तोड़ने का न कोई प्रश्न है, न ही कभी कोई प्रश्न उठ सकता है। अगर तुम्हें उनके उत्तरों के बारे में सचेतन होने का सौभाग्य प्राप्त है, तो उसे कीमती खजाने की तरह रखो, और उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो। श्रीअरविन्द के द्वारा तुम परम पुरुष के सम्पर्क में आओगे और बिलकुल निश्चित रहोगे कि तुम भटक नहीं सकते।

२१ मई, १९७०

*

मैं अपने दैनिक कार्य-कलाप में श्रीअरविन्द के प्रभाव को जीवित-जाग्रत् और सक्रिय कैसे बना सकता हूं?

पूरी तरह सच्चे और निष्कपट बनो, और वे तुम्हारी पुकार का उत्तर देंगे।

जुलाई, १९७०

*

हमें श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर कैसा होना चाहिये?

सच्चे और प्रगतिशील।

*

(ई. फ्रैंकल की बनायी हुई श्रीअरविन्द की कांसे की आवक्ष-प्रतिमा के बारे में)

कलात्मक दृष्टि से, यह निश्चय ही एक उत्कृष्ट कलाकृति है। यह अन्त:प्रेरणा का कार्य भी है। यह श्रीअरविन्द के, बल्कि उनके कुछ पहलुओं के साथ आन्तरिक सम्पर्क से प्रेरित है, उनकी सत्ता के एक पक्ष, बौद्धिक पक्ष, ज्ञान के पक्ष, उनके द्रष्टा-रूप से प्रेरित है।

*

(एर्ना. आर. किंग द्वारा १९६४ में बनायी हुई श्रीअरविन्द की कांसे की आवक्ष-प्रतिमा के बारे में)

उनके ललाट की प्रशस्तता, स्थिरता और सरलता संपूर्ण प्रज्ञा की पूर्ण शान्ति को प्रतिबिम्बित कर रही हैं।

*

श्रीअरविन्द का स्मरण : जीवन के उस आदर्श को चरितार्थ करने के लिए हम प्रयास करें जो उन्होंने हमारे लिए निर्धारित किया है।

श्रीअरविन्द और माताजी

(माताजी ने लाल कमल को श्रीअरविन्द का फूल और श्वेत कमल को अपना फूल बताया था।)

लाल कमल—धरती पर परम प्रभु की अभिव्यक्ति का प्रतीक।

श्वेत कमल—'भागवत चेतना' का प्रतीक।

२ फरवरी, १९३०

*

हमारा 'प्रेम' शाश्वत 'सत्य' है।

७ अप्रैल, १९३४

*

उनके बिना, मेरा अस्तित्व नहीं है।
मेरे बिना, वे अनभिव्यक्त हैं।

६ मई, १९५७

*

जब तुम अपने हृदय और विचार में मेरे और श्रीअरविन्द के बीच कोई भेद न करोगे, जब अनिवार्य रूप से श्रीअरविन्द के बारे में सोचना मेरे बारे में सोचना हो और मेरे बारे में सोचने का अर्थ हो श्रीअरविन्द के बारे में सोचना, जब एक को देखने का अनिवार्य अर्थ हो दूसरे को **उसी एक ही अभिन्न व्यक्ति** के रूप में देखना, तब तुम यह जान लोगे कि तुम अतिमानसिक शक्ति और चेतना के प्रति खुलना शुरू कर रहे हो।

४ मार्च, १९५८

*

मां-श्रीअरविन्द शरणं मम।

motherSriaurobindo
is my refuge

When in your heart and thought you will make no difference between Sri Aurobindo and me, when to think of Sri Aurobindo will be to think of me and to think of me will mean to think of Sri Aurobindo inevitably, when to see one will mean inevitably to see the other, like <u>one and the same Person</u>, — then you will know that you begin to be open to the supramental force and consciousness.

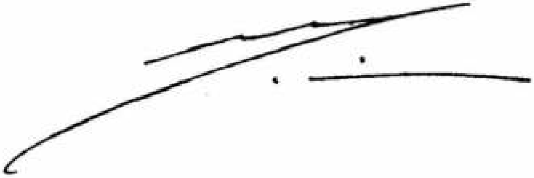

भाग २

माताजी

माताजी

Since the beginning of the earth, wherever and whenever there was the possibility of manifesting a ray of consciousness, I was there.

पृथ्वी के आरंभ से, जब कभी और जहां कहीं 'चेतना' की एक किरण को अभिव्यक्त करने की संभावना थी, मैं वहां मौजूद थी।

*

तुम्हारे साथ जो अब बोल रही है, वह भगवान् की निष्ठावान् सेविका है। हमेशा से, धरती के आरंभ से, भगवान् की निष्ठावान् सेविका के रूप में वह अपने 'स्वामी' के नाम पर बोलती आयी है। और जब तक धरती रहेगी, मनुष्य रहेंगे, वह दिव्य वाणी का प्रचार करने के लिए शरीर में विद्यमान रहेगी।

तो, जब कभी मुझसे बोलने के लिए कहा जाता है, मैं भगवान् की सेविका के रूप में, अपना अच्छे-से-अच्छा करती हूं।

लेकिन किसी सिद्धान्त-विशेष के नाम से बोलना या किसी मनुष्य के नाम से बोलना, वह चाहे कितना भी महान् क्यों न हो, यह मुझसे न होगा!

'शाश्वत परात्पर' मुझे मना करते हैं।

१९१२

*

मैं और मेरा पन्थ

मैं किसी राष्ट्र की, किसी सभ्यता की, किसी समाज की, किसी जाति की नहीं हूं, मैं भगवान् की हूं।

मैं किसी स्वामी, किसी शासक, किसी कानून, किसी सामाजिक प्रथा का हुकुम नहीं मानती, सिर्फ भगवान् का हुकुम मानती हूं।

मैं उन्हें संकल्प, जीवन, स्वत्व, सब कुछ अर्पण कर चुकी हूं; अगर उनकी ऐसी इच्छा हो, तो मैं सहर्ष, बूंद-बूंद करके, अपना सारा रक्त देने को तैयार हूं; उनकी सेवा में कुछ भी बलिदान नहीं हो सकता, क्योंकि सब कुछ पूर्ण आनन्द है।

जापान, फरवरी १९२०

Written in Japan – February 1920.

I belong to no nation, no civilisation, no society, no race, but to the Divine.

I obey to no master, no ruler, no law, no social convention, but to the Divine.

To Him I have surrendered all, will, life and self; for Him I am ready to give all my blood, drop by drop, if such is His Will, with complete joy; and nothing in His service can be sacrifice, for all is perfect delight.

*

मैं अपने मिशन के बारे में कब और कैसे सचेतन हुई

मुझे धरती पर जो मिशन पूरा करना था उसके बारे में मैं कब और कैसे

सचेतन हुई और मैं कब और कैसे श्रीअरविन्द से मिली?

तुमने ये दो प्रश्न पूछे थे और मैंने संक्षिप्त उत्तर देने का वचन दिया था।

मिशन के ज्ञान के बारे में यह कहना कठिन है कि वह मुझे कब मिला। यह तो ऐसा है मानों मैं उसे लेकर ही पैदा हुई थी। मन और मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ इस चेतना की सुनिश्चितता और पूर्णता का भी विकास हुआ।

ग्यारह से तेरह की उम्र में बहुत-सी चैत्य और आध्यात्मिक अनुभूतियों ने मुझे न केवल भगवान् का साक्षात्कार कराया बल्कि यह भी बताया कि मनुष्य उनके साथ एक हो सकता है, अपनी चेतना और क्रिया में समग्र रूप से उन्हें पा सकता है और धरती पर उन्हें दिव्य जीवन में अभिव्यक्त किया जा सकता है। मेरे शरीर की निद्रावस्था में कई शिक्षकों ने मुझे यह शिक्षा दी और उसे सम्पन्न करने के व्यवहार्य अनुशीलन भी बताये। इनमें से कुछ के साथ मैं बाद में भौतिक स्तर पर मिली भी।

बाद में, जैसे-जैसे आन्तरिक और बाह्य विकास होता गया, इनमें से एक सत्ता के साथ आध्यात्मिक और चैत्य सम्बन्ध अधिकाधिक स्पष्ट और बारम्बार होते रहे; यद्यपि उस समय मैं भारतीय धर्मों और दर्शन के बारे में बहुत कम जानती थी, फिर भी किसी-न-किसी अज्ञात कारण से मैं उसे कृष्ण कहती थी, और उस समय से मुझे यह भान हो गया था कि मुझे उन्हीं के साथ भागवत कार्य करना है (मुझे पता था कि मैं एक-न-एक दिन पृथ्वी पर उनसे मिलूंगी)।

१९१० में मेरे पति अकेले पॉण्डिचेरी आये जहां, बहुत मजेदार और अनोखी परिस्थितियों में, श्रीअरविन्द के साथ उनका परिचय हुआ। तभी से हम दोनों भारत आने के लिए बहुत इच्छुक थे—भारत को ही मैंने अपनी सच्ची मातृभूमि माना था। १९१४ में हमें यह आनन्द प्रदान किया गया।

जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा, मैं पहचान गयी कि यह वही सत्ता है जिसे मैं कृष्ण कहा करती थी...। और यह इस बात को समझाने के लिए काफी है कि मुझे यह पूरा विश्वास क्यों है कि मेरा स्थान और मेरा कार्य उनके साथ यहां, भारत में, है।

पॉण्डिचेरी, १९२०

*

हे मेरे प्रभो, मेरे प्रभो!

तुम मुझसे जो चाहते हो, मैं वही बनूं।

तुम मुझसे जो करवाना चाहते हो, मैं वही करूं।

२० जून, १९३१

*

मेरे प्रभो, तूने मुझे जो काम दिया है, मैं उससे बचने की कोशिश नहीं करूंगी। तू मेरी चेतना को जहां कहीं रख दे वह आनन्दमय शिखरों तक उठने की कोशिश किये बिना वहीं रहेगी। अगर तू उसे अत्यधिक भौतिक प्रकृति के कीचड़ में रखना चाहे, तो वह वहीं शान्ति से, आराम से रहेगी। लेकिन वह जहां कहीं हो, वह तेरी ओर अभीप्सा किये बिना, तेरे प्रभाव की ओर खुले बिना और तुझे अपने अन्दर अपनी सत्ता की एकमात्र सद्वस्तु के रूप में आने के लिए पुकारे बिना नहीं रह सकती।

७ मार्च, १९३२

*

प्रभो, किस उत्साह के साथ चेतना भौतिक स्पन्दनों की कारा से बच निकलने और तेरी निर्मल ऊंचाइयों की ओर उड़ने की अभीप्सा करती है!

लेकिन उड़ना असम्भव है... यह तेरी 'इच्छा' के विरुद्ध है। चेतना को इस अंधेरी और अज्ञ प्रकृति के कीचड़ में फंसे रहना पड़ेगा। यह बिलकुल ठीक है; तू जो चाहता है वही होने और वही करने का आनन्द सभी आनन्दों से बढ़कर है, सबसे उदात्त आनन्द तक से भी।

लेकिन चेतना पुकार उठती है: "मैं तुझे चाहती हूं, मैं तुझे चाहती हूं; तेरे बिना मैं कुछ भी नहीं हूं, मेरा अस्तित्व तक नहीं है!" और इस पुकार का स्पन्दन इतना जोरदार है कि यह भारी-भरकम 'जड़-तत्त्व' तक उससे हिल जाता है। "मैं तुझे चाहती हूं, मैं तुझे चाहती हूं! चूंकि तू मुझे उछल कर अपने पास तक नहीं आने देता, जिससे मैं सब कुछ पीछे छोड़कर तेरे साथ रह सकूं, इसलिए मैं तुझे यहीं से पुकारूंगी; और मैं तुझसे इतनी अनुनय-विनय करूंगी कि तू नीचे आकर अपने-आपको ऐसे जगत् में भर देगा जो अन्ततः तेरी 'उपस्थिति' की चरम आवश्यकता के प्रति जाग गया

है।" और इस आह्वान का स्पन्दन इतना तीव्र था कि अंधेरे और बेडौल पिण्ड में से 'प्रियतम' के आने की घोषणा करती हुई प्रथम थिरकन पैदा हुई।

८ मार्च, १९३२

*

हे मेरे ईश, तूने मुझसे कहा है: " 'जड़-द्रव्य' में डुबकी लगाओ और अपने-आपको उसके साथ एक कर दो: मैं वहीं पर अभिव्यक्त होऊंगा।"

और तेरी इच्छा पूरी कर दी गयी है—लेकिन 'जड़-द्रव्य' ने इस उपहार की अवहेलना कर दी है और अंधेरी और मिथ्या चेष्टाओं एवं सम्बन्धों में वह सन्तोष पाने पर आग्रह कर रहा है जो उसे वहां नहीं मिल सकता।

फिर भी तूने मुझे 'विजय' का वचन दिया है...

*

हे प्रभो, मेरी सारी सत्ता को जगा दे ताकि वह तेरे लिए आवश्यक यंत्र, तेरा सच्चा सेवक बन सके।

२७ मार्च, १९३६

*

मैं धरती पर, भौतिक जगत् में क्या लाना चाहती हूं:

१. पूर्ण 'चेतना'।

२. सर्वांगीण 'ज्ञान', सर्वज्ञता।

३. अज्ञेय शक्ति, अप्रतिरोध्य, अपरिहार्य, सर्वशक्तिमत्ता।

४. स्वास्थ्य, पूरी तरह स्वस्थ, नियमित, अचलायमान और सदा नयी होनेवाली ऊर्जा।

५. शाश्वत यौवन, निरन्तर विकास, बाधाहीन प्रगति।

६. अनिंद्य सौन्दर्य, जटिल और समग्र सामंजस्य।

७. अखूट, अतुल समृद्धि, इस जगत् के समस्त धन-वैभव पर अधिकार।

८. रोगमुक्त करने और सुख देने की क्षमता।

९. सभी दुर्घटनाओं से रक्षा, सभी विरोधी आक्रमणों से अभेद्यता।

१०. सभी क्षेत्रों और सभी क्रिया-कलापों में अपने-आपको व्यक्त करने की निपुण क्षमता।

११. भाषाओं का उपहार, अपनी बात सभी लोगों को पूरी तरह समझा सकने की क्षमता।

१२. और तेरे कार्य की सिद्धि के लिए जो कुछ भी जरूरी हो वह सब।

२३ अक्तूबर १९३७

*

मैं चाहती हूं

१. व्यक्तिगत रूप से परम प्रभु की शाश्वत पूर्णाभिव्यक्ति होना।

२. कि अतिमानसिक विजय, अभिव्यक्ति और रूपान्तर तुरंत हो जायें।

३. कि समस्त दुःख वर्तमान और भावी जगत् से हमेशा के लिए गायब हो जायें।

बाह्य जीवन

घोषणा

मैं इस दिन के साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषा की अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूं; वह है भारतीय नागरिक बनने की अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारत में आयी थी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अन्तःकरण का देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों ही भारत स्वतन्त्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहां पॉण्डिचेरी में आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब मैं अपने विषय में यह घोषणा कर सकती हूं।

लेकिन, श्रीअरविन्द के आदर्श के अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्व में है, न कि विभाजन में। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए दूसरी को छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है। इसलिए मैं आशा करती हूं कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनाने की छूट रहेगी, यानी, भारतीय हो जाने पर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूं, अपने चुनाव और चाहना से मैं भारतीय हूं। मेरी चेतना में इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत, वे एक-दूसरे से भली प्रकार मेल खाते हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूं कि मैं दोनों देशों की समान रूप से सेवा कर सकती हूं, क्योंकि मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान् शिक्षाओं को मूर्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षा में यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधता के द्वारा इस भूमि पर 'भागवत एकत्व' को अभिव्यक्त करने के लिए उनका अस्तित्व है।

१५ अगस्त, १९५४

*

दिव्य जननी,

जो अफसर चुनाव के लिए मतदाताओं की सूची तैयार कर रहा

है वह सूची में आपका नाम भी लिखना चाहता है। अगर आपकी स्वीकृति हो तो मैं आपका नाम दे दूं।

हां।

अगर वे राष्ट्रीयता पूछें तो कह देना *भारतीय*।

१२ अप्रैल, १९५५

*

मेरी किताब या किताबों के लिए फार्म मत भरो—मैं लेखक के अधिकार का दावा नहीं करती—और मैं उनके प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार करती हूं।

सच यह है कि यह शरीर पैरिस में पैदा हुआ था और उसकी अन्तरात्मा ने घोषणा कर दी है कि वह भारतीय है, लेकिन मैं किसी भी राष्ट्र-विशेष की नहीं हूं। और चूंकि सरकारें इसे नहीं समझ सकतीं, इसलिए मैं उनके साथ बहस नहीं करना चाहती।

१४ फरवरी, १९६८

*

21-2-68

The reminiscenses will be short.

I came to India to meet Sri Aurobindo.
I remained in India to live with Sri Aurobindo.
When he left his body, I continued to live here in order to do his work which is, by serving the Truth and enlightening mankind, to hasten the rule of the Divine's Love upon earth.

संस्मरण संक्षिप्त होंगे।

मैं श्रीअरविन्द से मिलने के लिए भारत आयी। मैं श्रीअरविन्द के साथ रहने के लिए भारत में रह गयी। उनके शरीर त्यागने के बाद भी मैं यहां रह रही हूं ताकि उनका काम पूरा करूं। उनका काम है 'सत्य' की सेवा करके मानवजाति को प्रकाश देते हुए धरती पर 'भागवत प्रेम' के राज्य को जल्दी लाना।

२१ फरवरी, १९६८

*

Do not ask questions about the details of the material existence of this body; they are in themselves of no interest and must not attract attention.

Throughout all this life, knowingly or unknowingly, I have been what the Lord wanted me to be, I have done what the Lord wanted me to do. That alone matters.

इस शरीर के भौतिक अस्तित्व के ब्योरों के बारे में प्रश्न मत पूछो; अपने-आपमें वे रुचिकर नहीं हैं और उन पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

इस सारे जीवन में, जानते हुए या अनजाने, मैं वही बनी जो भगवान् ने बनाना चाहा, मैंने वही किया जो भगवान् ने करवाना चाहा। केवल उसी का मूल्य है।

*

समाधि की ओर देखते हुए :

मैं नहीं चाहती कि मुझे पूजा जाये। मैं काम करने के लिए आयी हूं, पूजे जाने के लिए नहीं; वे जी भर कर तुझे पूजें और मुझे चुपचाप व छिपा हुआ छोड़ दें ताकि मैं बिना किसी बाधा के अपना काम करती रहूं —सभी पर्दों में शरीर सबसे अच्छा पर्दा है।

*

बस, यह अन्तिम बार मेरे पूर्व जीवन के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहा जाये!—यह शरीर नहीं चाहता कि उसके बारे में कुछ कहा जाये—यह चुपचाप और, जहां तक बन पड़े, *उपेक्षित* रहंना चाहता है।

कार्य और शिक्षा

अगर परम प्रभु की यही 'इच्छा' है कि जो मेरे ऊपर आश्रित हैं उनमें मेरे लिए श्रद्धा न हो, तो मुझे कुछ नहीं कहना। मैं केवल अपनी निजी सचाई की पराकाष्ठा के लिए जिम्मेदार हूं।

१४ दिसम्बर, १९३२

*

क्या मेरी इच्छा को आपकी इच्छा के साथ एक करने का कोई उपाय नहीं है? शायद आपकी कोई विशेष इच्छा ही नहीं है, क्योंकि आप कुछ नहीं चाहतीं।

मैं पूरी तरह जानती हूं कि मैं क्या चाहती हूं या यूं कहूं कि भागवत 'इच्छा' क्या है, और समय आने पर उसी की विजय होगी।

११ मई, १९३४

*

मुझे आशा और विश्वास है कि आपका काम मनुष्यों पर निर्भर नहीं है।

नहीं, वह मनुष्यों पर बिलकुल निर्भर नहीं है। जो किया जाना चाहिये वह सभी सम्भव बाधाओं के बावजूद किया जायेगा।

*

केवल एक ही चीज है जिसके बारे में मुझे पूरा विश्वास है, और वह है *मैं कौन हूं*। श्रीअरविन्द भी यह जानते थे और उन्होंने इसकी घोषणा की थी। समस्त मानवजाति के सन्देह भी इस तथ्य में कुछ न बदल सकेंगे।

लेकिन एक और चीज है जिसके बारे में मुझे इतना विश्वास नहीं है —वह है मेरे, यहां सशरीर उस काम को करते हुए रहने की उपयोगिता, जो मैं कर रही हूं। मैं उसे किसी निजी लालसा के कारण नहीं कर रही। श्रीअरविन्द ने मुझसे यह करने के लिए कहा था इसलिए मैं उसे परम प्रभु

की आज्ञा समझकर एक पवित्र कर्तव्य मानकर कर रही हूं।

समय ही बतायेगा कि धरती ने इससे कितना लाभ उठाया है।

२४ मई, १९५१

There is only one thing of which I am absolutely sure, and that is who I am. Sri Aurobindo also knew it and declared it. Even the doubts of the whole of humanity would change nothing to this fact.

But another fact is not so certain - it is the usefulness of my being here in a body, doing the work I am doing. It is not out of any personal urge that I am doing it. Sri Aurobindo told me to do it and that is why I do it as a sacred duty in obedience to the dictates of the Supreme.

Time will reveal how far earth has benefited through it.

24.5.51.

*

एक पत्र का वस्तुपरक उत्तर

अगर परम चेतना अवतरित हुई है और वह अपने-आपको इस शरीर में अभिव्यक्त कर रही है, तो सारी दुनिया के इन्कार उसे ऐसा होने से नहीं रोक सकते।

और अगर ऐसा नहीं है, तो मेरी भौतिक सत्ता में केवल उन्हीं लोगों को रुचि[1] हो सकती है जिनमें श्रद्धा है और जो, इस श्रद्धा की सहायता से

[1] एक और पाठ में "उपयोगी" शब्द है।

मेरे द्वारा, 'परम चेतना' के सम्पर्क में आ सकते हैं।

इस प्रश्न का महत्त्व केवल उन्हीं लोगों के लिए है, बाकियों को इसके बारे में सोचने की कोई जरूरत नहीं। सच्ची और प्रभावशाली होने के लिए इस प्रकार की श्रद्धा किसी प्रचार का विषय नहीं हो सकती, चाहे वह पक्ष में हो या विपक्ष में। उसका जन्म सहज और मुक्त होना चाहिये। उसे दबाव के द्वारा पाया नहीं जा सकता और इन्कार द्वारा मिटाया नहीं जा सकता।

जो किसी भी तरह की श्रद्धा या विश्वास के विरुद्ध प्रचण्ड रूप से लड़ने की जरूरत अनुभव करता है, वह इस तथ्य के द्वारा प्रमाणित करता है कि इस विश्वास ने उसकी सत्ता के किसी भाग को छुआ है, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, और उसका एक और भाग, जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण और बाहरी है, उस श्रद्धा को स्वीकार करने से एकदम इन्कार करता है। वह उसे ज्यादा खतरनाक लगता है क्योंकि वह उसके प्रति अधिक संवेदनशील है, और उसका निषेध करने की इच्छा उसके बारे में अपने-आपको विश्वास दिलाने की आवश्यकता से आती है।

अपनी दृष्टि से, मैं जानती हूं कि मैं क्या हूं। लेकिन इस ज्ञान का मूल्य, जिसे मैं जीती हूं, केवल मेरी सचाई में है; और अकेले 'परम प्रभु' ही इस सचाई का मूल्यांकन कर सकते हैं।

७ नवम्बर, १९५१

*

मैं जानती हूं कि मैं बहुत कुछ नहीं कर सकती—आश्चर्यों और चमत्कारों के लिए मनुष्यों की कामना को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। एक समय था जब मैं यह कर सकती थी और करती भी थी। लेकिन उसके लिए व्यक्ति को प्राणिक चेतना में रहना पड़ता है और प्राणिक शक्तियों का उपयोग करना पड़ता है, और यह बहुत वांछनीय नहीं है।

२३ जनवरी, १९५२

*

मेरे बारे में कहा जायेगा : "वह महत्त्वाकांक्षी थी, वह सारे जगत् का

रूपान्तर करना चाहती थी।" लेकिन दुनिया रूपान्तरित होना नहीं चाहती, चाहे भी तो एक बहुत लम्बी और धीमी प्रक्रिया से, इतनी धीमी कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में कोई फर्क न मालूम हो।

मैं देखती हूं कि प्रकृति देर लगाती और अपव्यय करती है। लेकिन उसे लगता है कि मैं बहुत ज्यादा जल्दी मचाती हूं और बहुत तकलीफ देनेवाली एवं आग्रही हूं।

मुझे जो कुछ कहना है उस सबको लिख दूं; जो कुछ होनेवाला है वह सब पहले से बतला दूं, और तब, अगर किसी को यह लगे कि मैं उसे ठीक तरह नहीं कर रही हूं, तो मैं निवृत्त हो जाऊंगी और दूसरों को करने दूंगी।

३१ मार्च, १९५३

*

मैं इस बात से इन्कार नहीं करती कि तुम्हारा श्रीअरविन्द की किसी चीज के साथ सम्बन्ध है, उस चीज के साथ जिसे तुम्हारे बारे में और तुम जो कर रहे हो उसमें रुचि थी। यह चीज अमरीका में और दूसरी जगहों पर तुम्हें प्रेरणा देने और तुम्हारे काम में सहायता करने के लिए तुम्हारे साथ रह गयी होगी। लेकिन यह केवल एक अंश, उन श्रीअरविन्द का बहुत, बहुत ही छोटा अंश है जिन्हें मैं जानती हूं, जिनके साथ मैं सशरीर तीस वर्ष तक रही हूं, जिन्होंने मुझे नहीं छोड़ा है, क्षण-भर के लिए भी नहीं छोड़ा—क्योंकि वे अब भी दिन-रात मेरे साथ हैं। वे मेरे मस्तिष्क से सोचते हैं, मेरी कलम से लिखते हैं, मेरे मुख से बोलते हैं और मेरी संगठन-शक्ति के द्वारा काम करते हैं।

५ मई, १९५३

*

अवतार की सम्भावना पर विश्वास करने या न करने से प्रकट तथ्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर भगवान् किसी मानव शरीर में अभिव्यक्त होना पसन्द करते हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि कोई भी मानव विचार, स्वीकृति या अस्वीकृति उनके निर्णय में रंचमात्र प्रभाव भी कैसे

डाल सकते हैं; और अगर वे मानव शरीर में जन्म लेते हैं, तो मनुष्यों की अस्वीकृति तथ्य को तथ्य होने से नहीं रोक सकती। तो इसमें उत्तेजित होने की बात ही क्या है? चेतना केवल पूर्ण शान्त-स्थिरता और नीरव निश्चलता में, पक्षपातों और पसन्दों से मुक्त होकर ही सत्य को जान सकती है।

२४ सितम्बर, १९५३

*

मेरे अवतार होने के बारे में, लोगों की राय का कैसे कोई महत्त्व हो सकता है?

अगर मैं (अवतार) नहीं हूं, तो हजारों भक्तों का विश्वास भी मुझे अवतार नहीं बना सकता। दूसरी ओर, अगर मैं अवतार हूं, तो सारी दुनिया का इन्कार भी मुझे अवतार होने से रोक नहीं सकता।

२५ सितम्बर, १९५३

*

एक *अपरिहार्य न्याय* है।

यहां एक 'चेतना' कार्यरत है। हर व्यक्ति जब कभी इस भागवत 'चेतना' के विरुद्ध जाता है तो हर बार अपनी चेतना का एक अंश खो बैठता है। वह जब-जब उसके विरुद्ध कुछ करता है तो नीचे जाता है। हर व्यक्ति जब कभी इस दिव्य 'चेतना' के अनुसार चलता है तो अपनी चेतना में कुछ प्राप्त करता है।

दुनिया जैसी है वैसी चलती रहती है। जब हम-तुम उसे बदलने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते, तो हम केवल चुपचाप, ब्रह्म की तरह मूक साक्षी रह सकते हैं। जैसा दुनिया में है वैसा ही यहां भी। इतनी सारी चीजें होती रहती हैं: हर एक अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करना चाहता है; सब तरह की राजनीति है, प्रोपेगेंडा है। मैं केवल ब्रह्म की तरह साक्षी होकर देखती हूं; मैं न पक्ष में हूं, न विरोध में, न मैं अनुमति देती हूं, न निन्दा करती हूं।

२६ अप्रैल, १९५५

*

मेरे लिए मानव-जीवन में सब कुछ मिला-जुला है, कोई चीज पूरी तरह अच्छी नहीं है, कोई चीज पूरी तरह बुरी नहीं है। मैं इस विचार या उस विचार को, इस उद्देश्य या उस उद्देश्य को अपना पूरा और ऐकान्तिक समर्थन नहीं दे सकती। काम में, मेरे लिए एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है श्रीअरविन्द का काम। मेरा सचेतन समर्थन अपने-आप उस सबके साथ होता है जो उस काम में सहायक हो और वह सहायता के अनुपात में होता है। और कार्य जिस तरह होना चाहिये उस तरह चलाने के लिए मुझे समस्त सहयोगों और सहायताओं की जरूरत है। मैं केवल इस या उस को स्वीकार करके बाकी को अस्वीकार नहीं कर सकती। मैं इस दल या उस दल की नहीं हो सकती। मैं केवल भगवान् की हूं और धरती पर मेरा कार्य मतों और दलों की परवाह किये बिना, भगवान् की विजय के लिए है और हमेशा रहेगा।

*

२९ फरवरी, १९५६

बुधवार के सम्मिलित ध्यान में

आज की सांझ तुम्हारे बीच में भगवान् की ठोस और भौतिक 'उपस्थिति' विद्यमान थी। मेरा रूप जीवित स्वर्ण का था, सारे विश्व से बड़ा, और मैं एक बहुत बड़े और विशालकाय सोने के दरवाजे के सामने खड़ी थी जो जगत् को भगवान् से अलग करता है।

जैसे ही मैंने दरवाजे पर नजर डाली, मैंने चेतना की एक ही गति में जाना और संकल्प किया कि *"अब समय आ गया है"*, और दोनों हाथों से एक बहुत बड़ी सोने की हथौड़ी उठाकर मैंने एक प्रहार किया, दरवाजे पर एक ही प्रहार और दरवाजा टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब अतिमानसिक 'ज्योति', 'शक्ति' और 'चेतना' धरती पर अबाध प्रवाह के रूप में बह निकलीं।

१९५६

*

जब परम प्रभु ने आपसे जगत् का निर्माण करने के लिए कहा, तो आपने कैसे जाना कि क्या करना चाहिये?

उसके लिए मुझे कुछ भी नहीं सीखना पड़ा, क्योंकि परम प्रभु के अपने अन्दर सब कुछ है : संपूर्ण जगत्, जगत् का ज्ञान और उसे बनाने की शक्ति। जब उन्होंने निश्चय किया कि एक जगत् बने, तो पहले उन्होंने जगत् के ज्ञान और उसे बनाने की शक्ति को पैदा किया, वह मैं हूं, और तब उन्होंने मुझे उसे बनाने की आज्ञा दी।

२५ सितम्बर, १९५७

*

आप हमारी तरह क्यों आयीं? आप सचमुच जैसी हैं उस तरह क्यों नहीं आयीं?

क्योंकि अगर मैं तुम्हारी तरह न आती, तो मैं कभी तुम्हारे निकट न हो पाती और मैं तुमसे यह न कह पाती : "मैं जो हूं वह बनो।"

२७ सितम्बर, १९५७

*

माताजी, "क्या आप भगवान् हैं?" इस प्रश्न का आपका क्या उत्तर है?

यह प्रश्न किसी भी मनुष्य से पूछा जा सकता है और उसका उत्तर होगा : हां, संभावना के रूप में।

और हर एक का काम है इसे वास्तविक तथ्य बनाना।

अगस्त, १९६६

*

मैं नहीं जानती कि मैं शक्तिशाली हूं या नहीं (क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि यह "मैं" कहां है) लेकिन प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं। विश्वास सभी सन्देहों

से परे है और प्रभु मामले को देख रहे हैं।

*

आप अपने शब्दों में कुछ ऐसी चीज रखती हैं जो हमें उस 'सत्य' को देखने-योग्य बना देती है जिसे शब्द नहीं दे पाते। आपके शब्दों के साथ क्या चीज होती है?

चेतना।

२७ दिसम्बर, १९६७

*

जब मैं बोलती हूं, तो जो कहती हूं उसे *जीती* हूं और मैं शब्दों के साथ उस *अनुभव* को देती हूं—कोई मशीन उसे अंकित नहीं कर सकती। इसीलिए लिखित उद्धरण पढ़ने या सुनने पर एकदम भिन्न मालूम होता है, मुख्य चीज चली जाती है, क्योंकि यह किसी भी अंकन के परे है। जब स्वयं मेरी लिखी हुई चीज लेख या पुस्तक के रूप में छापी जाती है, तब भी लिखते समय मुझे जो अनुभूति हुई थी उसकी तीव्रता चली जाती है, और लिखी हुई चीज नीरस मालूम होती है, यद्यपि शब्द बिलकुल वही होते हैं।

भौतिक 'उपस्थिति' का यही वास्तविक उद्देश्य है, उसका निर्विवाद महत्त्व।

*

मेरे शब्दों को शिक्षा के रूप में न लो। वे कर्म के पीछे की शक्ति होते हैं जिन्हें निश्चित उद्देश्य के लिए कहा गया है। उन्हें जब उस उद्देश्य से अलग किया जाता है तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो बैठते हैं।

शरीर की साधना

इस शरीर में न तो देवता का निर्विरोध अधिकार है, न संत की अविचल शान्ति। अभी तक यह अतिमानव की अवस्था का नौसिखिया-भर है।

*

हे मेरे मधुर स्वामी, परम 'सत्य'! मैं अभीप्सा करती हूं कि मैं जो भोजन लेती हूं वह मेरे शरीर के समस्त कोषाणुओं में तेरा सर्व-ज्ञान, तेरी सर्व-शक्ति और तेरा सर्व-कल्याण भर दे।

२१ सितम्बर, १९५१

*

मेरा शरीर तभी अतिमानसिक शरीर बनेगा जब मनुष्यों की प्रगति के लिए यह जरूरी न रहेगा कि यह उनके शरीर जैसा हो।

२ अगस्त, १९५२

*

यह तथ्य है कि 'परम देव' ने हमेशा शरीर को रूपान्तरित करने और उसे धरती पर अपनी अभिव्यक्ति का एक उपयुक्त यंत्र बनाने के उद्देश्य से भौतिक शरीर धारण किया। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि अभी तक वे यह करने में असफल रहे हैं और किसी-न-किसी कारण उन्हें रूपान्तर के कार्य को अधूरा छोड़कर अपना भौतिक शरीर त्यागना पड़ा।

भगवान् जिस शरीर द्वारा अपने-आपको अभिव्यक्त कर रहे हैं उसे सम्पूर्ण रूपान्तर साधित होने तक बनाये रखें, इसके लिए जरूरी है कि ज्यादा नहीं तो कम-से-कम एक व्यक्ति सामंजस्य, बल, सचाई, सहनशीलता, निःस्वार्थता, भौतिक में सन्तुलन की आवश्यक शर्तों को पूरा करे। यह शरीर जिसमें भगवान् अवतरित होते हैं, यह केवल सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु ही न हो, बल्कि अपवादिक रूप से एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज हो, स्वयं भागवत 'कार्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण, बल्कि यूं कहें, यह शरीर धरती

पर भागवत 'कार्य' का प्रतीक और मूर्त रूप हो जाये।

३ अक्तूबर, १९५२

*

मुझे काम कभी नहीं थकाता; जब मैं असन्तोष, अवसाद, सन्देह, गलतफहमी और दुर्भावना के वातावरण में काम करने के लिए बाधित होती हूं, तो एक-एक कदम आगे बढ़ाने में बहुत अधिक प्रयास की जरूरत होती है और शरीर पर उसका असर दस वर्ष के सामान्य काम से ज्यादा होता है।

२० सितम्बर, १९५३

*

पिछले कुछ दिनों से सवेरे जागते समय मुझे एक बड़ा अजीब-सा संवेदन होता है कि मैं एक ऐसे शरीर में प्रवेश कर रही हूं जो मेरा नहीं है—मेरा शरीर सबल और स्वस्थ, ऊर्जा और जीवन से भरा, लोचदार और सामंजस्यपूर्ण है, लेकिन इस शरीर में इनमें से कोई गुण नहीं होता; उसके साथ सम्पर्क पीड़ा देता है; मुझे अपने-आपको उसके अनुकूल बनाने में बहुत कठिनाई होती है और इस बेचैनी को दूर करने में बहुत समय लगता है।

१४ जनवरी, १९५४

*

कल रात फिल्म देखने के बाद मुझे जो अनुभूति हुई थी यह निर्णायक रूप से उसके बाद आयी। मैंने बहुत तीव्रता से यह अनुभव किया कि मेरे बालक स्वतंत्र काम करने योग्य हो गये हैं और अब उन्हें अपने कार्य को अच्छी तरह करने के लिए मेरे भौतिक हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है। इतना काफी है कि मेरी उपस्थिति उनके बीच अन्तःप्रेरणा और पथ-प्रदर्शन के रूप में रहे ताकि वे लक्ष्य को स्पष्ट रूप से देख सकें और भटक न जायें। स्वभावतः इसका परिणाम होता है अपने भीतर शरीर का प्रत्याहार ताकि भौतिक रूप से शरीर के रूपान्तर पर एकाग्र हुआ जा सके। अब मैं बाहरी रूप से उन्हें काम करने के अपने तरीकों के अनुसार चीजें करने

के लिए छोड़ सकती हूं और अपनी उपस्थिति को घटाकर न्यूनाधिक रूप से अदृश्य सृजनशील अंतःप्रेरणा और चेतना की भूमिका में रखूं।

१० मई, १९५४

*

शरीर बार-बार और मर्मस्पर्शी सचाई के साथ दोहराता है: "मैं किसी से भी कोई भी चीज क्यों मांगूं? अपने-आपमें मैं कुछ नहीं हूं, मैं कुछ नहीं जानता, मैं कुछ नहीं कर सकता। जब तक सत्य मुझे भेदकर मुझे आदेश न दे, मैं छोटे-से-छोटे निर्णय लेने और यह जानने में असमर्थ हूं कि बहुत ही नगण्य परिस्थितियों में भी करने लायक और जीने लायक सबसे अच्छी चीज क्या है। क्या मैं कभी इस हद तक रूपान्तरित होने के योग्य बनूंगा कि मुझे जो होना चाहिये वह होऊं और जो धरती पर अभिव्यक्त होना चाहता है उसे अभिव्यक्त करूं?" गहराइयों से निर्विवाद निश्चिति के साथ हमेशा तेरा यह उत्तर क्यों आता है, प्रभो: "अगर तुम न कर सको तो धरती पर और कोई शरीर इसे न कर सकेगा?" बस, एक ही निष्कर्ष निकलता है: मैं अपने प्रयास में लगी रहूंगी, हार न मानूंगी, मैं मृत्यु या विजय तक लगी रहूंगी।

८ सितम्बर, १९५४

*

मेरे प्रभो, तू मुझसे जो करवाना चाहता था वह मैंने कर दिया। 'अतिमानस' के द्वार खोल दिये गये हैं और 'अतिमानसिक चेतना', 'ज्योति' और 'शक्ति' की धरती पर बाढ़ आ गयी है।

लेकिन अभी तक मेरे चारों ओर के लोग इससे अनजान हैं—उनकी चेतना में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया और चूंकि वे मेरी बात पर विश्वास करते हैं इसीलिए यह नहीं कहते कि सचमुच कुछ नहीं हुआ। और फिर बाहरी परिस्थितियां पहले जैसी थीं उससे अधिक कठोर हैं और ऐसा लगता है कि पहले से भी अधिक अलंघ्य कठिनाइयां उठती आ रही हैं।

अब चूंकि अतिमानस यहां है—इसके बारे में मुझे *पूरा विश्वास* है, भले सारी धरती पर उसे जाननेवाली मैं अकेली ही क्यों न होऊं—तो क्या

इसका मतलब है कि इस शरीर का लक्ष्य पूरा हो गया है और उसकी जगह किसी और शरीर को इस काम को करना है? मैं तुझसे पूछती हूं और उत्तर मांगती हूं—कोई ऐसा संकेत जिससे मुझे निश्चित रूप से पता लग जाये कि अब भी मेरा काम है और मुझे समस्त विरोधों, समस्त निषेधों के होते हुए भी जारी रखना है।

संकेत चाहे कुछ भी हो, इसकी मुझे परवाह नहीं है पर होना चाहिये स्पष्ट।

*

मैं अब तक "मैं" नहीं कह सकती, क्योंकि जब मैं "मैं" कहती हूं तो लोग मेरे शरीर के बारे में सोचते हैं, और मेरा शरीर अब तक सचमुच "मैं" नहीं है, उसका रूपान्तर अब तक नहीं हुआ है, और यह बात उनके मनों में गड़बड़ पैदा करती है। इसके अलावा, मैंने हमेशा यह अनुभव किया है कि भौतिक चेतना में जीवन्त और निरंतर नम्रता बनाये रखने के लिए अपनी अपूर्णता देखने की मेरे शरीर की यह वृत्ति अनिवार्य थी।

जब रूपान्तर सर्वांगीण हो जायेगा, तब मैं कह सकूंगी, उससे पहले नहीं।

२१ अक्तूबर, १९५५

*

हे दिव्य 'प्रकाश', अतिमानसिक 'सद्वस्तु':

इस भोजन के साथ सारे शरीर में प्रवेश कर, प्रत्येक कोषाणु में प्रवेश कर, हर अणु के अन्दर अपने-आपको प्रतिष्ठित कर; वर दे कि हर चीज पूरी तरह सच्ची, निष्कपट और ग्रहणशील बन जाये, ऐसी सभी चीजों से मुक्त हो जो अभिव्यक्ति में बाधा देती हैं, संक्षेप में, मेरे शरीर के उन सभी भागों को जो अभी तक 'तू' नहीं हुए हैं, अपनी ओर खोल।

१६ जनवरी, १९५८

*

और शरीर परम प्रभु से कहता है: "तुम जो चाहते हो कि मैं बनूं, मैं वही

बनूंगा, तुम जो चाहते हो कि मैं जानूं, मैं उसे जानूंगा, तुम जो चाहते हो कि मैं करूं, उसे मैं करूंगा।"

३ अक्तूबर, १९५८

*

लेकिन इस शरीर को व्यायाम की जरूरत है और सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना वास्तव में बहुत अच्छा व्यायाम है। और फिर उसे मेरे काम में सहयोग देने की आदत है और अगर उसकी कठिनाइयों के कारण कोई परिवर्तन किया जाये तो उसे दुःख होगा।

अतः चीजें जैसी हैं वैसी ही चलती रहेंगी और जब कठिनाइयों में से उसके मुक्त होने का समय आयेगा, तब कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।

१७ फरवरी, १९६१

*

क्या आप कृपया मुझे अपने नये शरीर में दर्शन देंगी? मेरा ख्याल है कि यह आपकी सहायता से सम्भव होगा।

सहायता तो हमेशा रहती है लेकिन उसे ज्यादा तीव्र कर दिया जायेगा, क्योंकि तुम्हें काफी लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिये।

जनवरी, १९६३

*

मैं आपको आपके नये शरीर में देखना चाहता हूं। तब तक वर दीजिये कि आप जो कुछ दें उसे ग्रहण करके आत्मसात् कर सकूं।

मेरा ख्याल है तुम्हारा मतलब मेरे *नये रूप* या *रूपान्तरित* शरीर से है। क्योंकि *नये* शरीर के लिए, मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानती जो ऐसा पूर्ण, जीवित शरीर तैयार कर सके जिसमें मैं अपनी वर्तमान चेतना को खोये बिना कम-से-कम कुछ अंश में प्रवेश कर सकूं। हां, निश्चय ही यह

अपेक्षाकृत ज्यादा आसान प्रक्रिया होती, लेकिन इस शरीर के कोषाणुओं के प्रति यह न्यायोचित न होगा जो उत्साह से कितने भरे हैं, और सहर्ष रूपान्तर की दुष्कर प्रक्रिया के लिए अपने-आपको प्रस्तुत कर रहे हैं।

बहरहाल, जैसा मैं पहले ही कह चुकी हूं, तुम्हें उसके लिए लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा करने और बहुत-से जन्मदिन बीतते हुए देखने के लिए तैयार रहना चाहिये। निश्चय ही, यह बहुत अच्छा है और मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं।

२५ जनवरी, १९६३

*

मेरे बालकों में से हर एक के लिए

वे जब कभी मिथ्यात्व के आवेग में आकर सोचते, बोलते या कार्य करते हैं, तो उसका मेरे शरीर पर प्रहार के जैसा असर होता है।

१६ जुलाई, १९७२

*

सच कहूं तो मैं बिना पसंद-नापसंद के हर चीज खा सकती हूं, लेकिन चूंकि मेज पर चुनाव के लिए काफी कुछ होता है, इसलिए मैं वही चीज खाना पसंद करती हूं जिसे शरीर स्वीकार करता और आसानी से हजम करता है।

*

ऐसा कोई रोग नहीं जो मैंने न भोगा हो। मैंने सभी रोगों को अपने शरीर पर उनकी गति को जान सकने और भौतिक रूप से उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए लिया है, ताकि मैं उन पर क्रिया कर सकूं। लेकिन चूंकि मेरे शरीर में भय नहीं है और वह उच्चतर दबाव को उत्तर देता है, इसलिए मेरे लिए उनसे छुटकारा पाना ज्यादा आसान होता है।†

आशीर्वाद

प्रति दिन, प्रति पल मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

*

मेरे बालक,

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ तुम्हारी चेतना को विस्तृत बनाने और पवित्र करने के लिए हैं ताकि हमेशा तुम्हारे अन्दर शान्ति बनी रहे।

*

चाहे शब्द लिखे गये हों या नहीं, मैं हमेशा तुम्हें आशीर्वाद भेजती हूं।

२३ अप्रैल १९३४

*

तुम्हें जगाने के लिए मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहते हैं, लेकिन तुम्हें उनका उपयोग करना भी तो चाहना चाहिये।

२१ अक्तूबर, १९३५

*

आशीर्वाद भागवत कृपा का रूप हैं, चाहे व्यक्ति के लिए हों या समूह के लिए।

२२ अक्तूबर, १९३५

*

मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। यह समझ लो कि आशीर्वाद अच्छे-से-अच्छे आध्यात्मिक परिणाम के लिए हैं, यह जरूरी नहीं है कि वे मानवीय इच्छाओं के अनुसार हों।

*

मेरे आशीर्वाद बहुत भयंकर हैं। वे इसके लिए या उसके लिए, इस व्यक्ति

या उस वस्तु के विरुद्ध नहीं होते। वे... या, अच्छा, मैं रहस्यवादी भाषा में कहूंगी :

वे इसलिए हैं कि प्रभु की 'इच्छा' पूरी शक्ति और पूरे बल के साथ चरितार्थ हो। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि हमेशा सफलता मिले। अगर प्रभु की ऐसी 'इच्छा' हो तो असफलता भी हो सकती है। और 'इच्छा' प्रगति के लिए है, मेरा मतलब आन्तरिक प्रगति से है। अत: जो कुछ भी होगा अच्छे-से-अच्छे के लिए ही होगा।

२१ जनवरी १९६०

प्रकीर्ण

बहुत-से उदाहरणों से मैंने जाना है कि मेरा चेहरा दर्पण की तरह है जो हर एक को उसकी आन्तरिक अवस्था का चित्र दिखाता है।

२८ जून, १९३१

*

मेरी इच्छा होती है कि यह उत्तर दूं:

मैं इन सब रूढ़ियों से इतनी दूर रहती हूं कि मैंने इसके बारे में सोचा तक न था।

१६ मई, १९३२

*

(२४ अप्रैल, १९२० के बारे में)

मेरे पॉण्डिचेरी लौटने की वर्षगांठ जो विरोधी शक्तियों पर 'विजय' का सुनिश्चित प्रमाण था।

२४ अप्रैल, १९३७

*

विरोधी शक्ति पूछती है: "तुम कौन हो?"

"मैं वह निष्पक्ष और सच्चा दर्पण हूं जिसमें हर एक अपना सच्चा रूप देखता है।"

२५ मार्च, १९५२

*

मन में 'अतिमानस' बहुत पहले उतर चुका था—बहुत, बहुत पहले—और प्राण तक में भी: वह भौतिक में भी कार्य कर रहा था लेकिन परोक्ष रूप से, मध्यस्थों के द्वारा। प्रश्न था भौतिक में 'अतिमानस' की सीधी क्रिया का। श्रीअरविन्द ने कहा, यह तभी सम्भव हो सकता है अगर भौतिक मन

अतिमानसिक ज्योति को पा ले : अत्यन्त जड़-भौतिक पर सीधी क्रिया करने के लिए भौतिक मन ही यन्त्र था। अतिमानसिक प्रकाश को ग्रहण करने वाले इस भौतिक मन को श्रीअरविन्द ने नाम दिया 'प्रकाश का मन'।†

२५ जून, १९५३

*

जैसे ही श्रीअरविन्द ने अपना शरीर त्यागा, उसी समय जिसे वे 'प्रकाश का मन' कहते हैं, वह मेरे अन्दर चरितार्थ हो गया।†

*

माताजी का प्रतीक

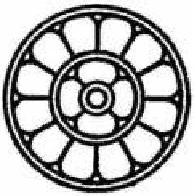

The central circle represents the Divine Consciousness.

The four petals represent the four powers of the Mother.

The twelve petals represent the twelve powers of the Mother manifested for Her work.

केन्द्रीय वृत्त 'भागवत चेतना' का प्रतीक है।

चार पंखुड़ियां माता की चार शक्तियों की प्रतीक हैं।

बारह पंखुड़ियां माता की बारह शक्तियों की जो उनके काम के लिए अभिव्यक्त हुई हैं।

*

केन्द्रीय वृत्त परम जननी, 'महाशक्ति' का प्रतीक है।

चार केन्द्रीय पंखुड़ियां मां के चार रूप हैं—और बारह पंखुड़ियां, उनकी बारह कलाएं।

१९५५

*

यह 'परम चेतना' के श्वेत 'कमल' का प्रतीकात्मक चित्र है। इसके केन्द्र में 'महाशक्ति' (मां का वह रूप जो वैश्व सृष्टि में व्यक्त हुआ) अपने चार रूपों और बारह कलाओं के साथ हैं।

*

श्रीअरविन्द कहते हैं: "शिक्षा का सच्चा आधार है मानव मन का, बाल, किशोर और वयस्क मन का अध्ययन।" लेकिन इसका अध्ययन कैसे किया जाता है? कहां से शुरू किया जाता है? इस अध्ययन में कौन-से कदम उठाने होंगे?

मुझसे मन के बारे में कोई प्रश्न मत पूछो; मुझे अब उसमें कोई रस नहीं रहा। मेरा ध्यान अधिमन के साथ जुड़ने पर लगा है।

९ दिसम्बर, १९७२

*

समस्या का समाधान प्राप्त करना कैसे सीखें?

मैं यह मन से नहीं दे सकती; इसे अन्दर से पाना होगा।

१७ फरवरी, १९७३

*

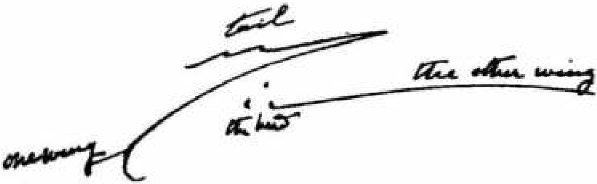

The bird of Grace messenger from the Supreme

मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ हैं और हमेशा की तरह सक्रिय है; लेकिन मैं अब मानसिक रूप से उत्तर नहीं देती।

५ मार्च, १९७३

*

तुम क्यों चाहते हो कि मैं कुछ कहूं?

मौन में सबसे बड़ी शक्ति है।

दूसरों के साथ सम्बन्ध

"मैं तुम्हारे साथ हूं"

माताजी हमेशा हर एक को उतना प्रेम देती है जितने की उसे जरूरत है।

११ जनवरी, १९३३

*

मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में विराजमान हूं, सचेतन रूप से तुम्हारे अन्दर रहती हूं।

२ सितम्बर, १९३५

*

अपने हृदय को खोलो और तुम मुझे वहां पहले से ही मौजूद पाओगे।

*

बेचैन न होओ, शान्ति के साथ अपने हृदय में एकाग्र रहो और तुम मुझे वहां पाओगे।

१ अक्तूबर, १९३५

*

मन्दिर के अन्दर गहराई में जाओ, तुम मुझे वहां पाओगे।

११ फरवरी, १९३८

*

सभी अभीप्सा करने वाली आत्माएं हमेशा मेरी सीधी देख-रेख में हैं।

२७ सितम्बर, १९५७

*

माताजी उन सबके साथ हैं जो दिव्य जीवन के लिए अभीप्सा में सच्चे हैं।

२६ मार्च, १९७१

*

माताजी, मैं अपने-आपको निरन्तर आपको अर्पित करता हूं। मैं यह रहा, मां।

मैं तुम्हें अपने हृदय से लगाती हूं और वहीं रखती हूं।
आशीर्वाद।

५ जून, १९७१

*

माताजी, कभी-कभी मैं इस नये स्पन्दन को अपने अन्दर उतरते हुए अनुभव करता हूं जो अपने साथ तेज, 'बल', आनन्द और न जाने क्या-क्या लाता है—यह कितना सुन्दर है। आप यहां हैं, मेरी मां।

मैं आन्तरिक रूप से हमेशा तुम्हारे साथ हूं।
आशीर्वाद।

१९ मई, १९७१

*

मैं हमेशा तुम्हारे पास, तुम्हारे अन्दर उपस्थित हूं, और मेरे आशीर्वाद मुझे लिये आते हैं।

*

यह विश्वास रखो कि मैं हमेशा तुम्हें रास्ता दिखाने के लिए, तुम्हारे काम में और तुम्हारी साधना में सहायता करने के लिए तुम लोगों के बीच उपस्थित रहती हूं।

*

अभी के लिए आवश्यक है चेतना के विस्तार और गहराई को बढ़ाना जिसके कारण तुम अपने साथ मेरी निरन्तर उपस्थिति का वास्तविक और ठोस रूप में अनुभव कर सकते हो जिससे तुम्हें निर्विकार शान्ति मिलेगी।

*

मेरी निरन्तर, प्रेममयी उपस्थिति का भान सदा बनाये रखो और सब कुछ ठीक होगा।

*

विश्वास रखो, मैं तुम्हारे पास हूं।

अपने समस्त कोमल प्रेम के साथ।

*

आज प्रणाम के समय पहली बार मैं 'क' के हृदय में प्रवेश कर पायी और मेरा कुछ अंश निकलकर उसमें बस गया।

१४ जून, १९३२

*

तुम्हारी चेतना के जागने से मैं खुश हूं। तुम्हें उसे अधिकाधिक विकसित होने देना चाहिये ताकि प्रकाश हर जगह प्रवेश कर सके, सबसे अधिक अंधेरे कोनों में भी जा सके।

मेरी सहायता और मेरा रक्षण हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१७ जून, १९३५

*

तुम्हारी प्रगति और तुम्हारे काम में मदद देने के लिए मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है।

तुम जिन कठिनाइयों को आज नहीं पार कर सकते उन्हें कल या बाद में पार कर लिया जायेगा।

*

मैं हमेशा ऊपर की ओर देखती हूं। 'सौन्दर्य', 'शान्ति', 'प्रकाश' वहां मौजूद हैं, वे नीचे आने के लिए तैयार हैं। अतः हमेशा अभीप्सा करो और उन्हें इस धरती पर अभिव्यक्त करने के लिए ऊपर देखो।

दुनिया की कुरूप चीजों की ओर नीचे न देखो। तुम जब कभी दुःखी

हो, तो हमेशा मेरे साथ ऊपर देखो।

*

बहुत शान्त रहो और तुम मेरी सहायता का अनुभव करोगे।

*

बालक, तुम्हें शिकायत है कि तुम मुझे केवल मित्र की तरह देखते हो... लेकिन ऐसा मित्र पाने से ज्यादा अच्छी बात क्या होगी जो जानता है, जो काम करता है, जो प्रेम करता है?

२१ सितम्बर, १९४५

*

मेरे बालक, निश्चय ही तुम्हें छोड़ देने का मेरा कोई इरादा नहीं है और तुम्हें चिंता न करनी चाहिये; तुम्हें एक बात मालूम होनी चाहिये और उसे कभी न भूलो : वह सब जो सच्चा और निष्कपट है जरूर रखा जायेगा। केवल वह जो मिथ्या और कपटपूर्ण है, वही गायब होगा।

तुम्हारे अन्दर मेरे लिए आवश्यकता जिस परिमाण में निष्कपट और सच्ची होगी, उस परिमाण में वह पूरी की जायेगी।

५ अक्तूबर, १९५५

*

मेरे प्रिय बालक,

तुम्हें छोड़ देने की यह सारी बात बकवास है।

मैं तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं कि तुम क्या हो और क्या नहीं हो; और जिसे तुम अपना निम्न प्राण कहते हो उसके पीछे छिपे हुए खजानों को जानती हूं।

तुम जो कुछ कहते हो उसमें बस एक ही बात सच्ची है, कि प्रेम नि:स्वार्थ और बिना शर्त होता है। तुम्हारे लिए मेरा और श्रीअरविन्द का प्रेम ऐसा ही है।

इसलिए हम तुम्हारी सारी बकवास पर कभी ध्यान नहीं देंगे और निश्चय ही तुमसे प्रेम करेंगे।

बिना डरे मेरे पास आओ। मैं तुम्हें नहीं डांटूंगी और न "गोल-गोल आंखों" से देखूंगी।

*

मेरे बहुत ही प्यारे बालक,

यद्यपि तुम बोले नहीं थे फिर भी इस बारे में मैं कुछ जानती थी, एक ही चीज का खेद है कि तुम्हें अपनी मां से इतना प्रेम और उस पर इतना विश्वास नहीं है कि तुम उससे खुलकर कह सकते। तुम यह कैसे सोच सके कि इससे तुम्हारे लिए मेरा प्रेम बदल जायेगा?

अब हमारे बीच कोई दीवार नहीं खड़ी है, 'क' और उसकी मां के बीच, और अगर मेरा प्रेम अधिक हो सकता है, तो अब होगा जब तुमने मेरे प्रति अपना पूरा भरोसा प्रकट कर दिया है।

*

श्रीअरविन्द ने तुम्हें जो लिखा है उसे याद रखो। जब ऐसे मूड आते हैं, तो तुम मां के पास से क्यों भाग जाते हो? इसके विपरीत, उनके पास जाओ और वह आसानी से तुम्हारा इलाज कर देंगी। उन्होंने जो कहा था उसका यही सार है।

*

मेरे अत्यन्त प्रिय बालक,

कैसे दुःख की बात है कि मेरा प्यारा बच्चा अस्वस्थ है। मैं आशा करती हूं कि अब वह ठीक हो रहा है; लेकिन चुपचाप रहो और काम की या किसी और चीज की चिंता न करो—जब तक यह सब दूर न हो जाये तब तक चलो-फिरो मत...। अगर तीसरे पहर तुम *बिलकुल स्वस्थ* अनुभव करो, तो आ जाना, मैं बहुत खुश होऊंगी।

अपने समस्त स्नेह और प्रेम के साथ मैं तुम्हारे पास हूं और तुम्हें अपनी भुजाओं में लिए हुए हूं और प्रार्थना कर रही हूं कि तुम शीघ्र, बहुत ही शीघ्र बिलकुल ठीक हो जाओ।

*

मेरा प्रेम अपनी पूरी तीव्रता के साथ तुम्हारे साथ रहता है और प्रेम की इस तीव्रता में मैंने अपने प्रभु से बार-बार प्रार्थना की है कि वे अपनी 'कृपा' तुम्हारे ऊपर उंडेलें और तुम्हें तुम्हारे अन्दर की अन्तरात्मा और 'दिव्य प्रकाश' के बारे में सचेतन कर दें, तुम्हें अपनी 'उपस्थिति' की परम सिद्धि प्रदान करें।

*

सभी बादल बिखर जायें, सभी आसक्तियां गायब हो जायें, सभी बाधाएं लुप्त हो जायें, ताकि तुम यहां, मेरे इतने नजदीक, भगवान् के घर में रहने से मिलने वाली शान्ति और आनन्द का पूरी तरह से रस ले सको।

*

मैं तुम्हें यह बताने के लिए लिख रही हूं कि निश्चय ही तुम्हें हर रोज मेरी उपस्थिति अनुभव करने के योग्य होना चाहिये। मैं तुम्हारे साथ कितने मूर्त रूप में हूं, मैं तुम्हें कितना स्पष्ट देखती हूं, हम आपस में बातचीत करते हैं, हम एक सुन्दर उद्यान के सामंजस्य का अवलोकन करते हैं; मैं तुम्हें बताती और समझाती हूं कि जो महान् शान्ति शाश्वत में, समस्त मानव दुःखों के परे, प्रभु की 'उपस्थिति' ('सत्य') में निवास करती है उसे अपने अन्दर हमेशा कैसे रखा जाये।

*

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे साथ मेरी बहुत गहरी सहानुभूति है। हमें उस दिन के लिए प्रार्थना करनी चाहिये जब 'सत्य' का 'प्रकाश' चेतना में फिर से प्रकट होगा। इस बीच मेरा प्रेम और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

*

मेरे प्रिय नन्हें बालक,

मेरा प्रेम तुम्हारे साथ रहता है। मैं प्रभु से यह निरन्तर प्रार्थना करती हूं कि वे तुम्हें तुम्हारे अन्दर अपनी 'उपस्थिति' के बारे में सचेतन कर दें

और इस तरह मेरे साथ एक कर दें।

*

बढ़ते हुए प्रकाश और शान्ति में मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

आगे बढ़ो, सदा ऊपर उठते हुए प्रेम, आनन्द और शान्ति में हमेशा आगे बढ़ते रहो।

*

मेरे बालक मुझे कभी न लिखें तो भी मैं उन्हें हमेशा समान रूप से याद करती और उनसे प्रेम करती हूं—और सभी सच्ची प्रार्थनाओं को हमेशा प्रत्युत्तर मिलता है चाहे मैं स्वयं न भी लिखूं। इसलिए दुःख न करो। और खुश रहो।

२१ नवम्बर, १९६२

*

> *मेरा ख्याल है कि हमेशा, हर क्षण कोई-न-कोई आपको बुलाता रहता है और आप उत्तर देती हैं। क्या इससे आपकी नींद या आपके विश्राम में बाधा नहीं पड़ती?*

दिन-रात सैकड़ों पुकारें आती रहती हैं—लेकिन चेतना हमेशा जाग्रत् रहती और उत्तर देती है।

हम केवल भौतिक रूप में देश और काल से सीमित होते हैं।

३ जनवरी, १९६८

*

'क' हमेशा हमारे विचारों में मौजूद रहता है और हमारे हृदयों में निवास करता है। विचार के लिए दुनिया छोटी है, हृदय के लिए कोई दूरी नहीं होती।

*

सर्दी के दिनों में तुम मां के प्रेम को अपने कंधों पर ओढ़ना चाहोगे।

*

कृपा करके कभी-कदास मुझे याद कर लिया कीजिये।

केवल इतना ही! मैं तुम्हारे बारे में इससे अधिक सोचा करती हूं!!

प्रेम और आशीर्वाद।

१९७०

*

मैं तुम्हारे साथ हूं

"मैं तुम्हारे साथ हूं।" इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

जब हम प्रार्थना करते हैं या किसी समस्या को लेकर अपने अन्दर जूझते हैं, तो क्या हमारे अनाड़ीपन और अपूर्णता के बावजूद, हमारी दुर्भावना और भ्रान्ति के बावजूद हमारी सुनवाई होती है? और कौन सुनता है? आप जो हमारे साथ हैं?

और आप अपनी परम चेतना में, निर्गुण भागवत शक्ति, योग-शक्ति के रूप में या भौतिक चेतना सहित सशरीर माताजी के रूप में? एक व्यक्तिगत उपस्थिति जो वास्तव में प्रत्येक विचार और प्रत्येक क्रिया को जानती है, जो कोई अनाम शक्ति नहीं है? क्या आप हमें यह बतला सकती हैं कि आप हमारे अन्दर कैसे, किस तरह विद्यमान हैं?

कहा जाता है कि आपकी और श्रीअरविन्द की चेतना एक ही है, लेकिन क्या आपकी और श्रीअरविन्द की वैयक्तिक उपस्थिति दो अलग चीजें हैं जो अपनी-अपनी विशिष्ट भूमिका निभाती हैं?

मैं तुम्हारे साथ हूं क्योंकि मैं तुम हूं या तुम मैं हो।

मैं तुम्हारे साथ हूं, इसके बहुत सारे अर्थ होते हैं, क्योंकि मैं सभी स्तरों पर, सभी भूमिकाओं में, परम चेतना से लेकर अत्यन्त भौतिक

चेतना तक तुम्हारे साथ हूं। यहां, पॉण्डिचेरी में, तुम मेरी चेतना को अन्दर लिए बिना श्वास भी नहीं ले सकते। वह सूक्ष्म भौतिक में सारे वातावरण को लगभग भौतिक रूप में भरे हुए है, और यहां से दस किलोमीटर दूर झील तक ऐसा है। उसके आगे, मेरी चेतना को भौतिक प्राण में अनुभव किया जा सकता है, उसके बाद मानसिक स्तर पर तथा अन्य उच्चतर स्तरों पर हर जगह। जब मैं यहां पहली बार आयी थी तो, मैंने भौतिक रूप से दस किलोमीटर नहीं, दस समुद्री मील की दूरी से श्रीअरविन्द के वातावरण का अनुभव किया था। वह एकदम अचानक, बहुत ठोस रूप में, एक शुद्ध, प्रकाशमय, हल्का, ऊपर उठानेवाला वातावरण था।

बहुत समय पहले श्रीअरविन्द ने आश्रम में हर जगह यह अनुस्मारक लगवा दिया था जिसे तुम सब जानते हो : "हमेशा ऐसे व्यवहार करो मानों माताजी तुम्हें देख रही हैं, क्योंकि, वास्तव में, वे हमेशा उपस्थित हैं।"

यह केवल एक वचन नहीं है, कुछ शब्द नहीं हैं, यह एक तथ्य है। मैं तुम्हारे साथ बहुत ठोस रूप में हूं और जिनमें सूक्ष्म दृष्टि है वे मुझे देख सकते हैं।

सामान्य रीति से मेरी 'शक्ति' हर जगह कार्यरत है, वह हमेशा तुम्हारी सत्ता के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को इधर-उधर हटाती और नये रूप में रखती तथा तुम्हारे सामने तुम्हारी चेतना के नये-नये रूपों को निरूपित करती रहती है ताकि तुम देख सको कि क्या-क्या बदलना, विकसित करना या त्यागना है।

उसके अलावा, मेरे और तुम्हारे बीच एक विशेष सम्बन्ध है, उन सबके साथ जो मेरी और श्रीअरविन्द की शिक्षा की ओर मुड़े हुए हैं,— और, यह भली-भांति जानी हुई बात है कि इसमें दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता, तुम फ्रांस में हो सकते हो, दुनिया के दूसरे छोर पर हो सकते हो या पॉण्डिचेरी में, यह सम्बन्ध हमेशा सच्चा और कायम रहता है। और हर बार जब पुकार आती है, हर बार जब इसकी जरूरत हो कि मुझे पता लगे ताकि मैं एक शक्ति, एक प्रेरणा या रक्षण या कोई और चीज भेजूं, तो अचानक मेरे पास एक सन्देश-सा आता है और मैं जो जरूरी होता है वह कर देती हूं। यह तो स्पष्ट है कि ये सन्देश मेरे पास किसी भी समय पहुंचते रहते हैं, और तुमने कई बार मुझे अचानक किसी वाक्य या काम

के बीच रुकते देखा होगा; यह इसलिए कि कोई चीज मेरे पास आती है, कोई सन्देश आता है और मैं एकाग्र हो जाती हूं।

जिन लोगों को मैंने शिष्य रूप में स्वीकार लिया, जिन्हें "हां" कह दी है, उनके साथ सम्बन्ध से बढ़कर कुछ और होता है, उनके साथ मुझसे निकला कुछ अंश रहता है। जब कभी जरूरत हो तो यह अंश मुझे चेतावनी देता है और मुझे बतलाता है कि क्या हो रहा है। वास्तव में मुझे सारे समय सूचनाएं मिलती रहती हैं, परंतु मेरी सक्रिय स्मृति में वे सब अंकित नहीं होतीं। तब तो मेरे अन्दर बाढ़ आ जायेगी; भौतिक चेतना फिल्टर या छन्ने का काम करती है। चीजें एक सूक्ष्म स्तर पर अंकित होती हैं, वे वहां अव्यक्त अवस्था में रहती हैं, मानों कोई संगीत ध्वन्यांकित तो कर लिया गया हो पर बजाया न गया हो, और जब मुझे अपनी भौतिक चेतना में कुछ जानने की जरूरत होती है, तो मैं इस सूक्ष्म भौतिक स्तर के साथ सम्पर्क जोड़ती हूं और रेकार्ड बजने लगता है। तब मैं देखती हूं कि चीजें कैसी हैं, समय के साथ उनका क्या विकास हुआ और उनका वास्तविक परिणाम क्या है।

और अगर किसी कारण से तुम मुझे चिट्ठी लिखो और मेरी सहायता मांगो और मैं उत्तर दूं "मैं तुम्हारे साथ हूं", तो इसका मतलब यह है कि तुम्हारे साथ की संचार-व्यवस्था सक्रिय हो गयी है, तुम कुछ समय के लिए, जितने समय के लिए जरूरी हो, मेरी सक्रिय चेतना में आ जाते हो।

और मेरे और तुम्हारे बीच का यह सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। ऐसे लोग हैं जिन्होंने विद्रोह की अवस्था में बहुत पहले आश्रम छोड़ दिया था, और फिर भी मैं उनके बारे में टोह लेती रहती हूं, उनकी देखभाल करती हूं। तुम्हें कभी ऐसे ही छोड़ नहीं दिया जाता।

सच तो यह है कि मैं अपने-आपको हर एक के लिए जिम्मेदार मानती हूं, उनके लिए भी जिनसे मैं अपने जीवन में बस निमिषमात्र के लिए ही मिली हूं।

यहां एक बात याद रखो। श्रीअरविन्द और मैं एक ही हैं, एक ही चेतना हैं, एक और अभिन्न व्यक्ति हैं। हां, जब यह शक्ति या यह उपस्थिति, जो एक ही है, तुम्हारी वैयक्तिक चेतना में से गुजरती है, तो वह एक रूप, एक आकार धारण कर लेती है जो तुम्हारे स्वभाव, तुम्हारी अभीप्सा,

तुम्हारी आवश्यकता, तुम्हारी सत्ता के विशेष मोड़ के अनुसार होता है। तुम्हारी वैयक्तिक चेतना, यह कहा जा सकता है, एक छन्ने या एक सूचक की तरह होती है जो अनन्त दिव्य सम्भावनाओं में से एक सम्भावना को चुनकर निश्चित कर लेती है। वस्तुतः भगवान् हर एक व्यक्ति को वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा करता है। अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् बहुत दूर और क्रूर हैं, तो वे दूर और क्रूर होंगे, क्योंकि तुम्हारे चरम कल्याण के लिए यह जरूरी होगा कि तुम भगवान् के कोप का अनुभव करो; काली के पुजारियों के लिए वे काली होंगे और भक्तों के लिए 'परमानन्द'। और ज्ञानपिपासु के लिए वे 'सर्वज्ञान' होंगे, मायावादियों के लिए परात्पर 'निर्गुण ब्रह्म'; नास्तिक के साथ वे नास्तिक होंगे और प्रेमी के लिए प्रेम। जो उन्हें हर क्षण, हर गति के आन्तरिक निदेशक के रूप में अनुभव करते हैं उनके लिए वे बंधु और सखा, हमेशा सहायता करने के लिए तैयार, वफादार दोस्त रहेंगे। और अगर तुम यह मानों कि वे सब कुछ मिटा सकते हैं, तो वे तुम्हारे सभी दोषों, तुम्हारी सभी भ्रांतियों को, बिना थके, मिटा देंगे, और तुम हर क्षण उनकी अनन्त 'कृपा' का अनुभव कर सकोगे। वस्तुतः भगवान् वही हैं जो तुम अपनी गहरी-से-गहरी अभीप्सा में उनसे आशा करते हो।

और जब तुम उस चेतना में प्रवेश करते हो जहां तुम सभी चीजों को एक ही दृष्टि में देख सको, मनुष्य और भगवान् के बीच सम्बन्धों की अनन्त बहुलता को देख सको, तो तुम देखते हो कि यह सब अपने पूरे विस्तार में कैसा अद्भुत है। अगर तुम मानवजाति के इतिहास को देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि मनुष्य जो समझे हैं, उन्होंने जिसकी इच्छा और आशा की है, जिसका स्वप्न लिया है, उसके अनुसार भगवान् कितने विकसित हुए हैं। वे किस तरह जड़वादी के साथ जड़वादी रहे हैं और हर रोज किस तरह बढ़ते जाते हैं और जैसे-जैसे मानव चेतना अपने-आपको विस्तृत करती है वे भी दिन-प्रतिदिन निकटतर और अधिक प्रकाशमान होते जाते हैं। हर एक चुनाव करने के लिए स्वतन्त्र है। सारे संसार के इतिहास में मनुष्य और भगवान् के सम्बन्ध की इस अनन्त विविधता की पूर्णता एक अकथनीय चमत्कार है। और यह सब मिलाकर भगवान् की समग्र अभिव्यक्ति के एक क्षण के समान है।

भगवान् तुम्हारी अभीप्सा के अनुसार तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाह्य प्रकृति की सनकों के आगे झुकते हैं, —यहां मैं तुम्हारी सत्ता के सत्य की बात कह रही हूं। और फिर भी, कभी-कभी भगवान् अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्सा के अनुसार गढ़ते हैं, और अगर तुम, भक्तों की तरह, बारी-बारी से मिलन और बिछोह में, आनन्द की पुलक और निराशा में रहते हो, तो भगवान् भी तुमसे, तुम्हारी मान्यता के अनुसार, बिछुड़ेंगे और मिलेंगे। इस भांति मनोभाव, बाहरी मनोभाव भी, बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, कितना बड़ा चमत्कार है, चमत्कारों को जन्म देनेवाली है। अगर तुम यह आशा करते हो कि हर क्षण तुम्हें ऊपर उठाया जाये और भगवान् की ओर खींचा जाये, तो वे तुम्हें उठाने आयेंगे और वे बहुत निकट, निकटतर, सदैव निकट होंगे।

"मेरे निकट होना"

सचमुच में और प्रभावशाली रूप से सदा मेरे निकट रहने के लिए तुम्हें अधिकाधिक सच्चा और निष्कपट, मेरे प्रति खुला और स्पष्टवादी होना चाहिये। समस्त कपट को उठा फेंको और यह निश्चय करो कि तुम ऐसा कुछ न करोगे जिसे तुम मुझे तुरत न बतला सको।

*

केवल वही करो जो तुम मेरे आगे घबराये बिना कर सकते हो, केवल वही बात कहो जिसे तुम मेरे आगे कठिनाई के बिना दोहरा सको।

*

बहुत सच्चे, निष्कपट और सीधे बनो, अपने अन्दर किसी ऐसी बात को प्रश्रय न दो जिसे तुम डरे बिना मुझे न दिखा सको, कोई ऐसा काम न करो जिसके लिए तुम्हें मेरे आगे लज्जित होना पड़े।

*

मेरे साथ अपने सम्बन्धों में बालक की तरह सीधे, सरल और सहज बनने की कोशिश करो—यह तुम्हें बहुत-सी मुश्किलों से बचायेगा।

*

सरल बनो,
खुश रहो,
शान्त रहो,
अपना काम जितना अच्छा कर सको करो,
अपने-आपको हमेशा मेरी ओर खुला रखो—
तुमसे बस इसी की मांग की जाती है।

शारीरिक सामीप्य

मैं तुमसे मिलती हूं या नहीं, इससे सहायता में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह हमेशा रहेगी।

*

तुम्हें अपने मन से इन दो मिथ्यात्वों को दूर कर देना चाहिये।

१) तुम्हें मुझसे जो मिलता है उसका दूसरों के पास जो है या नहीं है उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध केवल तुम्हारे ऊपर निर्भर है; मैं तुम्हें तुम्हारी सच्ची आवश्यकता और योग्यता के अनुसार देती हूं। यहां भी, तुम मेरे साथ अकेले ही थे; अगर दूसरे न भी होते तो भी तुम्हें इससे ज्यादा न मिलता।

२) यह सोचना बहुत बड़ी भूल है कि प्रगति के लिए शारीरिक सामीप्य एकमात्र अनिवार्य चीज है। अगर तुम आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित न कर सके तो यह तुम्हारे लिए कुछ भी न करेगा, क्योंकि उसके बिना तुम चाहे दिन-रात मेरे साथ बने रहो, फिर भी तुम सचमुच कभी मेरे पास नहीं होगे। केवल आन्तरिक उद्घाटन और सम्पर्क के द्वारा ही तुम मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सकते हो।

*

माताजी के निवृत्त[1] हो जाने से हमारे लिए एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गयी। माताजी और बहुत-से आश्रमवासियों के बीच पहले से ही जो भौतिक दूरी थी क्या वह अब बढ़नेवाली है? और क्या उनकी सतत निगरानी के बिना आश्रम के काम-धाम चल सकते हैं? क्या उनके इस तरह से निवृत्त होने के समय आश्रमवासियों के हितों को नुकसान न पहुंचेगा? क्या वे पहले की तरह अब भी हमारी देखभाल करेंगी?

तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि हर एक को जीवन में वही मिलता है जो उसके अपने अस्तित्व की अभिव्यक्ति हो। 'कृपा' और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं। जो मेरी शक्ति पर निर्भर हैं, सदा की तरह उनकी देखभाल मैंने एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ी।

२२ मई, १९६२

*

काम करो—मेरी प्रेरणा और मेरा पथ-प्रदर्शन हमेशा तुम्हारे साथ होंगे; और जब जरूरी होगा मैं तुमसे भौतिक रूप से भी मिलूंगी। लेकिन मैं इस आवश्यकता को अधिकाधिक कम करने के लिए काम कर रही हूं। क्योंकि कार्य की पूर्णता के लिए आन्तरिक पथ-प्रदर्शन को पाने के योग्य होना अनिवार्य है।

२१ दिसम्बर, १९६४

*

अब जब तुम यहां हो तो बस यही करो कि अपने भूतकाल को भूल जाओ और अपने यहां के काम पर एकाग्र होओ। यह सच है कि अभी के लिए मैं तुमसे नियमित रूप से नहीं मिल सकती, लेकिन तुम्हें *आन्तरिक*

[1] २० मार्च, १९६२ से माताजी ने अपने कमरे से नीचे आना बन्द कर दिया था और उनसे मिलने-जुलने की पहले जैसी छूट न रही थी; कुछ समय बाद उन्होंने लोगों से मिलना शुरू किया किन्तु समयादेश देकर।

सम्पर्क प्राप्त करना सीखना चाहिये (मेरे निवृत्त होने के मुख्य कारणों में से एक यह है) और तब तुम जानोगे कि मैं हमेशा तुम्हें राह दिखाने और तुम्हारी मदद करने के लिए तुम्हारे साथ हूं और तुम अपनी साधना करने के लिए यहां से अच्छी परिस्थितियां कहीं नहीं पा सकते।

*

यह कहना ज्यादा सच होगा कि अमुक विचार, अमुक भावनाएं और अमुक कार्य लोगों को मुझसे दूर ले जाते हैं या समस्त भौतिक सामीप्य के होते हुए भी मेरे और व्यक्ति के बीच अलगाव पैदा कर देते हैं।

१ मई, १९६८

*

हमें लगता है कि हम आपकी उपस्थिति से दूर हो गये हैं; मेरी मां, यह अलगाव केवल एक भ्रांति है न?

कोई वास्तविक अलगाव है ही नहीं, लेकिन अगर चेतना कोई गलत वृत्ति अपनाये, तो वह अपने-आपको ऐसी स्थिति में रख देती है जिसमें अलगाव का संवेदन या भाव होता है।

*

क्या आपके साथ भौतिक सम्पर्क अनिवार्य है?

नहीं, यह भौतिक सम्पर्क अनिवार्य नहीं है। यह निश्चित है कि जिनका मनोभाव ठीक होता है, उनके शरीर को भौतिक सम्पर्क रूपान्तर की गति का अनुसरण करने में सहायता देता है, लेकिन शरीर कदाचित् ही ऐसी अवस्था में होता है कि उससे लाभ उठा सके। साधारणतः जन्मदिनों पर वह ज्यादा ग्रहणशील होता है।

सितम्बर, १९७१

*

अब मैं सक्रिय जीवन में नहीं हूं; अगर तुम खुले हुए होओ तो सहायता आयेगी ही आयेगी।

१४ दिसम्बर, १९७२

पथ-प्रदर्शक की भूमिका

अगर तुम बिलकुल सच्चे हो तो मेरे साथ इस बात में सहमत होगे कि तुम मेरे बहुत अधिक दिव्य होने की नहीं, पर्याप्त दिव्य न होने की शिकायत कर रहे हो। क्योंकि, उदाहरण के लिए, यदि मैंने अपने भौतिक शरीर में वैसा रूप धारण किया होता जैसा प्राचीन भारतीय परंपरा में संजोया गया है, तो कितनी सुविधा होती! कल्पना करो, कितना अच्छा होता यदि मेरे बहुत-से सिर होते, बहुत-सी भुजाएं होतीं और साथ ही सर्वव्यापकता की क्षमता होती, तो जब 'क' मेरे नख-प्रसाधन के लिए आकर, किसी विशेष शिष्टाचार के बिना आने की सूचना देने के लिए दरवाजा खटखटाती, (वह बहुत व्यस्त होती है इसलिए मैं उसे खटखटाने के लिए मना भी नहीं कर सकती) तो उस समय मैं उसके पास उसके काम के लिए एक जोड़ी हाथ भेज देती और साथ ही अपने छोटे क़मरे में वहां पर बैठे हुए 'ख' की बातों का उत्तर देने के लिए बनी रहती, कितना अच्छा होता!...

तो, तुम देख रहे हो न, मुझे लगता है कि मैंने बहुत अधिक मानव बनना स्वीकार किया है, देश और काल के मानवीय नियमों से बहुत अधिक बंधी हुई हूं, और इसलिए, एक ही साथ आधा दर्जन चीजें करने में असमर्थ हूं।

१२ जनवरी, १९३२

*

प्रभो, मुझे अपनी ससीमताओं के लिए खेद है... लेकिन उनके द्वारा, उन्हीं के कारण मनुष्य तुम तक पहुंच सकते हैं। उनके बिना, तुम उतने ही दूरवर्ती और अगम्य बने रहते कि मानों तुमने कभी हाड़-मांस का शरीर धारण ही न किया हो।

इसीलिए उनकी हर प्रगति मेरे लिए सच्ची मुक्ति का द्योतक है, क्योंकि तुम्हारी तरफ बढ़ाया हुआ उनक हर कदम इन ससीमताओं में से एक को दूर हटाने और तुम्हें अधिकाधिक सचाई, अधिकाधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करने का मुझे अधिकार देता है।

फिर भी, इन ससीमताओं से पिण्ड छुड़ाया जा सकता था। लेकिन फिर यह आवश्यक होता कि हम अपने पास केवल उन्हीं लोगों को रखते जिन्हें भगवान् की अनुभूति हो चुकी है, जिन्होंने तुम्हारे साथ तादात्म्य पा लिया है प्रभो, भले वह एक ही बार हो, चाहे अपने अन्दर या इस विश्व में। क्योंकि यह तादात्म्य हमारे योग का अनिवार्य आधार है, यह उसका आरंभ-बिंदु है।

१७ जुलाई, १९३२

*

लोग मुझसे नहीं, मेरे बारे में अपने ही बनाये हुए मानसिक और प्राणिक रूप से प्रेम करते हैं। मुझे इस तथ्य का अधिकाधिक सामना करना पड़ता है। हर एक ने अपनी आवश्यकताओं और कामनाओं के अनुसार अपने लिए मेरी प्रतिमा बना ली है, और उसका सम्बन्ध इसी प्रतिमा के साथ होता है, वह उसी के द्वारा वैश्व शक्तियों की थोड़ी-सी मात्रा और उससे भी कम अतिमानसिक शक्तियों की मात्रा पाता है जो इन सब रचनाओं में से छनकर जा पाती है। दुर्भाग्यवश, वे मेरी भौतिक उपस्थिति से चिपके रहते हैं, अन्यथा मैं अपने आन्तरिक एकान्त में जाकर वहां से चुपचाप, स्वतन्त्रतापूर्वक काम करती हूं; लेकिन उनके लिए यह भौतिक उपस्थिति एक प्रतीक है और इसीलिए वे उससे चिपके रहते हैं, क्योंकि वस्तुतः मेरा शरीर सचमुच जो है या वह जिस जबर्दस्त सचेतन ऊर्जा के पुंज का प्रतीक है उसके साथ उनका बहुत ही कम वास्तविक सम्पर्क होता है।

और अब, हे 'उच्चतर शक्ति', जब कि तुम मेरे अन्दर उतर रही हो और मेरे शरीर के सभी अणुओं में पूरी तरह से प्रविष्ट हो रही हो, तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे और मेरे चारों ओर की हर चीज के बीच दूरी अधिकाधिक बढ़ रही है, और मैं अधिकाधिक यह अनुभव करती हूं कि मैं कांतिमय व प्रफुल्लित चेतना के एक ऐसे वातावरण में तैर रही

हूं जो उनकी समझ के बिलकुल परे है।

११ जून, १९५४

*

हे प्रभो, क्योंकि मैं सिर्फ तुम्हारे साथ प्रेम करती हूं, अतः मैं सबके अन्दर और हर एक के अन्दर तुमसे ही प्रेम करती हूं; और उनमें स्थित तुमसे प्रेम करने के द्वारा मैं अन्ततः उन्हें तुम्हारे बारे में जरा सचेतन बना दूंगी।

उनके लिए, असली चीज है यह जानना कि बिना किसी पसंद के, बिना किसी रुकावट के अपने साथ कैसे प्रेम करने दें। लेकिन इतना ही नहीं कि वे अपने तरीके को छोड़कर किसी और तरीके से प्रेम नहीं चाहते, वे अपने-आपको प्रेम के प्रति तब तक नहीं खोलना चाहते जब तक वह उनके चुने हुए माध्यम के द्वारा न आये... और जो चीज कुछ घंटों में, कुछ महीनों में, कुछ वर्षों में की जा सकती है वह चरितार्थ होने के लिए शताब्दियां ले लेती है।

*

हर उपस्थित व्यक्ति के साथ सचेतन सम्पर्क स्थापित कर लेने के बाद मैं परम प्रभु के साथ एक हो जाती हूं और तब मेरा शरीर केवल एक माध्यम के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता जिसमें से वे सब पर अपना 'प्रकाश', 'चेतना' और 'आनन्द' उंडेलते हैं, हर एक पर उसकी क्षमता के अनुसार।

*

मैं तुम सबमें द्वार खोलने के लिए पूरा ध्यान देती हूं, ताकि अगर तुम्हारे अन्दर एकाग्रता का जरा-सा भी स्पन्दन हो, तो तुम्हें ऐसे बन्द दरवाजे के सामने बहुत-बहुत देर तक न ठहरना पड़े जो हिलता तक नहीं, जिसकी चाबी तुम्हारे पास नहीं है और जिसे तुम खोलना नहीं जानते।

दरवाजा खुला हुआ है, तुम्हें उस दिशा में देखना भर होगा। तुम्हें उसकी ओर पीठ नहीं फेरनी चाहिये।

*

मैं किसी का गुरु होने के लिए उत्सुक नहीं हूं। मेरे लिए सबकी मां होने का और उन्हें चुपचाप प्रेम की शक्ति द्वारा आगे ले जाने का अनुभव ज्यादा सहज और स्वाभाविक है।

१९ सितम्बर, १९६१

*

मैं किसी का गुरु होने के लिए उत्सुक नहीं हूं। मेरे लिए विश्व-जननी होना और प्रेम के द्वारा नीरवता में काम करना ज्यादा सहज और स्वाभाविक है।

लेकिन चूंकि तुमने पूछा है, इसलिए मैं उत्तर देती हूं।

जब तुमने मंत्र का उपयोग करना शुरू किया तो मैंने उसे प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें शक्ति रखी थी। अब जब तुमने बताया है कि इस मंत्र का शब्द क्या है, तो मैं उसमें शक्ति को स्थायी करती हूं।

*

आपके साथ मेरे सम्बन्ध के बारे में आप क्या सोचती हैं?

क्या तुम विश्व-जननी के पुत्र नहीं हो?

२५ जुलाई, १९७०

*

अभी तक मेरी सहजवृत्ति परम जननी की थी जो सारे विश्व को अपनी प्रेममयी भुजाओं में लिये रहती है और मैं हर एक के साथ एक ऐसे बच्चे की तरह व्यवहार करती थी जिसकी हर बात समान रूप से सह ली जाती है; और यहां के लोग मुझे प्रसन्न करने के लिए जो कुछ करते थे उसे मैं उनके प्रेम के चिह्न के रूप में स्वीकारती थी और उसके लिए बहुत कृतज्ञ थी। आज मैंने जान लिया है कि अगर सब नहीं, तो बहुत-से मुझे गुरु के रूप में मानते और देखते हैं और वे मुझे प्रसन्न करने के लिए उत्सुक हैं, क्योंकि गुरु को प्रसन्न करना मार्ग पर पुण्य अर्जन करने का सबसे अच्छा तरीका है। और तब मैंने यह समझ लिया है कि गुरु का

कर्तव्य है कि हर एक में केवल उन्हीं चीजों को प्रोत्साहन दे जो उसे तेजी से प्रभु की ओर ले जा सकें और 'भागवत उद्देश्य' की पूर्ति करें,—और मैं इस पाठ के लिए बहुत कृतज्ञ हूं।

*

हर एक को अपने ही मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, जो अनिवार्य रूप से, लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सबसे अच्छा और सबसे तेज होता है।

चूंकि मैं रास्ता जानती हूं, इसलिए उसे औरों को दिखाना मेरा कर्तव्य है।

*

जब मैं कहती हूं कि मैंने किसी को दीक्षा दी है, तो उसका मतलब होता है कि मैंने इस व्यक्ति के आगे अपने-आपको *बिना बोले* प्रकट किया है, और वह यह देखने, अनुभव करने और जानने के योग्य है कि मैं 'कौन' हूं।

"जो चाहो करो"

मैं वही चाहता हूं जो आप उत्तम समझें।

जब लोग दो विकल्प सुझाते हैं और मुझसे पूछते हैं कि क्या करें, तो जब इनमें से कोई भी एक-दूसरे से अच्छा न हो तो मैं जवाब देती हूं, "जो चाहो करो।"

१७ जनवरी, १९३३

*

स्पष्ट है कि "अगर तुम चाहो" का अर्थ यह है कि यह खतरा है कि तुम जो करना चाहते हो उसके परिणाम तुम्हारी साधना के लिए बहुत अच्छे न होंगे, लेकिन साथ ही यह भी कि शायद तुम यह आवश्यक प्रगति करने के

लिए तैयार नहीं हो जो तुम्हें इस योग्य बनाये कि जो तुम करना चाहते हो उसे न करो।

२९ मार्च, १९३३

*

ऐसा मालूम होता है कि तुम मेरी सीधी, स्पष्ट, सरल बात समझने के लिए बहुत ज्यादा पेचीदा और जटिल हो! जब मैं कहती हूं, "यह सबसे अच्छा है" तो मेरा मतलब है कि यही *सबसे अच्छा* है, अतः यही करना चाहिये। और मैं जिसे समर्पण कहती हूं वह मेरी व्यवस्था के उत्तर में दूसरा प्रस्ताव रखना नहीं बल्कि उसे पूरे दिल के साथ स्वीकार करना है।

तुम शान्ति की मांग करते हो मानों मैं उसे खींचे ले रही हूं—लेकिन जब मैंने तुम्हें कृपा, विश्वास और तुम्हारा ख्याल करके सर्वोत्तम भावनाओं के साथ लिखा, "करने के लिए यह सबसे अच्छी चीज है" तो अगर तुम तुरंत उत्तर देते "जी हां, माताजी, यही हो", तो निश्चय ही तुम अपने अन्दर अधिक शान्ति अनुभव करते और साथ ही एक मधुर आनन्द भी।

२६ जुलाई, १९३९

*

जिस पत्र में मैंने बतलाया था कि मैं क्या करने की सोचता हूं, उसके उत्तर में आप कहती हैं : "तुम जो मरजी करो। लेकिन चूंकि तुम मेरी राय जानना चाहते हो इसलिए मैं कहूंगी कि यह मूर्खतापूर्ण है।" क्या यह इसलिए मूर्खतापूर्ण है क्योंकि मुझे लगता है कि परिस्थितियां अकाट्य हैं? एक और बात : आपने ये शब्द क्यों छोड़ दिये : "प्रेम और आशीर्वाद", जो आप हमेशा लिखा करती हैं और जिनका मेरे लिए बहुत अधिक मूल्य है?

"यह मूर्खतापूर्ण है" मेरे इन शब्दों में प्रश्न के बहुत-से पहलू आ गये जिनमें नितांत बाह्य भी आ जाता है। जिसे तुम यह मानने की मूर्खता बताते हो कि परिस्थितियां अकाट्य हैं जब कि वे ऐसी नहीं हैं, यह भी उन्हीं का एक भाग है।

मैंने जानबूझकर "प्रेम और आशीर्वाद" शब्द नहीं लिखे, क्योंकि मैं नहीं चाहती कि तुम यह मान बैठो कि मैं तुम्हारे उद्यम को आशीर्वाद दे रही हूं—नहीं, मैं नहीं दे रही—ठीक इसी कारण कि मैं उसे मूर्खतापूर्ण मानती हूं। इसलिए, अगर मैं प्रेम और आशीर्वाद के साथ खतम करूं तो तुम भूल न कर बैठो। ये शब्द तुम्हारी बाहरी सत्ता के लिए नहीं, अन्तरात्मा के लिए हैं जिसके बारे में अभी तुम बहुत सचेतन नहीं हो।

१८ जून, १९४२

*

मुझे इतना डर क्यों लगता है?

क्योंकि तुम्हारा ख्याल है कि मैं तुम्हारे ऊपर अपनी इच्छा लादना चाहती हूं; लेकिन यह गलत है। इसके विपरीत, मैं तुम्हें अपने लिए निर्णय करने के लिए बिलकुल स्वाधीन छोड़ना चाहती हूं। लेकिन जिसे तुम नहीं जान सकते, जिसकी तुममें पूर्वदृष्टि नहीं है, मैं उसे देख सकती हूं और जानती हूं और मैं जो देखती हूं वह तुम्हें बतलाती हूं, बस इतना ही। यह तुम्हारे हाथ में है कि तुम मेरे ज्ञान का उपयोग करो या न करो। तुम्हारा एक वर्ष तक प्रतीक्षा करने का निश्चय बुद्धिमत्तापूर्ण है और मुझे खुशी है कि तुमने ऐसा निश्चय किया है।

१३ फरवरी, १९५४

*

किसी ने भी तुम्हें योग करने के लिए बाधित करने के बारे में कभी नहीं सोचा। अगर तुम परिस्थितियों पर अधिकार पाने के लिए योग करना चाहते हो तो यह कोई बहुत भव्य या उदात्त उद्देश्य नहीं है, और तुम यह आशा नहीं कर सकते कि मैं उसमें तुम्हारी सहायता करूंगी। मैं तुम्हारी सहायता तभी कर सकती हूं जब तुम्हारा उद्देश्य हो 'सत्य' की *खोज* और पूरी तरह से 'सत्य' के प्रति समर्पण कर देना (पूर्वानुमान न लगा लेना कि तुम जो सोचते हो वही सत्य है)। तो निर्णय तुम्हारे हाथ में है।

१ दिसम्बर, १९६१

*

मुझे तुमसे यह कहना पड़ेगा कि मैं न स्वीकार करती हूं, न अस्वीकार—कोई पसंद या नापसंद नहीं है, कोई कामना या निजी इच्छा नहीं है। हर एक को व्यक्तिगत रूप से देखा जाता है, और ऐसा उत्तर दिया जाता है जो आध्यात्मिक दृष्टि से उसके लिए अच्छे-से-अच्छा हो।

अपने मां-बाप के पास जाओ, और साथ ही तुम यह भी जान जाओगे और निश्चय कर सकोगे कि तुम सचाई के साथ और सब चीजों की अपेक्षा 'भागवत जीवन' को ज्यादा चाहते हो या नहीं।

८ अक्तूबर, १९६६

*

मुझे अपनी इच्छा औरों पर लादने की आदत नहीं है।

अगर वे स्वयं सहायता की मांग करें, तो सहायता दी जायेगी।

२४ अक्तूबर, १९६७

"मैं नाराज नहीं हूं"

तुम्हारे अन्दर ये बुरे सुझाव (कि मैं तुम्हें प्रेम नहीं करती, कि तुम चले जाना चाहते हो) इसलिए आते हैं क्योंकि तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहे थे। लेकिन अब जब तुमने मेरी इच्छा के अनुसार काम करने का निश्चय कर लिया है, ये बुरे सुझाव गायब हो जायेंगे।

मुझसे तुम्हारे विरुद्ध किसी ने कुछ नहीं कहा।

२४ दिसम्बर, १९३१

*

तुम्हें हमेशा के लिए और पूरी तरह से यह विचार छोड़ देना चाहिये कि मैं नाराज होती हूं—मुझे यह अजीब लगता है! अगर मैं मानव दुर्बलताओं के सामने नाराज होने लगूं तो निश्चय ही मैं जो काम कर रही हूं उसके अयोग्य होऊंगी, और मेरे धरती पर आने का कोई अर्थ न होगा।

१४ जनवरी, १९३३

*

जब तुम प्रणाम के लिए आते हो तो मैंने कभी तुम्हारे अन्दर कोई बुरी चीज नहीं देखी। तुम्हारी अभीप्सा बहुत स्पष्ट होती है और मैं हमेशा उसका उत्तर देती हूं। और लोग क्या कहेंगे उसके बारे में चिंता न करो— मैं तुमसे पूरी तरह संतुष्ट हूं और मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१५ जनवरी, १९३७

*

मुझे ऐसा लगा कि आप मुझसे पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हैं।

ऐसी कोई बात नहीं है। हर एक की अपनी कठिनाइयां हैं और मैं उनमें से निकलने में सहायता करने के लिए ही यहां हूं।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद।

२५ फरवरी, १९४२

*

शायद आपको मेरे पत्र का उत्तर देने के लिए समय नहीं मिला या आपने उत्तर देना जरूरी नहीं समझा। आज आपकी दृष्टि में कुछ ऐसी चीज थी जिसकी मैं थाह नहीं ले पाया। वह फटकार-सी मालूम होती थी। अगर ऐसा है, तो मैं नहीं जानता कि उसका कारण क्या हो सकता है। प्रणाम सहित।

फटकार जैसी कोई चीज नहीं। मैंने 'क' के द्वारा वह उत्तर भेजा था जिसे मैं सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझती थी और मैं आशा करती थी कि तुम उसके लिए आभार मानोगे—वह दृष्टि इसलिए वैसी थी।

मैं यह और कह दूं कि सभी मानव सम्बन्धों में हमेशा प्राणिक आकर्षणों और आवेगों का, वहां पर छिपी चैत्य गति पर ऐसा मुलम्मा होता है कि तुम जितनी सावधानी रखो कम है।

आशीर्वाद।

११ जनवरी, १९४४

*

माताजी,

पिछले तीन दिनों से जब मैं प्रणाम के लिए आता हूं तो आपकी आंखों का भाव नहीं पढ़ पाता। मुझे लगता है कि आप मुझसे नाराज हैं। हो सकता है कि मैं गलती पर हूं, लेकिन अगर कोई बात है तो मैं चाहूंगा कि आप मुझे बतला दें। प्रणाम सहित।

मुझे नहीं पता कि तुम्हारे प्रति मेरे भाव में कोई परिवर्तन हुआ है, और परिवर्तन के लिए कोई कारण भी नहीं है। सिर्फ एक बात है, जब तुम आये तो मैं 'क' के बारे में सोच रही थी और मुझे यह ख्याल आ रहा था कि सारे मामले के बारे में तुम्हें कितनी सूचना दी गयी है। रही बात तुमसे नाराज होने की, तो इसका कहीं कोई नाम-गंध भी नहीं है और मैं निश्चित रूप से कह सकती हूं कि *मैं नाराज नहीं हूं*।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

५ सितम्बर, १९४५

*

मेरी प्यारी मां,

मुझे लगता है कि मैंने आपको नाराज किया है। इसका जो भी कारण हो उसके लिए मुझे बहुत खेद है। मुझे इसके लिए बहुत बुरा लग रहा है। आपके लिए अपने बढ़ते हुए प्रेम के बारे में मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं। प्रणाम सहित।

मेरे प्यारे बालक,

बुरा मत मानो और चिंता मत करो—*मैं बिलकुल नाराज नहीं हूं*। हो सकता है कि जरा हल्की या विनोद-भरी लगने वाली बातचीत से और लोग कुछ नाराज हुए हों, लेकिन उसके लिए मैं तुम्हें उत्तरदायी नहीं मानती। जो चीजें लोगों की साधारण समझ के परे हैं उनके बारे में लापरवाही से, मजाक उड़ाते हुए बोलना, आश्रम में एक आदत बन गयी है। इस प्रभाव का सफल प्रतिरोध करने के लिए बहुत बल और सहनशक्ति की जरूरत होगी। फिर भी मुझे आशा है कि यह बल और सहनशक्ति उन

सभी में बढ़ेगी जिनमें सद्‌भावना है। इस बीच मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद सबके साथ हैं।

विश्वास रखो कि मुझे तुम्हारे अन्दर बढ़ते हुए प्रेम और भक्ति का पूरा अहसास है और वे उचित रूप से जिस प्रत्युत्तर की आशा कर सकते हैं वह उन्हें पूरी तरह मिलता है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२२ सितम्बर, १९४७

*

यह फिर से बिलकुल निराधार धक्का है...। मुझे बिलकुल पता न था कि तुम 'क' से जो सितार मांग रहे हो वह *तुम्हारा* है; उसने मुझसे जो कहा, उससे स्पष्ट रूप से यह लगा कि जिस सितार की बात हो रही है वह *उसका अपना* है। मालूम होता है कि यह भूल थी। जब तुम्हें उसकी जरूरत हो तो उसे सितार लौटा देना चाहिये।

लेकिन खुद तुम्हारे लिए यह बता दूं कि जब तक तुम इस तरह के मिथ्या विचारों में रमे रहोगे कि मैं किसी एक या दूसरे का "पक्ष लेती हूं", तब तक यह निश्चित है कि तुम्हें धक्के लगते रहेंगे, जोरदार आघात पहुंचते रहेंगे।

यह बिलकुल गलत और निराधार है। अगर तुम भगवान् के नजदीक होने का अनुभव करना चाहते हो तो तुम्हें इस तरह के सोच-विचार से पूरी तरह पिण्ड छुड़ लेना चाहिये।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

५ नवम्बर, १९४७

*

तुम्हें हमेशा के लिए यह सीख लेना चाहिये कि लोग कुछ भी भूलें क्यों न करें, उनसे मैं परेशान या नाराज नहीं हो सकती। अगर दुर्भावना या विद्रोह है, तो काली आकर दण्ड दे सकती है लेकिन वह हमेशा प्रेम के साथ दण्ड देती है।

२३ मार्च, १९५४

काम का तरीका

लोग कहते हैं कि हम जो भी करते हैं आप हमेशा उसकी सराहना करती हैं, वह चाहे कुछ भी क्यों न हो।

कैसा अजीब विचार है! ऐसी बहुत-सी चीजें और बहुत-से काम हैं जिन्हें मैं बुरा समझती हूं और जिनकी मैं बिलकुल सराहना नहीं करती।

१२ मई, १९३४

*

मैंने आपके आगे तर्क-पर-तर्क प्रस्तुत करने में काफी भेजा खपाया। लेकिन आपने उत्तर में कोई तर्क नहीं किया। आप मजे से निश्चिंत हैं।

तुम्हारे पत्र के सभी तर्क बाह्य-भौतिक मन से आते हैं। तुम यह आशा नहीं कर सकते कि मैं उस स्तर तक उतर कर वहां से तुम्हारे साथ बहस करूंगी। मैं चीजों को एक अन्य स्तर से और अलग ही ढंग से देखती हूं।

१९ जुलाई, १९४२

*

यह बिलकुल गलत है कि मेरी चेतना में देर करने की इच्छा रहती है। सच तो यह है कि समय पर तैयार होने की इच्छा अन्य इच्छाओं से ऊंचा स्थान नहीं पाती : वह औरों के बीच अपने स्थान पर है, ऐकान्तिक और एकमात्र इच्छा के रूप में नहीं बल्कि समग्र के एक भाग के रूप में। उसका महत्त्व और उसकी महिमा का स्तर जो तुम सोचते और अनुभव करते हो उससे भिन्न हो सकता है। वस्तुतः, तुम्हारा सापेक्ष महत्त्व का विचार वही नहीं है जो मेरा है। इसके अतिरिक्त, तुम समस्या को लकीर की तरह (रैखिक) और ऐकांतिक रूप से देखते हो, मानों वह साथ की दूसरी समस्याओं से भिन्न हो। लेकिन बात ऐसी नहीं है; हर समस्या अपने-आपमें अकेली नहीं है, बल्कि सबके साथ सम्बन्धित है; और सच्चा समाधान

उनमें से किसी की उपेक्षा नहीं कर सकता।

अगर तुम इस बात को समझ सको, तो निश्चय ही तुम्हारी कठिनाई आसानी से दूर हो जायेगी।

१६ नवम्बर, १९५०

*

स्पष्ट है कि मानवीय रीत के अनुसार मेरा यह कहना गलत था कि मैं तुमसे हर महीने मिलूंगी, क्योंकि मैंने जो कहा था उसे भूले बिना भी, निश्चित नहीं था कि मैं इस तरह मिल सकूंगी।

वस्तुतः मैं हर क्षण, परम प्रभु के 'पथ-प्रदर्शन' के अनुसार, जीती हूं, और, परिणामस्वरूप, योजनाएं बनाने में असमर्थ हूं। मैं जानती हूं कि यह मनुष्य की मनोवृत्ति के लिए सुविधाजनक नहीं है जो समझती है कि वह हर चीज का पहले से ही निर्णय कर सकती है। लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से यह अनिवार्य है।

*

हर साधक को यह याद रखना चाहिये कि वह अकेला नहीं है। मैं यथासंभव हर एक को संतुष्ट करने की कोशिश करती हूं और जब कभी जरूरी हो तो समझदारी के साथ पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देती हूं।

*

यह कहने का एक ढंग है, वास्तव में जो चीज होती है उसको कहने का अभद्र तरीका है लेकिन वह चीज इससे कहीं ज्यादा सूक्ष्म होती है।

अगर मैं केवल एक ही व्यक्ति के साथ व्यस्त रहती तो शायद इस तरह की सूक्ष्म बातें याद रख सकती, लेकिन चूंकि मैं सचेतन रूप से एक हजार से अधिक लोगों के साथ व्यवहार करती हूं इसलिए सामान्यतः इतनी सूक्ष्म ब्योरे की बातों का ठीक-ठीक ख्याल नहीं रखा जाता—और यह जरूरी भी नहीं है—क्योंकि 'चेतना' हमेशा उस तरह काम करती रहती है जैसे किया जाना चाहिये।

*

लोगों को जो होना और करना चाहिये उसमें और वे जो हैं और जो करते हैं इसमें बहुत फर्क है। चेतना इसके बारे में पूरी तरह जानती है और सदा इसे ठीक करने और बदलने में लगी रहती है लेकिन वह भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर अनियमित तरीकों से काम नहीं करती। वह समष्टि पर समग्र और व्यापक ढंग से काम करती है। प्रगति धीमी मालूम होती है पर वह अधिक पूर्ण होती है और कोई चीज भुलायी नहीं जाती।

*

सच पूछो तो *मेरी कोई राय नहीं है*। सत्य-दृष्टि से अभी तक हर चीज बुरी तरह मिश्रित है, प्रकाश और अन्धकार का, सत्य और मिथ्यात्व का, ज्ञान और अज्ञान का कम या अधिक अनुकूल संयोजन है, और जब तक रायों के अनुसार निर्णय लिये जायेंगे और कार्य किये जायेंगे, तब तक हमेशा ऐसा ही रहेगा।

हम ऐसे कार्य का उदाहरण रखना चाहते हैं जो सत्य-दृष्टि के अनुसार किया जाये, लेकिन दुर्भाग्यवश हम अभी तक इस आदर्श को चरितार्थ करने से बहुत दूर हैं, और अगर सत्य-दृष्टि अपने-आपको अभिव्यक्त भी करे, तो भी वह कार्यान्वयन में तुरंत विकृत हो जाती है।

अतः, वर्तमान अवस्था में, यह कहना असम्भव है कि "यह सत्य है और वह मिथ्या, यह हमें लक्ष्य की ओर ले जाता है और वह उससे दूर।"

प्रगति के लिए *हर एक चीज का* उपयोग किया जा सकता है; *हर चीज* उपयोगी हो सकती है अगर हम उसका उपयोग करना जानें।

महत्त्वपूर्ण चीज यह है कि हम जिस आदर्श को चरितार्थ करना चाहते हैं उसे कभी आंख से ओझल न होने दें और इस लक्ष्य को नजर में रखते हुए सभी परिस्थितियों का उपयोग करें।

और अन्त में, चीजों के पक्ष या विपक्ष में मनमाना फैसला न करना हमेशा अच्छा होता है, और साक्षी की निष्पक्षता के साथ घटनाओं को खिलते देखना एवं 'भागवत प्रज्ञा' पर निर्भर रहना ज्यादा अच्छा रहता है जो सर्वोत्तम के लिए निर्णय करेगी और जो आवश्यक होगा वह करेगी।

२१ जुलाई, १९६१

*

मेरे देखने का तरीका कुछ भिन्न है। मेरी चेतना के लिए पृथ्वी पर समस्त जीवन, जिसमें मानव जीवन और समस्त मनोवृत्ति का समावेश है, स्पन्दनों का ढेर है, अधिकतर स्पन्दन मिथ्यात्व, अज्ञान और अव्यवस्था के हैं जिसमें उच्चतर क्षेत्रों से आने वाले 'सत्य' और 'सामंजस्य' के स्पन्दन अधिकाधिक काम कर रहे हैं और प्रतिरोध के बीच में से रास्ता बना रहे हैं। इस अन्तर्दृष्टि में अहं-भाव, वैयक्तिक आग्रह और पृथक्ता बिलकुल अवास्तविक और भ्रामक बन जाते हैं।

जब पहले से चली आ रही अस्तव्यस्तता में कोई *अतिरिक्त* घपला पैदा किया जाता है तो मैं उस ओर यथासंभव ज्यादा अच्छा सामंजस्य पुनः स्थापित करने के लिए कुछ विशेष स्पन्दन भेजती हूं। इस "प्रहार" का असर स्वयं व्यक्तियों के ऊपर उतना नहीं होता जितना उनका असामंजस्य के साथ चिपके रहने या उसका साथ देने के ऊपर होता है...। ऐसे मामलों में कभी एक पक्ष ठीक और एक गलत नहीं होता, बल्कि मिथ्यात्व और अस्तव्यस्तता के साथ लगे रहने के अनुपात में सभी दोषी होते हैं।

*

तुम मेरे कार्य करने का तरीका नहीं समझते। तुम भले ही कह लो: "आपके पास अतिमानसिक शक्ति है, आप उसका उपयोग क्यों नहीं करतीं और इस अव्यवस्था को खत्म क्यों नहीं कर देतीं?" किन्तु इस तरह कार्य नहीं किया जा सकता। संसार अतिमानसिक शक्ति के लिए तैयार नहीं है और अगर आधार को तैयार किये बिना ही उसका उपयोग किया जाये, तो चीजें बिलकुल चकनाचूर हो जायेंगी। मुझे पहले आधार तैयार करना है और फिर शक्ति को उतारना है।

तुम्हारी मानव-दृष्टि चीजों को एक सीधी लकीर में देखती है। तुम्हारे लिए या तो यह तरीका है या वह। मेरे लिए ऐसा नहीं है। मैं सारी वस्तु को चेतना के एक पिण्ड के रूप में देखती हूं जो अपने ध्येय या लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। मुझे हर छोटी गति के लिए भी यह देखना पड़ता है कि सम्पूर्ण पिण्ड पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, बाद में क्या अप्रत्यक्ष प्रभाव आयेंगे।

जब मैं कहती हूं कि कोई चीज इस तरह या उस तरह करनी चाहिये, तो तुम्हारा मानव मन उसे सिद्धान्त के रूप में ले लेता है और कठोरता

के साथ सब जगह लागू करने की कोशिश करता है। मेरे लिए बात ऐसी नहीं है। मेरे लिए कोई नियम, कोई अधिनियम या सिद्धान्त नहीं हैं। मेरे लिए हर एक अपवादिक व्यक्ति है जिसके साथ विशिष्ट तरीके से व्यवहार करना चाहिये। कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते।

मैं जानती हूं कि इस चेतना के पिण्ड की गति में अमुक बिन्दु को अपने लक्ष्य तक आसानी से पहुंचने के लिए अमुक दिशा में गति करनी चाहिये। इस बिन्दु को नजर में रखते हुए मैं घोषणा करती हूं कि यह करना चाहिये या नहीं करना चाहिये, लेकिन मैं देखती हूं कि कभी-कभी रास्ते में एक बहुत बड़ी बाधा आती है। अब, इसके साथ दो तरह से निबटा जा सकता है : या तो मैं उस बिन्दु को अपनी दिशा बदल लेने दूं और बाधा को तब तक के लिए अछूता छोड़ दूं जब तक उस पर अधिकाधिक प्रकाश न पड़े और वह बदल न जाये, या फिर मैं रुकावट को तोड़ दूं। जैसा कि मैंने कहा, पूरे पिण्ड पर हर छोटी-सी गति की अपनी प्रतिक्रियाएं और अपने अप्रत्यक्ष प्रभाव होते हैं, इसलिए इसे तोड़ने से भी प्रतिक्रियाओं की एक शृंखला बन जायेगी जो एक बहुत बड़े क्षेत्र पर असर कर सकती है। मैं व्यक्तियों के साथ पक्षपात नहीं करती, परंतु मुझे हर क्षण सम्बद्ध व्यक्ति या व्यक्तियों के बदलने से, समय और वहन करने वाली धारा के बदलने के कारण बदलती परिस्थितियों को देखना होता है। मुझे देखना होता है कि इन सब परिवर्तनों में से होकर चीज को कैसे किया जा सकता है ताकि वह पिण्ड की प्रगति में सहायक हो। मुझे देखना होता है कि क्या बाधा को तोड़ना और उससे आने वाले परिणामों को आने देना लाभप्रद होगा या यह ज्यादा अच्छा होगा कि उसे अभी के लिए छोड़ दिया जाये और मानव मूर्खता को सह लिया जाये। जो तुम्हें विरोध दीखता है वह सारी चीज को एक इकाई के रूप में देखने पर विरोध नहीं रह जाता। एक ही लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग हैं। इसलिए अगर मुझे लगे कि तोड़ना आवश्यकता से अधिक महंगा पड़ जायेगा तो मैं तुम्हें मनचाही राह लेने देती हूं। लेकिन यह चीज मुझे उस बाधा की निंदा करने से या यह कहने से नहीं रोकती कि उसे जाना चाहिये।

आखिर, देर या सबेर इस चेतना-पिण्ड की हर एक चीज को एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ना है। लेकिन चेतना को उस लक्ष्य की ओर ले जाने

के लिए मुझे मनुष्यों को अपने साथ चलाना होता है और उन्हीं के रूप में प्रकट होना और उन्हीं की अपनी भाषा में बोलना होता है। मुझे एक भौंडी अभिव्यंजना को अपनाना होता है। मुझे जिस तरह बोलना पड़ता है और नियम, अधिनियम बनाने पड़ते हैं उनकी मूर्खता को मैं देख सकती हूं, परंतु यह एक ऐसी सुविधा है जो मुझे मानवजाति को देनी पड़ती है; अन्यथा वह कुछ भी न समझ पायेगी। जब मैं उनकी अपनी भाषा में बोलती हूं, तब भी तो लोग गलत समझते हैं और घोटाला कर डालते हैं। अगर मैं प्रकाश की भाषा में बोलूं, तो सारी चीज उसके सिर के ऊपर से गुजर जायेगी और वे कुछ भी समझे बिना मुंह बाये खड़े रह जायेंगे।

'क' का मन बहुत अच्छी तरह विकसित है। मैं कह सकती हूं कि उसका मन प्रकाश की ओर बहुत खुला हुआ है। दो बार मैंने उसके साथ उस भाषा में बात करने की कोशिश की जिसे श्रीअरविन्द प्रकाश का मन कहते हैं, लेकिन वह भी उसे न समझ पाया। वह थोड़ी-बहुत पकड़ पाया, लेकिन सारा भाव नहीं पकड़ पाया।

दूसरों के साथ तो हाल और भी बुरा है; वे कुछ भी नहीं समझ पाते और भौचक्के रह जाते हैं। इन लोगों के लिए मुझे समझौता करना पड़ता है। मैं कहती हूं कि अमुक चीज मूर्खतापूर्ण है, परंतु मैं देखती हूं कि तुम उसे किये बिना नहीं रह सकते, तो मुझे उसे सह लेना पड़ता है। मैं चीजों के सापेक्ष मूल्य देखती हूं और उस रास्ते को अपनाती हूं जो प्रगति करने में सहायक हो सके। तुम्हारे हित में और समस्त चेतना-पिण्ड की प्रगति के हित में, मैं बहुत-सी चीजें कर लेने देती हूं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं उसकी ओर से अंधी हूं या उसकी मूर्खता को नहीं देख सकती। कभी-कभी यह जरूरी होता है कि तुम एक अनुभव प्राप्त करो, इसलिए कोई चीज कर लेने दी जाती है। लेकिन जब मैं निश्चयपूर्वक "नहीं" कहती हूं, तो उसका विरोध करना खतरनाक है। एक ही क्रिया के लिए कई कारण हो सकते हैं; लेकिन उन्हें तुम्हारे मन को समझाना संभव नहीं है।

विशेष रूप से इस मामले में मैंने कहा था "नहीं"। फिर 'ख' ने हस्तक्षेप किया। 'ख' बहुत अच्छा आदमी है और किन्हीं भागों में बहुत सच्चा है। मुझे मालूम है कि वह कमजोर है और उसमें हथियाने और अधिकार कर लेने की आदत है। मैं मना कर सकती थी। लेकिन इससे मैं उसे बहुत जोर

से झकझोर डालती। उसके लिए अपने-आपको संभालना मुश्किल हो जाता। जैसा कि मैंने कहा, मैं चीजों का सापेक्ष मूल्य देखती हूं, और मैंने देखा कि वह झकझोरने लायक नहीं है और मैंने स्वीकृति दे दी। लेकिन यह बात मुझे यह कहने से नहीं रोकती कि यह ठीक बात नहीं है।†

अफवाहें

आनन्दमयी मां, मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि कुछ लोग यह सोचते हैं कि आप उन्हीं साधकों को बुलाती हैं जो दूर से आपकी 'कृपा' को ग्रहण नहीं कर सकते; यह आपसे बार-बार मिलनेवालों की कमजोरी का चिह्न है।

लोग क्या मानते या कहते हैं उसके बारे में परेशान न होओ; ये प्रायः सदा ही अज्ञान-भरी मूर्खताएं होती हैं।

मुझे हमेशा लोगों के यह सोचने पर आश्चर्य होता है कि वे मेरे कामों के कारण जान सकते हैं! मैं हर मामले में व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार, भिन्न-भिन्न रूप से कार्य करती हूं।

*

मैं तुम्हें सलाह दूंगी कि तुम कभी साधकों की—विशेष रूप से पहुंचे हुए साधकों की—बातों पर कान न दो।

२९ दिसम्बर, १९३१

*

निश्चय ही यह बात बिलकुल सच नहीं है कि मैं साधकों और उनकी साधना की परवाह नहीं करती। दुनिया की अवस्थाओं का बुरा होना मेरे परवाह करने को क्यों रोकेगा! बल्कि यह तो गतिरोध में से बाहर आने के लिए एकमात्र उपाय के रूप में आध्यात्मिक उपलब्धि पर जोर देने का कारण होगा कि उसे शीघ्र संपन्न किया जाये। तुम लोगों से जो सुनते हो उस पर विश्वास न करो; गन्दी और विघ्नकारी चीजें हमेशा *कही* जाती

रही हैं जो बिलकुल असत्य हैं।

८ अक्तूबर, १९४०

*

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हारे सभी पत्रों का उत्तर दे दिया गया है, लेकिन तुम्हारे हृदय की नीरवता में; तुम्हें उनका उत्तर दूसरों के मुंह से नहीं, वहां पर सुनना सीखना चाहिये। तुम्हें हमेशा पूरी सहायता दी जाती है, लेकिन तुम्हें उन्हें बाहरी साधनों से नहीं, हृदय की नीरवता में ग्रहण करना सीखना चाहिये। भगवान् तुम्हारे साथ हृदय की नीरवता में ही बोलेंगे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे और तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक ले जायेंगे।

लेकिन उसके लिए तुम्हारे अन्दर 'भागवत कृपा' और 'प्रेम' पर पूरी श्रद्धा होनी चाहिये।

१८ जनवरी, १९६२

*

नन्हें बालक मेरे,

जब तुम्हारा पहला पत्र आया, तो मैंने उस पर फ्रेंच में केवल एक शब्द लिखा और उसे अपनी मेज पर रख छोड़ा—क्योंकि मैं दूसरे पत्र की आशा कर रही थी; मुझे पूरा विश्वास था कि मेरा मौन उत्तर तुम्हें मिल जायेगा।

तुम्हें दिलासा देने के लिए मैं तुरंत और *हमेशा के लिए* यह कह सकती हूं कि लोग एक-दूसरे के बारे में जो कुछ कहें उसकी ओर जरा भी ध्यान न दो—बोलने वाला कोई क्यों न हो—और अपनी ओर से मैं तुमसे कहती हूं कि जब कोई (वह *कोई भी* क्यों न हो) मेरे नाम से कुछ कहे तो उसे कभी गंभीरता से न लो, क्योंकि पूर्ण सद्भावना के बावजूद *वह बात हमेशा विकृत होती है*।

अब मैं तुमसे यह भी कहती हूं कि विद्यालय के इस मामले में चिंता न करो। मैं उसके बारे में नहीं लिखूंगी, लेकिन मेरा इरादा है कि एक दिन तुम्हें बुलाकर समझाऊं कि *मैं* सारी चीज को *किस तरह देखती हूं*। तब तुम देखना *तुम्हें इस बारे में कैसा लगता है*।

इस बीच मन को शान्त रहने दो ताकि 'प्रकाश' प्रवेश कर सके।

मेरे समस्त प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२७ अक्तूबर, १९६३

*

तुम यहां उड़ती अफवाहों पर कान न देना कब सीखोगे?

१५ जुलाई, १९६७

*

हां, ये सब झूठी और मूर्खता-भरी अफवाहें आश्रम में घूम-फिरकर मेरे पास आयी हैं। मैंने उन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया क्योंकि ऐसा लगता है कि यहां अधिकतर लोग केवल गप्पों और मिथ्यात्व के लिए ही रहते हैं, और मैंने काली या दुर्गा का रूप धरने से बचने के लिए, अपनी चेतना ऐसी चीजों की ओर से हमेशा के लिए बन्द कर ली है।

मैं आशा करती हूं कि जो लोग वफादार हैं और जिनमें जरा-सी भी बुद्धि है वे यह सब सुनने में अपना समय नष्ट नहीं करेंगे।

भोजन के मामले में तुम जो कुछ कहते हो वह मुझे मालूम था— लेकिन तुम इतना तो मानोगे कि अपने काम को ज्यादा अच्छा बनाने के लिए, उसे अधिक प्रकाशमान और अधिक व्यापक बनाने के लिए हमेशा गुंजाइश रहती है।

*

तुम्हें दूसरों की भूलों और दुर्बलताओं के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिये, केवल यही जरूरी है कि लोग जो कुछ कहते हैं उस पर *विश्वास न करो*, विशेष रूप से जब वे मेरा नाम लेकर कहें।

*

जब हम कटु होते हैं तो अपना भागवत संपर्क खो बैठते हैं और बहुत "कटु रूप में" मानव बन जाते हैं।

मेरे नाम से जो बातें तुम्हें कही जायें उनसे सावधान रहो—वे जिस

भाव से कही जाती हैं वह भाव खो जाता है।

*

इस बारे में बहुत सावधान रहो कि कोई प्रभाव मेरे ऊपर तुम्हारे विश्वास को कम न कर पाये। किसी चीज या किसी व्यक्ति को ऐसा न करने दो कि वह तुम्हें मुझसे अलग करे।

*

एक बहुत बड़ी गलतफहमी हुई है।

ऐसा लगता है कि तुम यह मानते हो कि मैं एक बात कहती हूं और मेरा मतलब कुछ और होता है। यह अनर्गल बात है।

जब मैं बोलती हूं, तो स्पष्ट बोलती हूं और *मैं जो कहती हूं मेरा मतलब हमेशा वही होता है*।

जब मैं कहती हूं : योग की पहली शर्त है शान्त और स्थिर रहना—तो मेरा यही मतलब होता है।

जब मैं कहती हूं कि बातचीत बेकार है और वह केवल गड़बड़ की ओर ले जाती है, शक्ति के अपव्यय और जो कुछ थोड़ा-बहुत प्रकाश तुम्हारे पास है उसके भी क्षय की ओर ले जाती है—तो इसका यही अर्थ होता है, और कुछ नहीं।

जब मैं कहती हूं कि मैंने किसी को अपनी ओर से बोलने और अपने मनमाने ढंग से मेरे शब्दों की व्याख्या करने का अधिकार नहीं दिया, तो मेरा यही मतलब होता है, और कुछ नहीं।

मैं आशा करती हूं कि यह स्पष्ट और निर्णायक है और यह भ्रम-विशेष अब खतम हो जायेगा।

*

मैं उन लोगों को जो अधिकतर मिथ्या अफवाहें फैलाते फिरते हैं कि मैंने ऐसा कहा है या नहीं कहा, पहले ही चेतावनी दे चुकी हूं कि यह विश्वासघाती काम है।

ऐसा लगता है कि यह विषैली आदत रुकने वाली नहीं है, इसलिए मैं

यह भी कहती हूं कि जो लोग निरन्तर यह करते रहेंगे वे गुह्य जगत् में विश्वासघातक समझे जायेंगे।

प्रत्यादेश

मेरे अप्रकाशित लेखों को मेरी स्पष्ट स्वीकृति के बिना किसी के पास भेजना *एकदम वर्जित* है। मुझसे कहा गया है कि तुम ऐसा करना चाहती हो इसलिए मैं तुरंत तुम्हें यह सूचना दे रही हूं कि यह नहीं होना चाहिये और तुम्हारे पास ऐसी जितनी भी टंकित प्रतियां हों उन्हें तुरंत मुझे लौटा दो।

१८ जून, १९६४

*

किसी चीज के "स्क्रुपलस्ली" करने का अर्थ है उसे पूरी सावधानी के साथ, यथासंभव ईमानदारी से, अच्छी तरह करना।

फिर कभी मेरे लिखे में अगर कोई ऐसे शब्द हों जिन्हें तुम न समझ सको, तो ज्यादा अच्छा यह होगा कि तुम अपनी कापी मेरे पास भेज दो और मुझे समझाने के लिए कहो। मैं हमेशा तुम्हें समझा दूंगी और इससे तुम, मैंने तुम्हें जो लिखा है उसके बारे में औरों से बात करने से बच जाओगे—क्योंकि यह अच्छा नहीं है।

*

यह खेद का विषय है कि तुमने अपने प्रश्नों के मेरे उत्तर दिखा दिये। वे केवल तुम्हारे लिए थे, और किसी के लिए नहीं। इससे अनुभूति को अंशतः हानि हुई है, क्योंकि प्राण और मन अपनी कामनाएं पूरी करने के लिए स्थिति का लाभ उठाना चाहते थे।

*

(साधकों और विद्यार्थियों के साथ माताजी के टेनिस खेलने के बारे में)

मुझसे कहा गया था कि हमारे लड़के (जवान और वयस्क) किसी-न-

किसी कारण से मेरे साथ खेलना चाहते हैं (ठीक शब्द थे "मुझे खेलने का अवसर देना चाहते हैं), लेकिन *सचमुच खेलने के लिए* और खेलना सीखने के लिए उन्हें आपस में खेलना चाहिये।

*

तुम्हें 'भागवत चेतना', 'प्रकाश', और 'शक्ति' से भरे वातावरण में इस तरह खेलने और कसरत करने का असाधारण अवसर मिला है जिसमें तुम्हारी हर एक गति, हम कह सकते हैं, चेतना, प्रकाश और शक्ति से ओत-प्रोत रहती है जो अपने-आपमें गहन योग है; लेकिन तुम्हारी अज्ञानमयी अचेतना, तुम्हारा अंधापन और संवेदनशीलता का अभाव ऐसा है कि तुम यह मानते हो कि तुम एक भली-सी बूढ़ी महिला को—जिसके लिए तुम जरा कृतज्ञता और एक प्रकार के स्नेह का अनुभव करते हो—खिला रहे हो या अच्छी तरह खेलने में मदद कर रहे हो!

५ जून, १९४९

*

मैंने इसका उत्तर नहीं दिया क्योंकि उनके मन बहुत अधिक बेचैन और अशांत हैं, वे शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते और मेरे किये-कराये काम को बिगाड़ देते हैं। लेकिन तुम्हें उनसे कुछ कहने की जरूरत नहीं—उन्हें केवल मेरे आशीर्वाद भेज दो।

१३ मई, १९५५

*

तुम्हें एक बात समझ लेनी चाहिये। किसी प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं समस्या के सभी, वर्तमान और भावी पहलुओं को देखती हूं, तो जब उत्तर दिया जाता है तो *वह अंतिम होता है*। उस प्रश्न पर फिर से वापिस आने का कोई लाभ नहीं।

१२ जून, १९५५

*

अपने साठ वर्ष के लंबे अनुभव के बाद क्या आपको लगता है कि हमसे और मानवजाति से आपकी आशाएं काफी हद तक पूरी हुई हैं?

चूंकि मैं कोई आशा नहीं करती इसलिए मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती।

*

'क' का कहना है : "यह माताजी पर निर्भर है।"

नहीं, यह पूरा मेरे ऊपर निर्भर नहीं है। अगर ऐसा होता, तो सब कुछ आसानी से चलता। लेकिन हमेशा व्यक्ति का चरित्र बीच में आता है।

२० अगस्त, १९६१

*

मैं मूर्खों को बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह कैसे दे सकती हूं?

*

ये रहे दो प्रश्न जिनका उत्तर देने की जरूरत नहीं :

तुमने भगवान् *के लिए* ऐसा क्या किया है कि इतनी सारी मांगें करो?

तुमने भगवान् *का* ऐसा क्या कर दिया है कि इतने सारे आघात झेलो।

*

तुमने प्रभु को क्या दिया है या उसके लिए क्या किया है, कि तुम यह मांग करते हो कि मैं तुम्हारे लिए कुछ करूं? मैं केवल प्रभु का काम करती हूं।

*

तुम्हारी भूल यह मानने में है कि मुझे धोखा दिया जाता है—यह असंभव है क्योंकि मेरे लिए उनके शब्दों की अपेक्षा उनके "इरादे" ज्यादा स्पष्ट होते हैं।

लेकिन अगर मैं उन सबके साथ सख्ती करूं जो मुझे धोखा देने की

कोशिश करते हैं, तो इस सख्ती से बचने वाले बहुत ही कम होंगे।

*

क्या तुमने अपने निर्णयों में कभी भूल नहीं की? हां, तुमसे भूलें हुई हैं, है न? और बहुत बार।

तो फिर, तुम किस अधिकार से यह सोचते हो कि जब मेरा निर्णय वही नहीं होता जो तुम्हारा निर्णय है, तो उसमें भूल मेरी होती है?

*

मैं जानती हूं कि, तुम्हारे लिए, मेरे साथ होना न तो आवश्यकता है, न आनन्द, यह केवल कर्तव्य है, और यह भी कि तुम औरों के साथ ज्यादा खुश रहते हो। इसलिए मैं तुम्हें तभी बुलाती हूं जब यह जरूरी हो—अपनी खुशी के अनुसार नहीं, क्योंकि एक जमाना हो गया जब मैंने अपनी खुशी को जेब में डाल लिया था और उसे वहीं छोड़ दिया।

*

मैं तुमसे इसीलिए नहीं मिली, क्योंकि मैं जानती थी कि यह बिलकुल बेकार है, क्योंकि जीवन और कर्म के बारे में हमारे दृष्टिकोण वस्तुतः बहुत भिन्न हैं।

*

तुम मेरे विरुद्ध क्या कर सकते हो? तुम अपनी शारीरिक चेतना में रहते हो और शरीर मर्त्य है। मैं अपनी आत्मा की चेतना में रहती हूं और मेरी आत्मा अमर है।

*

लो, प्रभो, हम यह रहे, जिन लोगों को तुमने सबसे अधिक प्रेम दिखाया वे ही तुम्हें अपनी सब कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं।

भाग ३

श्रीअरविन्द आश्रम

श्रीअरविन्द आश्रम

१९१० से १९२० तक श्रीअरविन्द अपने चार-पांच शिष्यों के साथ पॉण्डिचेरी में निवास करते थे।

१९१४ में माताजी[१] (पॉल रिशार के साथ) फ्रांस से आयीं और श्रीअरविन्द ने 'आर्य' का प्रकाशन शुरू किया जो १९२० की जनवरी तक चलता रहा।

अप्रैल १९२० में माताजी जापान से वापिस आयीं और धीरे-धीरे लोगों की संख्या बढ़ने लगी। १९२६ में आश्रम की स्थापना हुई।

*

यद्यपि इस तथ्य में एक मनोहरता और काव्य है कि हमारे आश्रम की स्थापना की कोई औपचारिक तिथि नहीं है, फिर भी क्या गुह्य दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आश्रम का जन्म माताजी के आने के साथ-साथ हुआ?

आश्रम मेरे जापान से लौटने के कुछ वर्ष बाद, १९२६ में, जन्मा था।

१७ अप्रैल, १९६७

*

२१ फरवरी माताजी[१] का जन्मदिन है।

२९ मार्च उनके पहली बार आने और श्रीअरविन्द के साथ मिलने की वर्षगांठ है।

४ अप्रैल आश्रम का नव वर्ष है। यह श्रीअरविन्द के पॉण्डिचेरी आने की तिथि है।

२४ अप्रैल १९२० माताजी के अन्तिम बार पॉण्डिचेरी लौट आने का दिन है।

१५ अगस्त श्रीअरविन्द का जन्मदिन है।

२४ नवम्बर, १९२६ में घटी हुई महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक घटना के स्मारक के रूप में 'सिद्धि' दिवस कहलाता है।

१९३८

---

[१] यहां माताजी अपने बारे में तृतीय पुरुष का उपयोग कर रही हैं।

The usual sadhanas have for aim the union with the Supreme Consciousness (Sat-chit-ananda) - Those who reach there are satisfied with their own liberation and leave the world to its unhappy plight - On the contrary Sri Aurobindo's sadhana starts where the others end - Once the union with the supreme is realised, one must bring down that realisation to the exterior world and change the conditions of life upon the earth until a total transformation is accom-plished - In accordance with this aim, the sadhaks of the integral yoga do not retire from the world to lead a life of contemplation and meditation - Each one must devote at least one third of his time to a useful work - All activities are represented

in the Ashram and each one chooses the work most congenial to his nature, but must do it in a spirit of service and unselfishness, keeping always in view the aim of integral transformation.

To make this purpose possible the Ashram is organised so that all its inmates find there reasonable needs satisfied and have not to worry about their subsistence.

आमतौर पर साधनाओं का लक्ष्य होता है सच्चिदानन्द के साथ ऐक्य। और जो लोग वहां पहुंच जाते हैं वे अपनी मुक्ति से सन्तुष्ट होकर संसार को उसकी दुःख-भरी अवस्था में छोड़ जाते हैं। इसके विपरीत, जहां औरों की साधना समाप्त होती है वहां से श्रीअरविन्द की साधना शुरू होती है। एक बार सच्चिदानन्द के साथ ऐक्य सिद्ध हो जाये तो तुम्हें उस सिद्धि को बाह्य जगत् में उतारना और धरती पर जीवन की अवस्थाओं को बदलना चाहिये जब तक कि पूर्ण रूपान्तर सम्पन्न न हो जाये। इस लक्ष्य के अनुसार, पूर्ण योग के साधक ध्यान-धारणा का जीवन बिताने के लिए इस जगत् से निवृत्त नहीं हो जाते। हर एक को कम-से-कम अपना एक तिहाई समय किसी उपयोगी कार्य में लगाना चाहिये। आश्रम में सभी तरह के काम होते हैं और हर एक ऐसा काम चुनता है जो उसकी प्रकृति के सबसे अधिक अनुकूल हो, लेकिन उस काम को सेवाभाव के साथ, निःस्वार्थता

से करना चाहिये और हमेशा सर्वांगीण रूपान्तर के लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिये।

इस उद्देश्य को संभव बनाने के लिए आश्रम की व्यवस्था इस तरह की गयी है कि सब आश्रमवासियों की उचित आवश्यकताएं पूरी हो सकें और उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए चिन्ता न करनी पड़े।

नियम बहुत ही कम हैं ताकि हर एक अपने विकास के लिए आवश्यक, पूरी स्वाधीनता पा सके लेकिन कुछ चीजों की सख्ती से मनाही है। वे हैं —(१) राजनीति, (२) धूम्रपान, (३) मद्यपान और (४) कामकेलि।

छोटे-बड़े, जवान और बूढ़े, सभी के अच्छे स्वास्थ्य, योगक्षेम और शरीर के सामान्य विकास के लिए पूरी सावधानी बरती जाती है।

२४ सितम्बर, १९५३

*

बाहरी रंग-रूप और नियम बदलते रहते हैं परन्तु हमारी श्रद्धा और हमारा लक्ष्य एक ही है।

३० अक्तूबर, १९५४

*

हमारा लक्ष्य न तो राजनीतिक है, न सामाजिक, वह आध्यात्मिक लक्ष्य है। हम जो चाहते हैं वह वैयक्तिक चेतना का रूपान्तर है, शासन या सरकार का परिवर्तन नहीं। उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए हम किसी मानव साधन पर विश्वास नहीं करते, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो। हमें केवल 'भागवत कृपा' का भरोसा है।

*

यहां हमारे लिए केवल एक ही चीज का मूल्य है। हम भगवान् के लिए अभीप्सा करते हैं, भगवान् के लिए जीते हैं, भगवान् के लिए कार्य करते हैं।

जुलाई, १९५६

*

युगों की प्रबल अभीप्सा हमें यहां 'भागवत कार्य' करने के लिए लायी है।

*

मधुर मां, हमें बतलाया गया है कि बच्चों के आश्रम में आने से पहले यहां की शर्तें कहीं अधिक कठोर थीं और अनुशासन बहुत कड़ा। परिस्थितियां क्यों और कैसे बदलीं?

बच्चों के आने से पहले, आश्रम में केवल उन्हीं लोगों को प्रवेश मिलता था जो साधना करना चाहते थे और केवल उन्हीं आदतों और क्रिया-कलाप को होने दिया जाता था जो साधना के अभ्यास में उपयोगी हों।

लेकिन चूंकि बच्चों से साधना करने की मांग करना नासमझी होगी, इसलिए जैसे ही आश्रम में बच्चों का प्रवेश हुआ, इस सख्ती को गायब हो जाना पड़ा।

जनवरी, १९६१

*

मानवजाति की वर्तमान उपलब्धियों में से कोई भी, चाहे वह कितनी भी महान् क्यों न हो, हमारे लिए अनुकरण करने योग्य आदर्श नहीं बन सकती। मानव आदर्शों के परीक्षण-क्षेत्र के रूप में विशाल जगत् पड़ा है।

हमारा उद्देश्य बिलकुल भिन्न है और अगर अभी हमारी सफलता के अवसर बहुत कम हों तो भी हमें विश्वास है कि हम भविष्य को तैयार करने के लिए काम कर रहे हैं।

मैं जानती हूं कि बाह्य दृष्टिकोण से हम जगत् की बहुत-सी वर्तमान उपलब्धियों से नीचे हैं, परन्तु हमारा उद्देश्य मानव मानदण्ड के अनुसार पूर्णता नहीं है। हम किसी और चीज के लिए प्रयास कर रहे हैं जो भविष्य की है।

आश्रम की स्थापना इसीलिए की गयी है और उसका उद्देश्य भी यही है कि वह नये जगत् का पालना बने।

ऊपर की प्रेरणा, ऊपर की पथ-प्रदर्शक शक्ति और ऊपर की सर्जक-शक्ति नयी उपलब्धि के अवतरण के लिए कार्यरत हैं।

केवल अपनी त्रुटियों, अपनी अपूर्णताओं और अपनी असफलताओं

के नाते आश्रम वर्तमान जगत् का है।

मानवजाति की वर्तमान उपलब्धियों में से किसी में वह शक्ति नहीं है जो आश्रम को उसकी कठिनाइयों से बाहर निकाल सके।

आश्रम के सभी सदस्यों का पूर्ण परिवर्तन और अवतरित होते हुए 'सत्य' के 'प्रकाश' की ओर सर्वांगीण उद्घाटन ही उसे अपने-आपको चरितार्थ करने में सहायता दे सकते हैं।

निस्संदेह, यह बहुत कठिन कार्य है, लेकिन हमें इसे पूरा करने की आज्ञा मिली है और हम धरती पर केवल इसी उद्देश्य से हैं।

हम परम प्रभु की 'इच्छा' और 'सहायता' में अडिग विश्वास के साथ अंत तक चलते चलेंगे।

द्वार खुला हुआ है और उन सबके लिए हमेशा खुला रहेगा जो इस उद्देश्य के लिए अपना जीवन देने का निश्चय करें।

१३ जून, १९६४

*

यहां कोई चीज ऐसी है जो बाहरी दिखावों से बहुत ज्यादा अच्छी है, हृदय और आत्मा में ऊष्मा भरे प्राणदायी सूर्य जैसी है।

ठीक पहचाना तुमने, और मैं तुम्हें बधाई देती हूं। जो केवल बाहरी दिखावों को देखते हैं वे उनमें सूक्ष्म परन्तु महत्त्वपूर्ण भेदों को नहीं पहचान पाते जो सच्ची और प्रकाशमयी चेतना की उपस्थिति से आते हैं।

११ जून, १९६७

*

यहां पर हमारा कोई धर्म नहीं है। हम धर्म के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन को रखते हैं जो एक ही साथ अधिक सच्चा, अधिक गहरा और अधिक ऊंचा है, यानी, भगवान् के अधिक निकट है। क्योंकि भगवान् हर चीज में हैं, परन्तु हम उनके बारे में सचेतन नहीं हैं। यही वह विशाल प्रगति है जो मनुष्य को करनी चाहिये।

१९ मार्च, १९७३

प्रवेश की शर्तें

बाहरी दिखावों से निर्णय न करो और लोग जो कहते हैं उस पर विश्वास न करो, क्योंकि ये दोनों चीजें भटकाने वाली हैं। लेकिन अगर तुम्हें जाना जरूरी मालूम होता है, तो निस्संदेह तुम जा सकते हो और बाहरी दृष्टिकोण से शायद यह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी होगा।

और फिर, यहां रहना आसान नहीं है। आश्रम में कोई बाहरी अनुशासन या दिखायी देने वाली परीक्षा नहीं है। लेकिन आन्तरिक परीक्षा निरन्तर और कठोर होती है। यहां रहने लायक होने के लिए तुम्हें अपनी अभीप्सा में बहुत सच्चा होना चाहिये ताकि तुम समस्त अहंकार को पार कर सको और मिथ्याभिमान को जीत सको।

पूर्ण समर्पण की बाहर से मांग नहीं की जाती लेकिन जो लोग यहां बने रहना चाहते हैं उनके लिए यह अनिवार्य है और बहुत-सी चीजें समर्पण की सच्चाई की परीक्षा करने के लिए आती हैं। फिर भी, जो उनके लिए अभीप्सा करते हैं उनके लिए 'कृपा' और सहायता हमेशा मौजूद रहती हैं और उन्हें श्रद्धा-विश्वास के साथ ग्रहण किया जाये तो उनकी शक्ति असीम होती है।

२० नवम्बर, १९४८

*

जीवन से और लोगों से घृणा और विरक्ति के कारण योग के लिए नहीं आना चाहिये।

कठिनाइयों से भाग जाने के लिए यहां नहीं आना चाहिये।

प्रेम की मधुरता और संरक्षण पाने के लिए यहां नहीं आना चाहिये, क्योंकि यदि व्यक्ति उचित मनोभाव अपनाये तो भगवान् के प्रेम और संरक्षण का आनन्द हर जगह मिल सकता है।

जब तुम अपने-आपको पूर्णतया भगवान् की सेवा में दे देना चाहो, जब अपने-आपको पूर्णतया भगवान् के कार्य के लिए समर्पित करना चाहो, अपने-आपको देने और सेवा करने के आनन्द के लिए देना चाहो, बदले में कुछ मांगे बिना—अपने-आपको देने और सेवा करने की संभावना को छोड़कर—तो तुम यहां आने के लिए तैयार हो और तुम द्वार को पूरी तरह खुला पाओगे।

मैं तुम्हें वही आशीर्वाद देती हूं जो मेरे सभी बच्चों को मिलते हैं जो चाहे संसार में कहीं भी क्यों न हों, और तुमसे कहती हूं : "अपने-आपको तैयार करो, मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।"

३० मार्च, १९६०

*

तुम कहते हो कि तुम आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हो, लेकिन उसके लिए तुम्हें समझ लेना चाहिये कि पहली चीज है समस्त निम्न गतिविधियों, समस्त आकर्षणों, समस्त आसक्तियों पर विजय पाना, क्योंकि ये सब आध्यात्मिक जीवन के *एकदम विपरीत* हैं।

आध्यात्मिक जीवन यह *मांग करता है* कि तुम ऐकांतिक भाव से भगवान् की ओर और *केवल* भगवान् की ही ओर मुड़े रहो। तुम जो कुछ करो वह *भगवान् के लिए* ही किया जाये; तुम्हारे समस्त कार्य, समस्त अभीप्साएं, सब की सब बिना अपवाद के, समस्त सत्ता के पूर्ण समर्पण के साथ भगवान् की ओर ही उन्मुख हों।

मैं जानती हूं कि यह एक दिन में नही किया जा सकता लेकिन ऐसा हो सके इसका *निर्णय अविचल रूप में* किया जाये। केवल इसी शर्त पर मैं तुम्हें आध्यात्मिक जीवन के लिए स्वीकार कर सकती हूं।

२९ जुलाई, १९६०

*

किन्हीं भौतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक आदर्श के प्रति निष्ठा और कार्य के लिए समर्पण सच्चे शिष्य को बनाते हैं।

२५ *अगस्त, १९६२*

*

आश्रम में प्रवेश पाने के लिए पहली अनिवार्य शर्त

प्रत्याशी ने अपना जीवन बिना किसी शर्त के भगवान् की सेवा के लिए

अर्पित करने का संकल्प कर लिया हो।

१२ जून, १९६५

*

परिभाषा के अनुसार आश्रमवासी वह है जिसने अपना जीवन भगवान् की सिद्धि और सेवा के लिए अर्पित करने का संकल्प कर लिया हो।

इसके लिए चार गुण अनिवार्य हैं, उनके बिना प्रगति अनिश्चित है, बीच-बीच में बाधाएं आती रहती हैं और पहले ही अवसर पर कष्टकर पतन होते हैं :

सचाई, वफादारी, विनम्रता और कृतज्ञता।

*

"आश्रम का सच्चा बालक" कहलाने के लिए कौन-से गुण जरूरी हैं?

सचाई, साहस, अनुशासन, सहिष्णुता, भागवत कार्य में सम्पूर्ण श्रद्धा और 'भागवत कृपा' में अटूट विश्वास। इन सबके साथ स्थिर, तीव्र और अध्यवसायपूर्ण अभीप्सा और असीम धैर्य होना चाहिये।

२८ दिसम्बर, १९६६

*

आश्रम उनके लिए है जो अपने जीवन को भगवान् के अर्पण करना चाहते हों।

जून, १९७१

*

आश्रम में शिष्य की तरह रहने की दो अनिवार्य शर्तें

१. यह निश्चय करना कि अंतरात्मा की आवश्यकता को और सब

आवश्यकताओं से पहले स्थान मिलेगा और अन्य आवश्यकताओं को, यानी, शरीर, प्राण और मन की आवश्यकताओं को उसी हद तक संतुष्ट किया जायेगा जिस हद तक वे अंतरात्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक न बनें।

२. इस बात का विश्वास होना कि मैं ऐसी स्थिति में हूं कि हर एक की अंतरात्मा की आवश्यकता को जान सकती हूं और इसलिए मुझे इस बारे में फैसला करने का अधिकार है और मेरे अन्दर क्षमता भी है।

*

अगर तुम्हें यह विश्वास नहीं है कि मैं चीजों और कार्यों के परिणाम को पहले से ज्यादा अच्छी तरह देख सकती हूं तो तुम यहां रहने का अधिकांश लाभ खो बैठते हो।

उचित आचार-व्यवहार

मैं जानती हूं कि लोग बात का बतंगड़ बनाने वाले और नासमझ हैं। लेकिन जब तक उनकी चेतना न बदले, हम उनसे और क्या आशा कर सकते हैं?

*

लोग यहां अपनी चेतना को बदलने के लिए हैं। जब तक वे सब-के-सब अपने *लक्ष्य में सच्चे* नहीं बन जाते, तब तक कोई *सच्ची* चीज नहीं की जा सकती।

*

यह स्पष्ट है कि जो लोग यहां रहना चाहते हैं उन्हें बदलना होगा, इतना रहन-सहन के ढंग में नहीं जितना होने के (जीवन के) ढंग में।

हम अधिक गहरी, अधिक पूर्ण, अधिक सच्ची चेतना के लिए प्रयास कर रहे हैं; क्योंकि हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है इस चेतना को अभिव्यक्त करना।

*

हमारे साधक होने का लाभ ही क्या यदि, जैसे ही हम कुछ क्रिया करें, अज्ञानी साधारण मनुष्य की तरह करें?

*

हमसे आशा की जाती है कि हम संसार को ज्यादा अच्छे जीवन का नमूना दिखायेंगे, निश्चय ही दुर्व्यवहार का *नहीं*।

*

जिस क्षण आदमी आश्रम के जीवन में प्रवेश करता है और योग को अपनाता है, वह किसी मत, जात-पांत या जाति का होना बंद कर देता है; वह श्रीअरविन्द के शिष्यों में से एक होता है, और कुछ नहीं। वह पहले

जो था उसका मजाक उड़ाना एकदम असंगत और कुरुचिपूर्ण है, यह केवल उसमें और बोलनेवाले में पुरानी गलत मानसिक वृत्ति बनाये रखने में सहायक होता है।

जनवरी, १९२९

*

जब नर्तक 'क' आपसे मिलने के लिए यहां आया था तो बहुत-से साधक उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये। वे आग्रह कर रहे थे कि वह नाच दिखलाये। परन्तु उसने कहा, "मैं नाच की वेशभूषा के बिना आया हूं।" उसे लोगों की नाच के लिए यह इच्छा पसंद नहीं आयी। उसने चुपके से मुझसे कहा : "अगर मैं अगली बार आया तो खास ख्याल रखूंगा कि वेशभूषा न लाऊं, क्योंकि मैं यहां अपने-आपको दिखाने के लिए नहीं, योग के लिए आऊंगा!"

वह बिलकुल ठीक कहता है। आश्रम में बहुत सारे लोग यह भूल जाते हैं कि वे यहां *योग के लिए* हैं।

७ जनवरी, १९३८

*

आश्रम योग के लिए है, संगीत, मनोरंजन या अन्य सामाजिक कार्यों के लिए नहीं।

जो आश्रम में रहते हैं उनसे निवेदन है कि चुपचाप, शोर मचाये बिना रहें और अगर वे स्वयं ध्यान करने योग्य नहीं हैं, तो कम-से-कम, औरों को तो ध्यान करने दें।

*

मुझे नहीं मालूम कि यह अफवाह कौन फैला रहा है कि मुझे संगीत पसंद नहीं है। यह बिलकुल सच नहीं है—मुझे संगीत बहुत पसंद है, लेकिन उसे थोड़े-से लोगों के बीच सुनना चाहिये, यानी, ज्यादा-से-ज्यादा पांच-छह लोगों के लिए बजाया जाये। अगर भीड़ हो तो वह, अधिकतर, सामाजिक

सभा हो जाती है, और उसमें जो वातावरण बनता है वह अच्छा नहीं होता।

*

यह तथ्य है कि आश्रम उनके लिए नहीं है जो अपनी प्राणिक और आवेगमयी कामनाओं को संतुष्ट करना चाहते हैं, यह उनके लिए है जो भगवान् के प्रति अपने समर्पण को पूर्ण करना चाहते हैं; इसके अतिरिक्त मुझे यह चेतावनी भी देनी चाहिये कि यहां तुम्हें वही करना चाहिये जो खुले तौर पर कर सको, क्योंकि यहां कुछ भी गुप्त नहीं रह सकता।

२५ अप्रैल, १९५८

*

आश्रम में तुम्हें केवल वही करना चाहिये जो तुम खुले रूप में कर सको, क्योंकि यहां कोई चीज छिपी नहीं रहती। रहा मेरे संरक्षण का सवाल, वह समान रूप से सबके लिए है, ऐसा नहीं है कि किसी को मिले और किसी को न मिले।

*

सभी मामलों के लिए एक ही उत्तर देना असंभव है। वह हर व्यक्ति और हर अवसर के अनुसार अलग होगा। लेकिन, बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि जो भी किसी समाज में रहता है उसे, जहां तक हो सके, उस समाज के नियमों का पालन करना चाहिये। और फिर, तुम्हें सामुदायिक नियम के विरुद्ध जाने का अधिकार तभी है जब तुम्हारे सभी कार्य शुद्ध रूप से भगवान् की प्रेरणा से होते हों। अगर वे जो कुछ करते हैं, जो कुछ कहते हैं वह उस तरह किया और कहा जाये जैसा वे भगवान् के सामने करेंगे और कहेंगे, तो, और केवल तभी, उन्हें यह कहने का अधिकार है : "मैं अपने ही नियम का अनुसरण करता हूं, औरों के नियम का नहीं।"

२८ जनवरी, १९६०

*

आश्रम में "व्यक्तिगत भावनाओं" के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठो और सिद्धि के द्वार खुल जायेंगे।

३ फरवरी, १९६५

*

समय आ गया है कि आश्रम में शांति और सामंजस्य का राज हो।

*

(दो आश्रमवासियों में लड़ाई के बारे में)

यह देखने में बहुत कुछ ऐसा लगता है कि लोग कन्दराओं में रहने वाले आदिम मानव के युग में वापिस जा रहे हैं।

हम सभ्य समाज के कृत्रिम जीवन में नहीं रहना चाहते, लेकिन मार-पीट के स्तर तक नीचे गिरने से अच्छा होगा ज्यादा ऊंची सभ्यता के सोपान पर चढ़ना।

*

मैंने "अपराधी" को यह कहने के लिए बुलाया है कि इस प्रकार की क्रियावली का आश्रम में कोई स्थान नहीं है, यद्यपि दुर्भाग्यवश यहां ऐसा आचरण बहुत हो रहा है; लेकिन मैं उससे मिलने से पहले तुम्हें यह पत्र इसलिए भेज रही हूं ताकि तुम यह जानो कि मैं जो लिख रही हूं उसके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उसके आक्रमण को कभी न्यायोचित ठहराये बिना, क्योंकि आक्रमण को कभी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, तुम्हारे पत्र के दूसरे भाग ने मुझे दिखलाया कि तुम्हारी मनोदशा इस चीज की मांग करती है। मैंने असंतुष्ट और दबी हुई कामनाओं से उठती हुई घृणा, ईर्ष्या, कटु आलोचना और घिसी-पिटी नैतिकता का ऐसा प्रदर्शन बहुत ही कम देखा है।

यह सब बहुत अच्छा नहीं है और तुम्हारे ऊपर मार पड़ने की वजह से तुम्हारे लिए जो सहानुभूति हो सकती थी उसे दूर कर देती है।

मैं तुम्हें यह याद दिलाने के लिए धन्यवाद देती हूं कि मेरे पद के कारण मेरे कर्तव्य और उत्तरदायित्व हैं, लेकिन न्याय की जगह 'कृपा' को

बुलाना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि अगर न्याय क्रियाशील हो उठेगा तो ऐसे बहुत कम होंगे जो उसके आगे खड़े रह सकेंगे।

*

आश्रम में कामुक सम्बन्ध वर्जित हैं।

तो, ईमानदारी आश्रम और कामुक सम्बन्धों के बीच चुनाव की मांग करती है। यह अन्त:करण का मामला है।

१२ जून, १९७१

*

आश्रम किसी के साथ प्रेम करने का स्थान नहीं है। अगर तुम इस मूर्खता में जा गिरना चाहते हो, तो तुम यहां नहीं कहीं और कर सकते हो।

राजनीति नहीं

हम यहां राजनीति करने के लिए नहीं, भगवान् की सेवा के लिए हैं।

*

श्रीअरविन्द का ख्याल है कि हमारे लिए यह संभव नहीं है कि इस तरह के राजनीतिक मामले में तार द्वारा हस्तक्षेप करें। अधिक-से-अधिक तुम 'क' को इन दु:खद और कठिन परिस्थितियों में सबसे अच्छा मार्ग क्या है इसके बारे में अपनी निजी राय लिख सकते हो।

प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

२४ फरवरी, १९३९

*

मुझे 'क' का पत्र मिल गया है। तुम उसे लिख सकते हो: "आश्रम के साथ सम्बन्ध रखने वाले किसी व्यक्ति के लिए किसी प्रकार की राजनीति में भाग लेने का कोई सवाल ही नहीं उठता।" उसे 'ख' के पास नहीं जाना चाहिये (यह हर हालत में बेकार होगा)। अगर वह जाये और 'ख' मेरे सामने उसका जिक्र करे, तो हम उसके इस कार्य से अपने हाथ धो लेने और यह कहने के लिए बाधित होंगे कि इसे हमारी स्वीकृति प्राप्त नहीं है।

३ जून, १९३९

*

श्रीअरविन्द को और मुझे इस बात पर आपत्ति है कि यहां का कोई व्यक्ति 'क' के साथ पत्र-व्यवहार करे, विशेष रूप से उसका भेजा हुआ पैसा ले, क्योंकि यद्यपि वह यहां कुछ महीनों के लिए था फिर भी उसने अपने-आप जो थोड़ा-बहुत बतलाया था उसके सिवा हम उसके बारे में कुछ नहीं जानते।

उसके मुंह से निकली कुछ बातों से ऐसा लगता है कि वह उग्र रूप से नाज़ियों के पक्ष में है और इस बात को छिपाता भी नहीं है। इन दिनों

उसके साथ कोई भी सम्बन्ध आश्रम के लिए गंभीर कठिनाइयां ला सकता है।

२५ जून, १९४०

*

आज सवेरे-ही-सवेरे तुम्हारा मन मेरे पास आया था और उसने कुछ प्रश्न किये थे जिनके मैंने उत्तर दे दिये थे।

मैंने प्रश्नोत्तर लिख लिये हैं ताकि तुम्हारी बाहरी चेतना को उनसे लाभ हो सके।

"आप अंग्रेज सरकार से नाराज क्यों नहीं हैं जब कि वह आश्रम के लिए इतने हानिकर ढंग से कार्य करती है?"

नाराज क्यों हों? यह स्वाभाविक है कि वह ऐसा करे क्योंकि यह उनके हित में है और उनके पास शक्ति है।

"लेकिन यह उचित और भद्रतापूर्ण नहीं है!"

तुमने यह कब देखा कि कोई सरकार न्याय-संगत और दयालु रही हो? अपने बाहरी व्यवहार में वे सब एक-सी होती हैं।

"तब फिर आप एक के विरुद्ध दूसरे को क्यों समर्थन देती हैं?"

यह बिलकुल अलग बात है और सतह के पीछे काम करने वाली शक्तियों की लीला पर निर्भर है। कुछ शक्तियां भगवान् के लिए काम कर रही हैं, कुछ अपने लक्ष्य और प्रयोजन की दृष्टि से एकदम भगवद्-विरोधी हैं।

जो देश या सरकारें बिना जाने भागवत शक्तियों के यंत्र हैं, अगर वे पूरी तरह अपने कार्यों के रूप और पद्धतियों में और अनजाने मिलने वाली प्रेरणाओं में पूरी तरह शुद्ध और दिव्य होते, तो वे अपराजेय होते क्योंकि स्वयं दिव्य शक्तियां अपराजेय हैं। बाहरी अभिव्यक्ति में मिश्रण ही असुर को उन्हें हराने का अधिकार देता है।

आसुरिक शक्तियों का सफल यन्त्र होना आसान है, क्योंकि वे तुम्हारी निम्न प्रकृति की सभी हरकतों को लेकर उनका उपयोग करती हैं, अतः तुम्हें कोई आध्यात्मिक प्रयास नहीं करना पड़ता।

इसके विपरीत, अगर तुम्हें भागवत शक्ति का समुचित यन्त्र बनना हो

तो तुम्हें अपने-आपको बिलकुल शुद्ध बनाना होगा क्योंकि 'दिव्य शक्ति' सब तरह से दिव्य बने हुए यन्त्र में ही अपनी पूरी शक्ति और प्रभाव पा सकती है।

४ जुलाई, १९४०

*

आज संसार की स्थिति नाजुक है। भारत का भाग्य भी अधर में लटक रहा है। एक समय था जब भारत पूरी तरह सुरक्षित था, उसके आसुरी आक्रमण का शिकार बनने का किसी तरह का कोई भय न था। लेकिन चीजें बदल गयी हैं। भारत में लोगों और शक्तियों ने इस तरह कार्य किया है कि उसने अपने ऊपर आसुरिक प्रभावों को बुला लिया है, इन्होंने विश्वासघाती रूप से काम किया है और यहां जो सुरक्षा थी उसकी जड़ें खोद दी हैं।

अगर भारत संकट में हो, तो यह आशा नहीं की जा सकती कि पॉण्डिचेरी संकटक्षेत्र से बाहर रहेगी। वह भी बाकी देश के भाग्य में अपना हिस्सा बंटायेगी। मैं जो संरक्षण दे सकती हूं वह बिना शर्त के नहीं है। यह आशा करना व्यर्थ है कि हर चीज के बावजूद, सभी को संरक्षण मिलेगा। यदि शर्तें पूरी की जायें तो मेरा संरक्षण मिलेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि नाज़ी लोगों के लिए (या उनके समर्थकों में से किसी के लिए) सहानुभूति या उनका समर्थन अपने-आप ही संरक्षण के घेरे को काट देता है। इस स्पष्ट और बाहरी तथ्य के अलावा, अधिक आधारभूत मनोवैज्ञानिक शर्त है जो पूर्ति की मांग करती है। भगवान् उन्हीं को संरक्षण दे सकते हैं जो पूरे दिल से भगवान् के प्रति निष्ठावान् हैं, जो सचमुच साधना-भाव से रहते हैं और अपनी चेतना और तल्लीनता को भगवान् में और भगवान् की सेवा में लगाये रहते हैं। उदाहरण के लिए, कामना, अपनी पसंद और सुविधाओं पर आग्रह, ढोंग और कपट और मिथ्यात्व की सभी गतिविधियां भागवत संरक्षण के मार्ग में खड़ी हुई बहुत बड़ी रुकावटें हैं। अगर तुम भगवान् पर अपनी इच्छा लादना चाहो तो यह ऐसा है मानों तुम एक बम को अपने ऊपर गिरने के लिए बुला रहे हो। मैं यह नहीं कहती कि चीजें इस तरह होने ही वाली हैं; लेकिन अगर लोग सचेतन और बहुत जागरूक

नहीं हो जाते और सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासु के भाव से काम नहीं करते तो ऐसा होना बहुत संभव है। अगर यहां का मनोवैज्ञानिक वातावरण भी बाकी संसार के जैसा ही बना रहे, तो संकट, कष्ट और विनाश लाने वाली अंधकारमयी 'शक्तियों' को यहां घुसने से रोकने के लिए संरक्षण की कोई निश्चित दीवार नहीं रह जाती।

२५ मई, १९४१

*

तुमने जो अत्यंत मूर्खतापूर्ण अफवाह फैलायी है उसे मैंने अभी-अभी पढ़ा है। मुझे तुमसे यह कहना जरूरी लगता है कि ऐसी बात फिर से न करना। यह तो भली-भांति जानी हुई बात है कि सारी कहानी बेतुकी और झूठी है जिसमें सचाई का एक कण भी नहीं है। लेकिन लोग इतने मूर्ख होते हैं कि वे हर चीज पर विश्वास कर सकते हैं, और जो भी हो किसी भी बात को दुहरा सकते हैं और अगर कभी यह पता चल जाये कि ऐसी अफवाहें आश्रम में शुरू होती हैं तो इससे हम बहुत अधिक अप्रिय बल्कि खतरनाक मुश्किल में पड़ सकते हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि तुम मेरी बात समझ जाओगे। मैं तुम्हें अपना प्रेम और आशीर्वाद भेजती हूं।

११ फरवरी, १९४६

*

मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूं कि ऐसी कोई राजनीति आश्रम से शुरू नहीं हो सकती; यह मुसीबत के पहाड़ ला सकती है।

इस झगड़े के मामले में मैं तुम्हें कहती हूं कि तुम श्रीअरविन्द के और मेरे प्रति अपनी श्रद्धा में सच्चे रहो और उसका भाग्य हमारे दायित्व पर छोड़ दो। अगर उसकी सत्ता का सत्य यह है कि उसे छुटकारा मिल जाना चाहिये तो वह निश्चय ही छूट जायेगा।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१४ फरवरी, १९४६

*

यह बार-बार दोहराया जा चुका है कि प्रांतीयता की सारी भावना आश्रम में बिलकुल विजातीय है और उसे यहां नहीं सहा जा सकता।

मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि कल जो बैठक हुई थी उसने अत्यंत संकीर्ण, मूर्खतापूर्ण प्रांतीय वृत्ति का प्रदर्शन किया जो मेरे लिए ऐसी बैठकों को बन्द करने की अप्रिय आवश्यकता पैदा कर देता है।

१ अप्रैल, १९४६

*

घोषणा-पत्र

श्रीअरविन्द ने राजनीति से किनारा कर लिया था; और उनके आश्रम में एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि सदस्यों को सब प्रकार की राजनीति से अलग रहना चाहिये—इसका कारण यह नहीं है कि श्रीअरविन्द दुनिया की घटनाओं की परवाह नहीं करते थे, बल्कि यह है कि प्रचलित राजनीति बहुत तुच्छ और भद्दी चीज है, उस पर पूरी तरह मिथ्यात्व, छल-कपट, अन्याय, शक्ति का दुरुपयोग और हिंसा तथा उग्रता छाये हुए हैं; क्योंकि राजनीति में सफल होने के लिए आदमी को अपने अन्दर ढोंग, छल-कपट और बेईमानी-भरी महत्त्वाकांक्षा पैदा करनी होती है।

हमारे योग की अनिवार्य नींव है सचाई, ईमानदारी, निःस्वार्थता, जो कार्य करना है उसके प्रति अनासक्त समर्पण, चरित्र की उदारता और स्पष्टवादिता। जो लोग इन प्रारंभिक गुणों को अपने आचरण में नहीं लाते वे श्रीअरविन्द के शिष्य नहीं हैं और उनके लिए आश्रम में कोई स्थान नहीं है। इसीलिए मैं विकृत और दुष्टभाव वाले मनों द्वारा आश्रम पर लगाये गये मूर्खतापूर्ण और निराधार आरोपों का उत्तर देने से इन्कार करती हूं।

श्रीअरविन्द हमेशा अपनी मातृभूमि से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र और संसार में अपने महान् लक्ष्य के योग्य बने। वे उसे अंधे, स्वार्थ और अज्ञानमय पक्षपात के दूषित और गंवारू स्तर तक डूबने देने से इन्कार करते थे। इसलिए, उनकी इच्छा के अनुसार, हम उन लोगों की परवाह किये बिना, जो अज्ञान, मूर्खता, ईर्ष्या

या दुर्भावना के कारण उसे गंदा करना या कीचड़ में घसीटना चाहते हैं, सत्य, प्रगति और मानव रूपान्तर की ध्वजा को ऊंचा उठाते हैं। हम उसे बहुत ऊंचा उठाते हैं ताकि जिनमें भी अंतरात्मा है वे उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।

२५ अप्रैल, १९५४

*

यह महत्त्वपूर्ण और अत्यावश्यक है कि तुम्हारी 'यूनिटी' पार्टी के लोग चेतना के ऊंचे स्तर तक उठें और लोगों पर तुच्छ राजनीतिक ढंग का कीचड़ उछालना बंद कर दें। उन्हें किसी राजनीतिक दल के *विरुद्ध* नहीं, 'सत्य' और 'भागवत उपलब्धि' *के लिए* लड़ना चाहिये। भागवत दृष्टिकोण से सभी सच्चे विश्वासों के पीछे सत्य है। जीवन और कर्म के क्षेत्र में मानसिक और व्यावहारिक रूप में जूझने से मिथ्यात्व प्रकट होता है और हर चीज को बिगाड़ देता है। समय आ गया है जब उन सबको जो आश्रम के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्बन्ध रखते हैं और अपने कार्यों को श्रीअरविन्द की या मेरी शिक्षा पर आधारित रखना चाहते हैं, राजनीतिक बखेड़ों की इन तुच्छ हरकतों से बाज आना चाहिये और आत्मा के उच्चतर स्तरों पर रहना चाहिये।

मैं आशा करती हूं कि तुम जरूरी कदम उठाओगे।

३१ जनवरी, १९५५

*

यह जानी हुई बात है कि आश्रम राजनीति में भाग नहीं लेता और उसे चुनावों में कोई दिलचस्पी नहीं है।

२५ जून, १९५५

*

राजनीति मिथ्यात्व पर आधारित है, हमारा उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

नैतिकता वह ढाल है जिसका मनुष्य अपने-आपको 'सत्य' से बचाने के लिए उपयोग करते हैं।

केवल भगवान् की इच्छा पर ही कोई ननुनच नहीं किया जा सकता। और मनुष्य अपनी सभी क्रियाओं में, उसे विकृत करता और मिथ्या बनाता है।

*

एक घोषणा

कुछ लोग चीजों को उथली दृष्टि से देखते हुए, पूछ सकते हैं कि यह कैसी बात है कि आश्रम इस नगर के बीच इतने वर्षों से है, फिर भी यहां रहने वाले लोग इसे पसन्द नहीं करते।

इसका पहला और तत्काल दिया जाने वाला उत्तर यह है कि इस नगर में जो लोग संस्कृति, बुद्धि, सद्भावना और शिक्षा में ऊंचे स्तर के हैं उन्होंने न केवल आश्रम का स्वागत किया है बल्कि आश्रम के लिए सहानुभूति, सराहना और सद्भावना भी प्रकट की हैं। पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द आश्रम के बहुत-से सच्चे और निष्ठावान् अनुयायी और मित्र हैं।

यह कहने के बाद, हमारी स्थिति स्पष्ट है।

हम किसी मत, किसी धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम कैसी भी सरकार के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी सामाजिक वर्ग के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी राष्ट्र या सभ्यता के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम विभाजन, निश्चेतना, अज्ञान, तमस् और मिथ्यात्व के विरुद्ध लड़ रहे हैं।

हम धरती पर एकता, ज्ञान, चेतना, 'सत्य' को प्रतिष्ठित करने की कोशिश कर रहे हैं और जो भी 'प्रकाश', 'शान्ति', 'सत्य' और 'प्रेम' की इस नयी सृष्टि के आगमन का विरोध करता है हम उसके विरुद्ध लड़ते हैं।

१६ फरवरी, १९६५

*

आश्रम के ऊपर आक्रमण के समय (१९६५ में) मैंने आश्वस्त और

शांत रहने की कोशिश की और आपकी सहायता को पुकारा। मैं जानना चाहता हूं कि कहीं यह चीज मेरी भीरुता को छिपाने के लिए बहाना तो न थी?

इस प्रकार की अनुभूति पर कभी संदेह न करो। यह ठीक वह स्थिति है जिसमें हर एक को होना चाहिये था, यह वह स्थिति है जिसे मैं आश्रम में उतार रही थी, और अगर सब इस स्थिति में भाग लेते तो कुछ भी न हो पाता; उग्र से उग्र हिंसात्मक आक्रमण व्यर्थ जाते।

१९६५

*

माताजी उन सबके साथ हैं जो दल और राजनीति से अछूते हैं और भागवत जीवन के प्रति अपनी अभीप्सा में सच्चे हैं।

२६ मार्च, १९७१

सुख-सुविधाएं

हर एक अपने सुखी होने की क्षमता को अपने अन्दर लिये रहता है, लेकिन मुझे विश्वास है कि जो यहां सुखी नहीं रह सकते वे कहीं भी सुखी नहीं रह सकते।

१४ अप्रैल, १९३६

*

यहां रहते हुए लोगों को खुश रहना चाहिये, अन्यथा वे यहां के असाधारण अवसर का पूरा लाभ नहीं उठा सकते।

*

मैं हमेशा उन लोगों से मिलने और उन्हें सहायता देने में खुश होती हूं जो सामंजस्य और समाधान चाहते हैं और अपनी भूलें ठीक करने एवं प्रगति करने के लिए तैयार हैं। लेकिन मैं उन लोगों की कोई मदद नहीं कर सकती जो सारा दोष औरों पर थोप देते हैं, क्योंकि वे सत्य को देखने और उसके अनुसार कार्य करने में अकुशल होते हैं।

लेकिन यह कहने की जरूरत नहीं कि जो यहां हैं और यहां रहने के लिए कुछ कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार हैं, उनका हमेशा स्वागत होगा।

*

विश्वास के साथ तुम्हारा जो स्वागत किया गया था उसका उत्तर तुमने उद्धत और नासमझीभरी वृत्ति से दिया है। तुमने हर चीज को अज्ञानभरी धृष्ट नैतिकता की दृष्टि से जांचा है जिसने तुम्हें उस सहानुभूति से दूर कर दिया है जो तुम्हें सहज ही दी गयी थी और उन सबको दी जाती है जो यहां आध्यात्मिक जीवन की खोज में आते हैं। लेकिन यहां रहने का लाभ उठाने के लिए थोड़ी-सी मानसिक नम्रता और अन्तरात्मा की उदारता अनिवार्य है।

*

जो लोग यहां दुःखी हैं और यह अनुभव करते हैं कि उन्हें वह आराम नहीं मिलता जिसकी उन्हें जरूरत है, उन्हें यहां नहीं रहना चाहिये। हम जो कर रहे हैं उससे ज्यादा करने की स्थिति में हम नहीं हैं, और आखिर हमारा उद्देश्य लोगों को आरामदेह जीवन देना नहीं है, बल्कि उन्हें 'भागवत जीवन' के लिए तैयार करना है जो बिलकुल और ही बात है।

*

निश्चय ही लोगों के यहां आने और ठहरने का कारण सुविधाएं और ऐश-आराम पाना नहीं है—अगर आदमी काफी भाग्यशाली हो तो ये चीजें कहीं भी मिल सकती हैं। लेकिन जो चीज यहां मिल सकती है, जो और किसी जगह *नहीं* मिल सकती, वह है 'भागवत प्रेम', 'कृपा' और 'देखभाल'। जब *यह* बात भुला दी जाती है या इसकी उपेक्षा की जाती है तभी लोग यहां दुःखी अनुभव करने लगते हैं। निश्चय ही जब कभी कोई दुःखी या असन्तुष्ट अनुभव करे, तो यह इस बात का निश्चित संकेत माना जा सकता है कि भगवान् जो कुछ हमेशा दे रहे हैं उसकी ओर से उसने मुंह मोड़ लिया है और वह सांसारिक संतुष्टि की खोज में भटक गया है।

१३ जनवरी, १९४७

*

अज्ञानी लोग जो कुछ मानते हैं उसके बावजूद, बाहरी घटनाओं के लिए भीतरी स्पन्दन जिम्मेदार होते हैं।

आश्रम में रहने वाले अधिकतर लोग बहुत आसानी से भूल जाते हैं कि वे यहां शान्त और सुखकर जीवन बिताने के लिए नहीं, बल्कि साधना करने के लिए हैं। और साधना करने के लिए अपनी भीतरी गतिविधियों पर अमुक अधिकार अनिवार्य है।

१ अक्तूबर, १९५९

*

केवल वही जो साधना करने के लिए आये हैं और साधना करते हैं, यहां पर सुखी और सन्तुष्ट रह सकते हैं। औरों को निरन्तर कष्ट रहते हैं,

क्योंकि उनकी कामनाएं सन्तुष्ट नहीं होतीं।

२ अक्तूबर, १९५९

*

अगर तुम यहां सुखी रहना चाहते हो तो तुम्हें आत्मपरिपूर्णता का योग करने का संकल्प करके आना चाहिये; क्योंकि अगर तुम उसके लिए नहीं आ रहे, तो तुम्हें हर क्षण ऐसी चीजों से धक्का लगेगा जो तुम्हारी आदतों और सामान्य जीवन के मानदण्डों के विपरीत हैं, और तुम्हारे लिए यहां ठहरना सम्भव न होगा, क्योंकि ये चीजें यहां के काम और संस्था के लिए जरूरी हैं और उन्हें बदला नहीं जा सकता।

३० सितम्बर, १९६०

*

हम अपने जीवन को आसान और आरामदेह बनाने के लिए यहां नहीं हैं; हम यहां भगवान् को खोजने के लिए, भगवान् बनने के लिए, भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिए हैं।

हमारा क्या होता है यह भगवान् का काम है, हमारी चिन्ता नहीं।

भगवान् हमारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि जगत् की और हमारी प्रगति के लिए क्या अच्छा है।

१९ अगस्त, १९६७

*

यहां समझदारी अनिवार्य है, पूर्णयोग संतुलन, स्थिरता और शांति पर आधारित है, दुःख सहते जाने की अस्वस्थ आवश्यकता पर नहीं।

१२ मई, १९६९

*

श्रीअरविन्द ने कहा है कि योग में शरीर को भी लेना चाहिये, उसका त्याग या उपेक्षा नहीं। और यहां प्रायः सभी ने यह सोचा कि वे भौतिक में योग कर रहे हैं और वे भौतिक "आवश्यकताओं" और कामनाओं के शिकार हो गये।

सच पूछो तो, तथाकथित त्यागी-तपस्वियों की अपेक्षा, जो औरों के लिए तिरस्कार, दुर्भावना और घृणा के भाव से भरे होते हैं, उन लोगों की इस भूल को मैं ज्यादा पसंद करती हूं।

इस विषय पर और जो कुछ कहा जा सकता है उसे कहने के लिए समय नहीं है।

आश्रम में आना

तुम कहते हो कि तुम अपने पुराने जीवन में लौट गये हो और कुछ समय के लिए जिस आध्यात्मिक चेतना में रहते थे उससे गिर गये हो। और तुमने पूछा है कि क्या यह इस तथ्य के कारण है कि श्रीअरविन्द ने और मैंने संरक्षण और अपनी सहायता को वापिस ले लिया है क्योंकि तुम अपना वचन निबाहने में असमर्थ रहे।

यह सोचना गलत है कि हमने किसी भी चीज को वापिस ले लिया है। हमारी सहायता और हमारा संरक्षण हमेशा की तरह तुम्हारे साथ हैं, लेकिन यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि हमारी सहायता को अनुभव करने और अपना वचन पालने की अक्षमता, दोनों एक ही कारण के युगपत् प्रभाव हैं।

याद करो, जब तुम अपने परिवार को लेने के लिए कलकत्ता गये थे तो मैंने लिखा था : अपने और भगवान् के बीच किसी भी प्रभाव को न आने दो। तुमने इस चेतावनी की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया : तुमने अपने और अपने आध्यात्मिक जीवन के बीच एक प्रभाव को जोरों से हस्तक्षेप करने दिया; इससे तुम्हारी भक्ति और तुम्हारी श्रद्धा गंभीर रूप से हिल गयीं। परिणामस्वरूप तुम डर गये और तुम्हें भागवत काम के लिए अपने को समर्पित करने में वही आनन्द नहीं मिला, और साथ ही स्वाभाविक था कि तुम अपनी सामान्य चेतना और पुराने जीवन में जा गिरे।

फिर भी, यह बिलकुल ठीक है कि तुम अपने-आपको हतोत्साह नहीं होने दे रहे। चाहे कैसा भी पतन हो, केवल फिर से उठ खड़े होना ही सम्भव नहीं है बल्कि और ज्यादा ऊंचा उठना और लक्ष्य तक पहुंचना भी सम्भव है। केवल प्रबल अभीप्सा और निरन्तर संकल्प की जरूरत है।

तुम्हें यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि तुम्हारे 'भागवत सिद्धि' की ओर आरोहण में कोई भी चीज हस्तक्षेप न करे। और तब सफलता निश्चित है।

हमारी अमोघ सहायता और संरक्षण के बारे में आश्वस्त रहो।

३ फरवरी, १९३१

*

माताजी, मेरी भौतिक मां यहां आना चाहती है। अगर वह मेरे लिए आना चाहती है तो यह मेरे लिए और उसके लिए भी अच्छा न होगा। अगर उसके अन्दर भगवान् के लिए इच्छा हो तो और बात है।

माताजी, क्या उसमें सच्ची इच्छा है? आप इस बारे में क्या सोचती हैं?

मुझे सचमुच यह लगता है कि अगर तुम यहां न होते, तो वह यहां आने का सपना भी न देखती। वह मुख्य रूप से तुम्हें ही देखना चाहती है, और तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो कि यह न तुम्हारे लिए अच्छा है, न उसके लिए। इसलिए ज्यादा अच्छा यही है कि वह न आये।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

*

वह योग करने का प्रयास कर सकती है, लेकिन उसका उद्देश्य शुद्ध होना चाहिये, क्योंकि अगर वह यहां आकर तुम्हारे साथ रहने के लिए योग करने का निश्चय करती है, तो उसके यहां आने से कोई लाभ न होगा।

२५ जून, १९३२

*

मैं चकरा गया हूं। मेरा हृदय आपकी ओर खिंचता है और मैं वापिस आना चाहता हूं। लेकिन कुछ चीजें मुझे यहां रोके हुए हैं और मुझे लगता है कि अगर मैं अभी लौट भी आऊं तो भी वे मुझे खींचती रहेंगी। मुझे क्या करना चाहिये? लेकिन कृपया यह जान लीजिये कि चाहे मैं अभी आऊं या न आऊं मैं कभी आपसे सम्बन्ध तोड़ नहीं सकता। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे छोड़ न दें।

मेरे प्रिय बालक, आज के आशीर्वाद...। अभी अभी तुम्हारा २१ तारीख का पत्र पढ़ा; वह (लिखित शब्दों के बिना) तीन दिन पहले सीधा मेरे पास आया था, शायद तब जब तुम उसे लिख रहे थे, और मेरा मौन उत्तर

सुस्पष्ट था : तब तक वहां बने रहो जब तक तुम्हारे लिए यहां रहने की आवश्यकता इतनी अनिवार्य न हो उठे कि और सभी चीजें तुम्हारे लिए अपना मूल्य खो दें। अब भी मेरा उत्तर यही है। मैं तुम्हें यही आश्वासन देती हूं कि हम तुम्हें छोड़ नहीं रहे और तुम्हें हमेशा हमारी सहायता और संरक्षण प्राप्त रहेंगे।

२४ अप्रैल, १९३९

*

मैं 'क' पर अपनी कृपा की वर्षा करने को बिलकुल तैयार हूं, लेकिन मुझे उसके लिए यह ठीक नहीं लगता कि वह यहां आये। मुझे नहीं लगता कि आधे मिनट का "दर्शन" इन आदतों को बदल सकता है। हमें इनके बारे में पहले ही कटु अनुभव हो चुके हैं, वे चैत्य उद्घाटन का भी प्रतिरोध करते हैं। पहले उसके अन्दर बदलने के लिए सच्ची इच्छा होनी चाहिये।

हमारे प्रेम और आशीर्वाद।

१६ जनवरी, १९४०

*

तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला और पढ़ा। यह रहा मेरा उत्तर :

तुम्हारा स्वभाव ऐसा है कि तुम हमेशा वहां होना चाहोगे जहां तुम नहीं हो। आश्रम जीवन के लिए तुम्हारा आकर्षण इस कारण होता है क्योंकि तुम यहां से दूर हो। जैसे ही तुम लौटकर यहां आओगे फिर से बेचैनी और भाग जाने की इच्छा जोर मारेगी। जैसा कि रामकृष्ण ने कहा था, गुरु से बहुत दूर रहना परंतु हमेशा उनके बारे में सोचते रहना, गुरु के पास रहना और केवल संसार के भोग-विलास के बारे में सोचने से ज्यादा अच्छा है।

जब तुम इस स्थिति से ऊपर उठ जाओगे और अपने अन्दर चैत्य पुरुष और भगवान् के लिए उसकी सच्ची और निरन्तर ललक को पा लोगे, तब यहां लौट आने और हमेशा के लिए यहां बस जाने का समय होगा।

१० जून, १९४९

*

हमें नहीं लगता कि तुम्हारे आश्रम में स्थायी तौर पर रहने का समय आ गया है। तुम्हारे लिए सबसे अच्छा यही है कि समय-समय पर दर्शन के लिए आओ और अपने-आपको तैयार करो। जब काफी तैयारी हो जाये तो तुम स्थायी निवास के लिए आ सकते हो।

तुम विश्वास रख सकते हो कि हमारी सहायता, हमारा प्रेम और हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

२४ फरवरी, १९४१

*

श्रीअरविन्द ने मुझे तुमसे यह कहने के लिए कहा है कि तुम्हारे लिए अभी तुरंत आश्रम में आ जाना अच्छा नहीं है। यह योग कठिन है और बिना तैयारी उसमें डुबकी लगाना उसे और भी कठिन बना देगा। तुम्हें पहले "लाइफ डिवाइन" (दिव्य जीवन) पढ़नी और समझनी चाहिये और इस बात का विश्वास कर लेना चाहिये कि तुम्हारा निश्चय ठोस आधार पर है और तुम्हारे मन और प्राण एक नये आन्तरिक जीवन में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं।

हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेंगे।

२४ फरवरी, १९४१

*

यह सच है कि मैंने 'क' को क्षमा कर दिया है, क्योंकि 'भागवत कृपा' हर बात को क्षमा कर देती है, लेकिन साथ ही यह भी सच है कि 'क' की स्त्री और बच्चों के यहां आने का *प्रश्न ही नहीं उठता,* इसके बहुत-से कारण हैं जिनमें एक ही काफी है—वह यह कि बुरे उदाहरण से बढ़कर संक्रामक और कोई चीज नहीं है और मैं ऐसी अप्रिय घटनाओं को दोहराने की इजाजत नहीं दे सकती।

६ जून, १९५४

*

तुमने एक भूल की है और वही सारी तकलीफ का कारण है। जाने से

पहले तुम्हें मेरे साथ *खुलकर* बात करनी चाहिये थी कि तुम्हें इस जवान लड़की को यहां लाकर रखने के लिए उसके साथ शादी करनी पड़ेगी। मैं तुम्हें इस अप्रिय आवश्यकता से बचने की सलाह दे सकती थी, तब तुम्हारी शादी का समाचार एक धक्के की तरह से न आता और ऐसी लोकनिन्दा का कारण न होता।

अब, सबसे अच्छा यही है कि 'क' के रोग-मुक्त होने तक प्रतीक्षा करो और उसे अपने साथ ले आओ; यह कम-से-कम आश्रमवासियों के लिए तुम्हारी सचाई का एक प्रमाण होगा।

हमने छोटे बच्चे के साथ 'ख' के ठहरने के लिए जगह तैयार कर दी है, और तुम अलग रहोगे।

तुम्हें इस अनुभव से यह सीखना चाहिये कि साहसपूर्ण और सीधी स्पष्टवादिता हमेशा कठिनाइयों का सामना करने का सबसे अच्छा उपाय होती है।

५ फरवरी, १९५५

*

भगवान् पर तुम्हारी श्रद्धा कहां है? भगवान् पर श्रद्धा रखते हुए तुम्हें खुश होना चाहिये कि 'क' को आन्तरिक पुकार हुई है और उसने दिव्य जीवन अपनाने का निश्चय किया है; तुम्हें 'भागवत कृपा' के इस संकेत से खुश होना चाहिये और इसके लिए कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिये।

सामाजिक कठिनाइयों का चुपचाप समता और प्रसन्नता के साथ सामना करो; तब तुम जानोगे कि मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

२० फरवरी, १९५५

*

मेरे प्यारे बच्चो,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है और मैं तुम्हारे निश्चय की सराहना करती हूं। लेकिन तुम्हें आश्रम में रहते हुए जो कठिनाइयां हो रही थीं, उन्हें दृष्टि में रखते हुए, मुझे तुम्हारे लिए यह ज्यादा उपयुक्त लगता है कि तुम अभी कुछ समय ठहरो और देखो कि क्या तुम आश्रम में रहने के लिए

अपने निश्चय पर टिक सकते हो। अगर तुम यहां नहीं रह सकते तो अभी तुम्हारे लिए हिन्दुस्तान से चले जाना ज्यादा अच्छा होगा। अगर कुछ समय के बाद तुम्हें लगे कि तुम उस निश्चय को निभा सकते हो, तो फिर से मुझे लिखो और तब पर्यटक-पत्र (टूरिस्ट वीज़ा) पर नहीं, छात्र या अध्यापक के वीज़ा पर आओ।

अगर उसमें सत्य होगा तो वह कभी नहीं मुरझायेगा, परिस्थितियां चाहे कितनी भी विरोधी क्यों न हों।

'कृपा' के आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहें।

३ जून, १९५७

*

मुझे खेद है, परंतु अभी के लिए हम इस स्थिति में नहीं हैं कि आश्रमवासियों की संख्या बढ़ायें। जितने हैं उनके साथ ही व्यवस्था कर पाना मुश्किल हो रहा है—वे मुट्ठी-भर लोग अपवाद हो सकते हैं जो साधना की सच्ची पुकार के साथ आयें।

१ अगस्त, १९५९

*

(ऐसे व्यक्ति के नाम जो अपने परिवार को आश्रम में लाना चाहता था)

यह बहुत अच्छा है—मैं सारी दुनिया को "आश्रय" देना चाहूंगी, या कम-से-कम उन सबको जो ज्यादा अच्छे जीवन के लिए अभीप्सा करते हैं। लेकिन हमारे पास जगह और साधनों की कमी है।

नगर को विकसित होने दो, साधनों को बढ़ने दो, तब हमारा आतिथ्य भी बढ़ जायेगा।

*

माताजी,

क्या मेरे बच्चे, जिनके फोटो आप पहले देख चुकी हैं, अन्ततः

यहां आ सकेंगे? क्या उन्हें आपका संरक्षण मिल सकता है?

निश्चय ही तीनों के साथ मेरे आशीर्वाद हैं। रही बात यहां आने की, तो यह निश्चित नहीं है कि बड़े दो यहां आना चाहेंगे—उनकी *अपनी इच्छा* जरूरी है। तीसरी अभी बहुत छोटी है, उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता—परन्तु वह है होनहार।

२४ मार्च, १९६६

*

तुम पूछते हो कि क्या तुम और कुछ समय बाहर रहकर भी मेरे साथ वही सम्बन्ध बनाये रख सकोगे। हां तो, निश्चय ही, यह समय की अवधि पर निर्भर है।

क्योंकि धीरे-धीरे तुम यह भूल जाते हो कि तुम्हारे अन्दर एक *सच्ची सत्ता* है (या थी) और तुम "विचारशील", "कुशल" और "समझदार" प्राणी होने के इतने अभ्यस्त हो जाओगे कि तुम कुछ और होने का सपना तक न देखोगे।

जो हो, स्वयं तुम्हें निश्चय करना है, तुम्हारे लिए न तो तुम्हारे मां-बाप निश्चय कर सकते हैं और न मैं। तुम्हारी नियति के बारे में निश्चय करने का अधिकार उन्हें मुझसे ज्यादा नहीं है। मैं केवल एक बात कह सकती हूं, जब कभी तुम विचारशील, कुशल और समझदार प्राणी होने से ऊब जाओ, तो वहां से भाग निकलो, तुरंत, बिना किसी हिचकिचाहट के, और यहां लौट आओ। मैं तुम्हें तुम्हारी सच्ची सत्ता लौटा दूंगी।

*

यह वास्तव में अनिवार्य है कि तुम यहां रहने योग्य बनो इससे पहले तुम्हारे स्वभाव में कोई चीज मौलिक रूप से बदले। तुम आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए अत्यधिक अहं-केंद्रित हो; और यही इस अनर्थ और इसके द्वारा तुम पर आयी पीड़ा का कारण है, और यह सारी चीज का स्वाभाविक परिणाम है। वस्तुतः, यह ज्यादा अच्छा होगा कि तुम आश्रम-जीवन को अपने लिए स्वार्थपूर्ण जीवन का एक बहाना बनाकर रहने की

जगह अभी बाहर जाकर साधारण जीवन का सामना करो तथा औरों के साथ और औरों के लिए जीना सीखो।

*

हर एक को अपने चुने हुए मार्ग पर चलने का अधिकार है, परंतु वह ठीक स्थान पर होना चाहिये, और स्पष्ट है कि तुम्हारे चुने हुए मार्ग पर चलने के लिए आश्रम उपयुक्त स्थान नहीं है।

आश्रम से जाना

मैं तुम्हें जाने की सलाह नहीं देती। रही बात 'क' की, तुमने जिन परिस्थितियों का वर्णन किया है उनमें उसके लिए ज्यादा अच्छा होगा कि उसके जाने की जगह कोई उसकी सहायता करने के लिए यहां आ जाये। क्या तुम इसकी व्यवस्था कर सकते हो?

आशीर्वाद।

२५ फरवरी, १९३९

*

मैंने 'क' के जाने को बहुत पसंद नहीं किया, लेकिन तुम्हारे जाने के बारे में तो मैंने पूरी तरह अस्वीकार किया है। मैं यह नहीं समझ सकती कि केवल इस कारण कि वह अपने गांव लौट जाना चाहती है तुम अपना काम क्यों छोड़ो और अपनी साधना में बाधा और संकट ले आओ।

मुझे यह निश्चय स्वयं तुम्हारे और तुम्हारी आध्यात्मिक अभीप्सा के लिए उचित या अच्छा नहीं लगता, अतः मैं आशा करती हूं कि तुम उसे इस प्रकाश में देखोगे और अपने निश्चय पर पुनर्विचार करोगे।

३ मई, १९३९

*

निश्चय ही मैं तुम्हें दुःखी नहीं करना चाहती और अगर तुम्हारे अन्तःकरण का खिंचाव इतना जोरदार है कि तुम उसे सह नहीं सकते तो मैं तुम्हें जाने से नहीं रोक सकती।

४ मई, १९३९

*

अगर तुम्हें यह विश्वास है कि अपने गांव में रहने से तुम्हारे शरीर को राहत मिलेगी तो मैं स्वीकृति देने से इन्कार नहीं कर सकती। जैसा कि तुमने लिखा है, तुम पहली जून को जा सकते हो।

३० मई, १९३९

*

'क' के जाने के कारण बहुत प्रबल नहीं हैं। लेकिन अगर जाने की इच्छा इतनी आग्रही है तो वह जा सकती है—तुम्हारा यह अनुभव करना बिलकुल ठीक है कि तुम्हें नहीं जाना चाहिये।

मेरे आशीर्वाद।

५ मई, १९४१

*

माताजी,

सुना है डॉ. 'क' ने यह इच्छा प्रकट की है कि वे आश्रम के चित्रकारों को जिंजी दुर्ग पर ले जायेंगे। अपने बारे में, मैं आपको यह बतलाना चाहता हूं कि मैं जाने के लिए बहुत उत्सुक नहीं हूं। मैं तभी जाना चाहूंगा जब आपको लगे कि मेरा जाना उचित है और आप चाहें कि मैं जाऊं, यह मेरी इच्छा नहीं है। मैं हमेशा वही करना चाहता हूं जिससे आप खुश हों, इसलिए मैं आपकी सलाह मांगता हूं और चाहता हूं कि आप बिना हिचकिचाहट और संकोच के अपनी राय दें। मेरे लिए आपकी इच्छा पूरी करना और आपके शब्दों का अनुसरण करना एक कामना को संतुष्ट करने की अपेक्षा ज्यादा सुखद है।

प्रणाम-सहित।

न जाना ज्यादा अच्छा है; आध्यात्मिक जीवन के लिए इस तरह की सैर बहुत हितकर नहीं है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

२४ दिसम्बर, १९४०

*

तुम अपने पिताजी से मिलने जा सकते हो—लेकिन मैं चाहूंगी कि तुम तब जाओ जब विद्यालय की छुट्टियां हों, यानी दूसरी दिसम्बर के बाद जाओ और पहली जनवरी से पहले, विद्यालय खुलने के समय, वापिस आ जाओ—क्योंकि पढ़ाई की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

*

मेरे लिए यह समझना कठिन है कि 'क' जो बरसों से योग में तल्लीन था, जिसके लिए आपने कहा था कि उसका स्वभाव संतों जैसा है, वह आपसे कैसे दूर चला गया और योग-मार्ग से च्युत हो गया।

तुम्हारी मनोवृत्ति की कठिनाई है उसका बहुत अधिक सरलीकरण। तुम एक दिशा में देखते हो और उसी पर बहुत ज्यादा जोर देते हो और बाकी की अवहेलना कर देते हो। किसी व्यक्ति में कुछ गुण हो सकते हैं लेकिन पूर्णता नहीं, और उसकी अवचेतना में इन गुणों के ठीक विपरीत गुण हो सकते हैं। अगर कोई इस विपरीतता को समाप्त कर देने की सावधानी न बरते, तो किसी भी क्षण परिस्थितियों के दबाव से जो चीज अवचेतना में है वह जोर से ऊपर उठ सकती है और आदमी ढह हो सकता है जिसे योग में पतन कहते हैं।

३० नवम्बर, १९४३

*

अगर एक ऐसा व्यक्ति जिसे आपने "संत"-स्वभाव का बतलाया था, बरसों के योग-जीवन को छोड़ सकता है, तो मैं दुःखी और हतोत्साह हुए बिना नहीं रह सकता।

मैं तुम्हें यह बतला सकती हूं कि कोई ऐसी बात नहीं हुई है जिसे सुधारा न जा सके। निश्चय ही आदमी मार्ग से जितनी दूर भटकेगा उसे वापिस लौटने के लिए उतने ही मौलिक परिवर्तन की जरूरत होगी; लेकिन वापिस आना हमेशा सम्भव है।

२२ दिसम्बर, १९४३

*

निश्चय ही माताजी यह जानती हैं कि अमुक व्यक्ति विद्रोह करेगा या निष्क्रिय जीवन बितायेगा और, हर हालत में, आश्रम से चला जायेगा। यह जानते हुए वे ऐसे व्यक्ति को बरसों तक आश्रम में क्यों रहने

देती हैं? वे उससे कह क्यों नहीं देतीं कि उसका यहां रहना बेकार होगा या वह जब चाहे चला जाये?

क्योंकि, हर एक को अपना पूरा-पूरा अवसर दिया जाता है, और हमेशा ही अप्रत्याशित उद्‌घाटन या परिवर्तन हो सकता है।

२४ जून, १९५८

*

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया और मैंने पढ़ भी लिया।

कुछ बातों को स्पष्ट करना ज्यादा अच्छा होगा।

पहली बात, लोगों से और विशेषकर नौकरों से कृतज्ञता की आशा करना हमेशा मूर्खतापूर्ण होता है।

दूसरी बात, जब केवल मजाक करने वाला ही मजाक में मजा ले सके, तो उसे बुरा मजाक कहते हैं।

अन्त में, लोगों की राय को कोई महत्त्व देने की जरूरत नहीं है, क्योंकि वे उड़ते संस्कारों के उड़ते परिणाम होते हैं; भिन्न परिस्थितियां और नये संस्कार उन्हें आसानी से बदल सकते हैं।

लेकिन स्थिति को सहज बनाने के लिए मुझे ज्यादा समझदारी इसी में लगती है कि तुम्हारे रहने का स्थान बदल दिया जाये और समय के साथ तनाव हल्का हो जाये।

और फिर, मुझे यह भी कहना चाहिये कि अगर तुम यहां दुःखी हो और तुम्हें वातावरण सहन करने में कठिनाई होती है, तो मैं इस अग्निपरीक्षा के बावजूद तुमसे यहां ठहरने के लिए नहीं कह सकती।

७ अक्तूबर, १९५९

*

मैं तुम्हारे तिरुवण्णमलै जाने में कोई तुक नहीं देखती, अगर तुम सैर-सपाटे के शौकीन हो तो और बात है।

५ दिसम्बर, १९६४

*

भगवती मां,

क्या मुझे अमरीका लौटकर वहां धन इकट्ठा करना और आपके और श्रीअरविन्द के योग का प्रसार करना चाहिये? या यह केवल सक्रिय प्राणिक बकबक है? मैं यहां के संघर्ष से बच निकलना नहीं चाहती—यदि यही मेरी भूमिका हो। लेकिन कुछ समय से मुझे लग रहा है कि मेरा काम अमरीका में है।

तो वास्तव में मैं यह पूछ रही हूं कि मेरी भूमिका क्या है और वह कहां होनी चाहिये?

काम के लिए और स्वयं तुम्हारे लिए यही अच्छा होगा कि तुम यहीं रहो।

३० मई, १९६६

*

मेरे प्रिय बालक,

तुम शाश्वत काल के लिए मेरे पुत्र और मैं तुम्हारी मां हूं।

चिंता न करो, मैं तुम्हारे आध्यात्मिक विकास की पूरी जिम्मेदारी लेती हूं और तुम आश्रम में तब तक रह सकते हो जब तक यह तुम्हें अपना घर लगे और तुम सचाई के साथ अपने-आपको "भगवान् के काम" के लिए अर्पित कर सको।

प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

१३ दिसम्बर, १९६६

*

यह मार्ग आसान नहीं है।

यहां रहना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है जो अपने अन्दर की गहराइयों में अनुभव करते हैं कि यही संसार में *एकमात्र* जगह है जहां उन्हें रहना चाहिये।

तुम्हारे अन्दर यह चीज आ सकती है—आनी चाहिये—लेकिन इस बीच यह ज्यादा अच्छा है कि दुनिया में वापिस जाकर देखो कि उसके पास तुम्हें देने के लिए क्या है।

मैं ज्यादा सच्चे भविष्य के प्रति तुम्हारी अभीप्सा में हमेशा तुम्हारे साथ रहूंगी।

आशीर्वाद।

३ जुलाई, १९६८

*

यहां अनुभव के लिए यथासंभव अधिक-से-अधिक क्षेत्र हैं, क्योंकि वह अधिकाधिक भौतिक क्रिया-कलाप से लेकर अधिकतम आध्यात्मिक क्षेत्रों तक फैला हुआ है जिसमें बीच के सभी स्तर आ जाते हैं।

इसलिए अगर, जैसा कि तुम कहते हो, तुम यहां से जाकर "मनुष्य का अनुभव" पाना चाहते हो, तो इसका कारण यह है कि तुम सत्य चेतना के सीधे नियंत्रण में आये बिना, जो तुम्हें बतला देगी कि ये मूर्खताएं हैं, मनमाने मूर्खता-भरे काम करने की स्वाधीनता चाहते हो।

व्यक्तिगत प्रगति के लिए जिन सच्ची अनुभूतियों की जरूरत है वे उन परिस्थितियों या उस वातावरण पर निर्भर नहीं हैं जिसमें तुम रहते हो, ये निर्भर हैं आन्तरिक मनोभाव और प्रगति के लिए संकल्प पर।

*

अगर तुम अपनी अन्तरात्मा को पाना, उसे जानना और उसकी आज्ञा मानना चाहते हो, तो चाहे जिस कीमत पर हो, यहीं रहो।

अगर तुम्हारे जीवन का लक्ष्य यह नहीं है और तुम बहुसंख्यक लोगों का जीवन जीने के लिए तैयार हो, तो निश्चय ही तुम अपने परिवार के पास वापिस जा सकते हो।

*

'क' जानना चाहती है कि क्या वह इस जीवन को स्वीकार कर सकती है या उसे सामान्य जीवन में जाना होगा।

यह तथ्य ही कि वह यहां है यह प्रमाणित करता है कि उसकी सत्ता में

कहीं पर अभीप्सा है और सहायता द्वारा वह अभीप्सा पूरी सत्ता में फैल सकती है।

*

तुम्हारे इस प्रश्न के बारे में कि "तुम कहां ठीक बैठोगे", दुनिया तुम्हारे जैसे लोगों से भरी है, इसलिए तुम दुनिया में बिलकुल ठीक बैठ जाओगे, अगर—इसमें एक अगर है—अगर तुम अपने अन्दर विभक्त न हो। तुम्हारी सारी कठिनाई का कारण यह है कि तुम अपने साथ ही ठीक नहीं बैठते, बल्कि तुम्हारी बाहरी सत्ता और उसकी क्रियाएं तुम्हारी अन्तरात्मा के साथ बिलकुल मेल नहीं खातीं, और चूंकि तुम्हारी अन्तरात्मा काफी जाग्रत् है, इसलिए यह संघर्ष तुम्हें मुश्किल में डालता है।

एक बार तुम्हारे अन्दर जाग्रत् अन्तरात्मा हो तो उससे पीछा छुड़ाना आसान नहीं होता। इसलिए ज्यादा अच्छा यही है कि उसका हुकुम माना जाये।

मैं तुम्हें जो अच्छी-से-अच्छी सहायता दे सकती हूं वह यही सलाह है।

*

क्या यह हो सकता है कि तुम जिसे अपनी मंथर प्रगति समझते हो उसके बारे में जरा अधीर हो?

क्या तुम अपने प्रयास का फल चखने के लिए बेचैन और उत्सुक हो?

और फिर मैं यह नहीं समझ पाती कि भले कुछ सप्ताहों के लिए क्यों न हो, फिर से उसी वातावरण में डुबकी लगाना तुम्हें "चिपकी रहने वाली बाधाओं" से छुड़ाने में कैसे सहायता देगा। वही वातावरण तुम्हारी ऊपरी परत की मोटाई के लिए जिम्मेदार है जिसे तुम्हारी अन्तरात्मा को छेदना होगा ताकि वह बाहर भी अपना प्रभाव डाल सके।

तुम अपनी आत्मा के लक्ष्य और अभीप्सा के बारे में काफी सचेतन हो; तुम इस बात से पूरी तरह सचेतन हो कि तुम्हारी अन्तरात्मा तुम्हें क्या बनाना चाहती है और तुमसे क्या होने की आशा करती है। केवल वर्तमान भौतिक रचना के परिणाम रास्ते में खड़े हैं, और अब, केवल इन बाधाओं

पर निरंतर, धैर्य के साथ काम करने से ही तुम कठिनाई को हल कर सकते हो।

तो योग के दृष्टिकोण से, "छुट्टी लेना" एक तरह से प्रतिरोध की हठ के आगे "हथियार डालना" है। मेरे लिए यह बिलकुल स्पष्ट है।

लेकिन क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे मन के किसी कोने में आसक्ति की कोई स्मृति नहीं लुकी हुई जो बिना जाने तुम्हें बाहर से आने वाले आग्रही दबाव की बात मानने को बाधित करती है? उस हालत में समस्या पर एक और ही कोण से विचार करना होगा।

*

यह स्पष्ट है कि तुम्हारी आन्तरिक सत्ता बहुत मजबूत नहीं है और उसमें निर्वीर्य संदेहों, पराजयवादी निराशा, अहंकार और विश्वासघात से भरे परिवेश के विषैले प्रभाव का प्रतिकार करने की शक्ति नहीं है।

हमारा मार्ग आसान नहीं है, वह बहुत साहस और अथक सहिष्णुता की मांग करता है। परिणाम पाने के लिए, जो कभी-कभी बाहरी तौर पर मुश्किल-से दिखायी देते हैं, शांत-स्थिरता के साथ, कठिन परिश्रम और महान् प्रयास की जरूरत होती है।

बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें अपने-आपको साफ करने की जरूरत अनुभव करने के लिए कीचड़ में लोटने की जरूरत होती है।

अगर कामना इतनी दृढ़ है कि तुम्हारे अन्दर उसे जीतने की शक्ति नहीं है, तो अपनी जान-पहचान के लोगों से कहो कि तुम्हारे लिए कोई नौकरी ढूंढ़ दें (साधारणतः आश्रम से जाने वाले युवकों के लिए यह बहुत मुश्किल नहीं होता) और जाकर सामान्य जीवन का तब तक सामना करो जब तक तुम यह न जान जाओ कि जिस जीवन को तुम छोड़कर आये हो उसका सही मूल्य क्या है।

अग्रदूत होने के लिए तुम्हारे अन्दर वीरता होनी चाहिये; क्योंकि, साधारणतः, लोगों को उसी पर विश्वास होता है जो चरितार्थ हो चुका हो, स्पष्ट हो, प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देता हो और जिसे बहुत अधिक संदेही या संशयी लोग तक भी स्वीकार करते हों।

*

तुम्हें जाते देखकर मुझे खेद होगा और मैं आशा करती थी कि इसकी जरूरत न होगी। लेकिन अगर तुम इतने दुःखी हो, अपने पर तुम्हें इतना कम विश्वास है, तो शायद कुछ समय के लिए जाना और अपना संतुलन ठीक कर लेना अच्छा होगा। मैं तुम्हारे लिए दरवाजा खुला रखूंगी और जैसे ही तुम काफी मजबूत हो जाओ, तुम वापिस आ जाओगे।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं और रहेंगे।

और अगर अगली बार तुम योग के लिए और भागवत जीवन जीने के लिए वापिस आओगे, तो सब कुछ आसान हो जायेगा।

*

मैं प्रसन्न हूं कि यहां रहने से तुम्हारी दृष्टि और समझ विशाल हुई है और तुम्हारी चेतना में गहराई आयी है।

आश्रम से बाहर के लोगों के साथ सम्बन्ध

साधक को क्या होना चाहिये इसके बारे में मैं तुम्हारे भावों की कद्र करती हूं और उस दृष्टिकोण से, तुम जो कहते हो वह बिलकुल सच है। लेकिन यह भली-भांति जानी हुई बात है कि आश्रम में केवल साधक ही नहीं हैं। आश्रम जीवन का एक लघु आकार है जिसमें योगाभ्यास करने वाले संख्या में कम हैं, और अगर मैं यहां सिर्फ उन्हीं को रखूं जो अपनी साधना में बिलकुल सच्चे और निष्कपट हैं, तो वस्तुतः, बहुत कम ही रह जायेंगे।

श्रीअरविन्द हमेशा हमें इस तथ्य की याद दिलाते हैं कि भगवान् हर जगह हैं और हर चीज में हैं, और हम सभी से करुणा का अभ्यास करने को कहते हैं। यह बात बड़े ही सुन्दर ढंग से उस सूत्र में कही गयी है जिस पर मैं अभी-अभी टिप्पणी कर रही थी: "अपने-आपको निर्दय होकर जांचो, तब तुम औरों के प्रति अधिक उदार और दयालु होओगे।"

और इस संदर्भ में मैं तुमसे कहती हूं कि 'क' को आने और अपनी मां से मिलने दो। वह उससे बहुत अधिक प्रेम करती है और अगर उसे बेटे के साथ मिलने से वंचित किया गया तो वह बहुत दुःखी होगी।

रही बात उसके काम की, तो यह मेरे और उसके बीच की बात है, और मैं जानती हूं कि हम कोई संतोषजनक व्यवस्था कर सकेंगे।

तो मैं फिर से तुम्हें शांत रहने और 'भगवान् की कृपा' और 'बुद्धिमत्ता' पर विश्वास रखने के लिए कहने को बाधित हूं।

२६ जनवरी, १९६२

*

हृदय और भावों का सामीप्य शरीरों के सामीप्य की अपेक्षा बहुत ज्यादा प्रबल और सच्चा होता है।

अपनी मां से सच्चा प्रेम करो और यह जानते हुए कि धरती छोटी है और प्रेम विशाल, बिना दुःख या कष्ट के उसे अमरीका जाने दो।

२२ जुलाई, १९६८

*

मेरे प्यारे बालक,

निश्चय ही हम तुम्हारे सच्चे माता-पिता हैं, और तुम्हारा सच्चा कर्तव्य भगवान् के प्रति है।

अज्ञानियों को अपने अज्ञान के अनुसार कहने दो और तुम अपने अन्दर 'भागवत चेतना' का प्रकाश, ज्ञान और शांति बनाये रखो।

हमारे प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

*

मुझे खुशी है कि तुम इस सारे "नाटक" को उसी तरह ले रहे हो जैसे उसे लेना चाहिये, यानी अच्छी तरह हंसते हुए।

लोग तुम्हें "शरणार्थी" कहते हैं लेकिन भगवान् का शरणार्थी होना और उनकी शरण और उनके प्रेम का आनन्द लेना एक बहुत ही भव्य बात है...

अगर उन्हें मजा आता है तो उन्हें "भागवत जीवन" में श्रद्धा के अभाव का प्रदर्शन करने के लिए लिखने दो, हम उससे प्रभावित नहीं हो सकते।

*

श्रीअरविन्द कहते हैं :

ज्यादा अच्छा यह है कि अपने भूतकाल को बिलकुल पीछे छोड़ दो और टूटे हुए सम्बन्धों को फिर से न जोड़ो।

चिट्ठी न लिखना और तार न देना ज्यादा अच्छा होगा।

*

दर्शनार्थियों और विदेशियों के साथ (और आपस में भी) व्यवहार करते समय आश्रमवासियों को एक अच्छी सलाह :

"जब तुम्हारे पास आश्रम की किसी चीज या किसी व्यक्ति के बारे में कहने के लिए कोई अच्छी चीज न हो, तो *चुप रहो*।

"तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह मौन भगवान् के काम के प्रति वफादारी है।"

*

मैं हमारी पत्रिका के लिए 'क' द्वारा प्रस्तावित दो व्यक्तियों के लेख मांगने की सोच रहा हूं। लेकिन मुझे पता नहीं श्रीअरविन्द के प्रति उनका क्या रुख है। 'क' कहता है कि वे कुशल लेखक हैं और उन्होंने श्रीअरविन्द की पुस्तकों का अच्छा अध्ययन किया है और वे हमारी पत्रिका के लिए लिख सकेंगे। लेकिन मेरा अनुभव है कि अगर ये लोग उदारमना ओर प्रगतिशील हों तो कभी-कभी श्रीअरविन्द के बारे में एक नये दृष्टिकोण से लिखते हैं और लेख बहुत मजेदार होते हैं। लेकिन अधिकतर ये लोग श्रीअरविन्द का मूल्यांकन अपने संकीर्ण और प्रतिबन्धित बौद्धिक दृष्टिकोण से करते हैं। अतः मैं इस मामले में आपसे मार्ग-दर्शन चाहता हूं।

ऐसे लोगों से कुछ न मांगो जिन्हें तुम नहीं जानते और जिनके मन के बारे में तुम्हें भरोसा नहीं है।

मैंने जो कहा है यह उन सबके लिए है।

२२ अक्तूबर, १९६५

*

माताजी, नीचे दिये गये पत्र में श्रीअरविन्द ने धरती के लिए नयी चेतना उतारने के अपने विशेष काम करने के लिए बाहरी दुनिया से सम्पर्क कम करने और अपने-आपको सामान्य जीवन से अलग करने के लिए लिखा है।

यह पत्र १९३३ में लिखा गया था। लेकिन अब बाहरी दुनिया से सब प्रकार के लोगों को आश्रम में आजादी के साथ आने दिया जाता है, और आश्रम के साधक भी उनके साथ खुलकर मिलते हैं। क्या इसका कारण यह है कि अब हमारा काम एक ऐसे नये स्तर तक जा पहुंचा है जिसमें बाहरी दुनिया के साथ हमारे सम्पर्क में पहले के प्रतिबन्ध जरूरी नहीं रहे? क्या आप कृपा करके इस विषय पर प्रकाश डालेंगी?

(श्रीअरविन्द से प्रश्न)

"सभी सत्ताओं में स्थित भगवान् का 'प्रेम' और सभी चीजों में

उनकी क्रिया को निरन्तर देखना और मानना"[१]—अगर भगवान् को पाने और उन्हें सबमें देखने के तरीकों में से यह भी एक है, तो हमारे यहां बाहरी दुनिया के लोगों से सम्पर्क रखने पर प्रतिबन्ध क्यों है? हम अपना प्रेम सबको क्यों नहीं दे सकते?

(श्रीअरविन्द का उत्तर)

साधारण कर्मयोग के लिए यह ठीक है जिसका उद्देश्य विश्वात्मा के साथ ऐक्य होता है, जो अधिमानस से नीचे रह जाता है—लेकिन यहां एक विशेष कार्य करना है और केवल अपने लिए नहीं, धरती के लिए एक नयी उपलब्धि पानी है। यहां शेष जगत् से अलग खड़ा होना जरूरी है ताकि हम अपने-आपको, नयी चेतना को यहां उतारने के लिए, सामान्य चेतना से अलग कर सकें।

ऐसी बात नहीं है कि सबके लिए प्रेम साधना का अंग नहीं है, लेकिन उसे अपने-आपको तुरंत सबके साथ मिलने-जुलने में नहीं बदल लेना चाहिये—वह अपने-आपको एक साधारण व्यापक रूप में प्रकट कर सकता है और जब जरूरत हो तो क्रियाशील वैश्व सद्भावना में प्रकट हो सकता है, परंतु बाकी के बचे प्रेम को उच्चतर चेतना को नीचे लाने और धरती पर उसके प्रभाव को प्रकट करने के परिश्रम में ही प्रकट होना चाहिये। रही बात सभी चीजों में भागवत कार्य-प्रणाली को स्वीकार करने की, तो यह यहां भी जरूरी है—इस अर्थ में कि अपने संघर्षों और कठिनाइयों के पीछे भी उसे ही देखे, लेकिन मनुष्य और जगत् की प्रकृति, वह जिस रूप में है उसमें न स्वीकार करे—हमारा उद्देश्य है उस अधिक भागवत प्रक्रिया की ओर गति करना जो अभी जो है उसके स्थान पर एक अधिक बड़ी और अधिक सुखद अभिव्यक्ति को लायेगी। यह भी भागवत 'प्रेम' का श्रम है।[२]

२२ अक्तूबर, १९३३

*

[१] श्रीअरविन्द—'श्रीअरविन्द के पत्र', खण्ड २३।

[२] श्रीअरविन्द—'श्रीअरविन्द के पत्र', खण्ड २३।

श्रीअरविन्द ने जो लिखा है वह पूर्णतया सत्य है और उसका अनुसरण करना चाहिये।

केवल एक नया तथ्य है—इस वर्ष के आरंभ से एक नयी चेतना अभिव्यक्त हुई है और वह बड़े जोरों से धरती को नूतन सृष्टि के लिए तैयार करने के काम में लगी हुई है।

१७ अप्रैल, १९६७

*

श्रीअरविन्द की शताब्दी के अवसर पर बहुत-से लोग आश्रम आयेंगे? हम उन्हें आश्रम की वास्तविकता दिखाने के लिए क्या कर सकते हैं?

उसे जियो। इस वास्तविकता को जियो। बाकी सब—बोलना, आदि—किसी काम के नहीं।

अपने-आपको उसके लिए कैसे तैयार करें?

चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क द्वारा, जो हमारे अन्दर गहराई में अवतरित भगवान् हैं, और

तीव्र अभीप्सा,
पूर्ण एकाग्रता,
निरन्तर समर्पण द्वारा।

वित्त और मितव्ययिता

सबसे पहले, आर्थिक दृष्टिकोण से, जिस सिद्धान्त पर हमारा काम आधारित है वह है : मुद्रा मुद्रा कमाने के लिए नहीं है। यह विचार कि मुद्रा को मुद्रा कमानी चाहिये मिथ्यात्व पर आधारित है और विकृत है।

मुद्रा किसी दल, देश या ज्यादा अच्छा तो यह है कि समस्त पृथ्वी की धन-संपत्ति, समृद्धि और उत्पादकता बढ़ाने के लिए हो। मुद्रा अपने-आपमें उद्देश्य नहीं है, वह साधन, बल और शक्ति है। और, सभी बलों और शक्तियों की तरह, इसकी शक्ति गति और संचार से बढ़ती है, संचय और गतिरोध से नहीं।

हम जिस चीज के लिए यहां प्रयास कर रहे हैं वह है संसार के आगे, ठोस उदाहरण के द्वारा, यह प्रमाणित करना कि आन्तरिक मनोवैज्ञानिक उपलब्धि और बाह्य व्यवस्था और संगठन के द्वारा एक ऐसा जगत् बनाया जा सकता है जहां मानव दुःख-क्लेश के अधिकतर कारण समाप्त हो जायेंगे।

*

एक मित्र आपके लिए धन इकट्ठा करना चाहता है। वह कहता है कि अगर आप आर्थिक सहायता के लिए लोगों के पास जाने के बारे में कुछ वक्तव्य लिख दें तो उसे बहुत मदद मिलेगी।

मुझे किसी से पैसा लेने के बारे में लिखने की आदत नहीं है। अगर लोग यह अनुभव नहीं करते कि अपना धन भगवान् के काम के लिए दे सकना उनके लिए एक बहुत बड़ा सुअवसर और 'कृपा' है, तो यह उनका दुर्भाग्य है! काम के लिए धन की जरूरत है—धन आकर रहेगा; यह देखना बाकी है कि उसे देने का सौभाग्य किसे मिलेगा।

२४ अप्रैल, १९३८

*

धन मेरा नहीं है, धन आश्रम का है और आश्रम धन उधार नहीं देता। वह किसी पर ऐसा विशेष उपकार भी नहीं कर सकता, और विशेष रूप से

तब जब कि वह आदमी आश्रम के प्रति बहुत वफादार न रहा हो।

२० अप्रैल, १९५१

*

मुझे तुम्हारे पत्र मिल गये हैं और मैंने इस विश्वास के साथ कि तुम अन्तरंग संदेश पाने में समर्थ हो, उनका आन्तरिक रूप से उत्तर दे दिया है।

लेकिन मुझे लगता है कि मैंने तुम्हें जो लिखा था उसमें कुछ और जोड़ने की जरूरत है।

लोगों के पास जाकर धन-राशि इकट्ठा करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। किया यह जा सकता है कि कोई एक आदमी, या कोई वित्तीय संगठन, या कोई धर्मादा ऐसा खोजा जाये जो ऐसी स्थिति में हो जो पूरा आवश्यक धन दे सके और जो इस साहस-कार्य में जाने के लिए, कुछ नया और बहुमूल्य करने के लिए खतरा झेलने को तैयार हो।

ऐसा व्यक्ति या ऐसे लोग मौजूद हैं। प्रश्न केवल दोनों ध्रुवों को मिलाने का है।

*

पचास हजार या एक लाख जैसी छोटी रकम इकट्ठी करने के लिए तुम्हें उनकी सहायता न मांगनी चाहिये। तुम्हें उनके पास गरिमा और अपने उद्देश्य के महत्त्व के भाव के साथ जाना चाहिये। यह कभी न भूलो कि यह कोई सामान्य और उथला काम नहीं है, बल्कि यह आत्मा का काम है और निश्चय ही किया जायेगा। हम इन लोगों से दान नहीं मांग रहे, यह उन लोगों को अपनी अन्तरात्मा के निकट आने का अवसर दिया जा रहा है।

काम शुरू करने से पहले, मुझे बुलाओ, और मैं वहां रहूंगी। मेरा बल हमेशा तुम्हारे साथ है।

१७ दिसम्बर, १९५२

*

तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम्हें जिस चीज के अत्यधिक जड़-भौतिक और बाहरी रूप में ताल-मेल बिठाना होगा वह केवल एक उद्योग या

उद्योगों का एक दल नहीं है, न वह किसी प्रशासन का एक विभाग है और न ही किसी राज्य की सेवा है, बल्कि वह लघु आकार में छोटा-सा जगत् है जिसमें मानव समुदाय की सभी संभावनाएं और साथ ही नयी और अभी तक अज्ञात संभाव्यताएं छिपी हुई हैं और अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा में हैं।

तुम संगठन का एक बीजांकुर पहले से ही तैयार पाओगे जिसमें समन्वय का केन्द्र है "भागवत उपस्थिति" का प्रतीक जो 'विश्व के एकमेव परम स्वामी' का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि यहां सभी कार्य प्रभु को अर्पित हैं, जो सर्व हैं और जिनके अन्दर सब कुछ समाया हुआ है। और सभी कार्य किसी निजी लाभ के लिए नहीं बल्कि प्रेमोपहार के रूप में किये जाते हैं, क्योंकि प्रेम की शक्ति ही एकमात्र शक्ति है जिसे हम सुव्यवस्थित कर सकते हैं; और मैं केवल एक प्रतीक और सन्देशवाहक के रूप में हूं ताकि रास्ता दिखा सकूं और प्रयासों को एक कर सकूं।

व्यावहारिक रूप में, अगर हमारे पास धन की कमी जरा कम होती, तो बहुत-सी कठिनाइयां गायब हो जातीं।

हमें हर खर्च के बारे में सावधान रहना पड़ता है और इस कारण बहुत-सी उपयोगी चीजें नहीं की जातीं।

तो, अगर तुम एक या अधिक ऐसे लोग पा सको जिन्हें इस महान् उद्यम, बल्कि साहसिक कार्य में रस हो—क्योंकि यह एक नये जगत् के निर्माण से जरा भी कम नहीं है—और अगर वे सचमुच आर्थिक दृष्टि से उपहार या उधार द्वारा सहायक हों, तो हम ज्यादा तत्परता और पूर्णता से अपने प्रयत्न में आगे बढ़ सकेंगे।

तो संक्षेप में स्थिति यह है। अगर तुम ज्यादा ब्योरा चाहो, तो वह भी दिया जा सकता है।

*

यह मानना बड़ी भूल है कि मैं केवल कुछ स्वार्थी और कामनाओं से भरे रहने वाले लोगों की मांगों को पूरा करने के लिए कुछ लोगों की निःस्वार्थ गतिविधि को स्वीकार करूंगी। अहंकारपूर्ण लोभ का समय लद गया; प्रत्येक को मितव्यय के प्रयत्न में भाग लेना होगा।

२२ जून, १९४०

*

भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए जहां युद्ध की समाप्ति के बाद भी मुहैया करने और लाने-ले जाने की कठिनाइयां कम नहीं हुई हैं (विशेष रूप से खाद्य पदार्थों की), मैं आश्रमवासियों से यह निवेदन करने के लिए बाधित हूं कि उन्हें किसी भी प्रकार के और विशेषकर खाद्य पदार्थों के अपव्यय से बचने के लिए पूरी तरह सावधान रहना चाहिये। कितने सारे लोगों की जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो रहीं।

१९४५ या १९४६

*

आश्रम में पैसे की कठिनाई हो रही है, फिर भी लोग अपना पूरा-पूरा हिस्सा मांगने पर अड़े रहते हैं; अपने विद्यार्थीकाल में हम लोग बाढ़ या भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए उपवास किया करते थे।

दुर्भाग्यवश (?) वर्तमान कठिनाई न तो बाढ़ के कारण है, न अकाल के कारण; न लड़ाई है, न भूकम्प और न आगजनी। ऐसी कोई चीज नहीं है जो मानवीय भावनाओं को झकझोर दे और कुछ समय के लिए उनकी "आवश्यकता" कहाने वाली भौतिक कामनाओं को दबा दे।

पैसे की कठिनाई साधारणतः आदमी को विद्रोही नहीं तो शुष्क बल्कि कटु भी बना देती है। और मैं ऐसे कुछ लोगों को जानती हूं, जो मेरे पास आवश्यकता के अनुसार पूरा पैसा न होने के कारण अपनी श्रद्धा खोने की सीमा तक पहुंच गये हैं!

*

जब पैसे की कमी हो तो उसके स्थान पर सद्‌भावना और व्यवस्था के असीम प्रयास को लाना चाहिये। मैं उसी प्रयास की मांग कर रही हूं, वह है तमस् और प्रमादपूर्ण उदासीनता पर विजय।

मैं नहीं चाहती कि कोई भी हथियार डाल दे, मैं चाहती हूं कि हर एक अपने-आपसे ऊपर उठ जाये।

*

'क' अब आश्रम के लिए काम नहीं करता; और बहुतों की तरह वह भी रहता तो आश्रम में है और काम अपना करता है।

ठीक यही चीज आश्रम को आर्थिक बरबादी की ओर लिये जा रही है।

*

'क' हमारे पेड़ों से नारियल तोड़ लेता है। इस बार जब वह नारियल लेने आया तो मैंने कह दिया कि उनमें जो बहुत अच्छे हैं उन्हें मैं दर्शकों के लिए और आश्रम के बच्चों के लिए रखूंगा, उन्हें न तोड़े।

आश्रम के लोगों को वह सब मिलता है जिसकी उन्हें सचमुच जरूरत हो। मैं दर्शकों को फल-फूल बांटना पसन्द नहीं करती। यह केवल लोभ और कामना और अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन देना है। और अगर हर एक वही करता जाये जिसे वह सर्वोत्तम समझता है, तो सारी व्यवस्था-प्रणाली अराजकता के कगार पर होगी।

१५ मई, १९५४

*

अगर भगवान् के प्रति सच्चे समर्पण की वृत्ति के साथ व्यापार नहीं किया जा सकता, तो आश्रम में व्यापार बन्द कर दिया जायेगा और उसकी मनाही कर दी जायेगी, जैसे इसी कारण से राजनीति की मनाही है।

तो अगर साधकों की चेतना घपले और तुच्छता की इस दुःखद स्थिति में से निकल न आये, तो मैं अपने लिए यह जरूरी मानूंगी कि सब प्रकार के व्यापारिक धन्धों की मनाही कर दूं क्योंकि तब यह प्रमाणित हो चुकेगा कि उन्हें सच्ची भावना के साथ करना संभव नहीं है।

२७ मई, १९५५

व्यवस्था और कार्य

"(आश्रम के लिए) कभी कोई मानसिक योजना नहीं रही, कोई निश्चित कार्यक्रम या पहले से ठीक की हुई व्यवस्था नहीं रही। सारी चीज जीवित सत्ता की तरह जन्मी, बढ़ी और विकसित हुई है, सारे समय चित्-तपस् ने इसे सहारा दिया, बढ़ाया और मजबूत बनाया है।"

—श्रीअरविन्द (२२ अगस्त, १९३९)

इसका मतलब है कि एकमेव चेतना की गति कभी बन्द नहीं हुई। ऐसा नहीं हुआ कि "सृजन की प्रक्रिया" शुरू की गयी और फिर बन्द हो गयी और फिर से शुरू की गयी—चेतना निरन्तर नूतन जन्म देती रहती है, कह सकते हैं कि वह अपना सृजन जारी रखती है; यह ऐसी चीज नहीं है जो एक बार कर दी गयी और फिर जो किया गया है उसमें से निकलती रहे। वह अपना काम जारी रखती है। चेतना निरन्तर काम में लगी रहती है, जो पहले था उसी को जारी रखने में नहीं, बल्कि उसे करने में जिसे वह हर क्षण देखती है। मानसिक गति में, यह जो पहले हो चुका है उसके परिणामस्वरूप है—ऐसा नहीं है, यहां तो चेतना *निरंतर* देखती है कि क्या करना है। यह समझना बहुत अधिक जरूरी है, क्योंकि वह इसी तरह काम करती रहती है—हर चीज के लिए इसी तरह। यह कोई ऐसी "रचना" नहीं है जिसकी वृद्धि की देखभाल करनी चाहिये : चेतना हर सेकेंड अनुसरण करती है—यह अपनी ही गति का अनुसरण करती है...। यह हर चीज को मौका देती है; यही चमत्कारों को, उल्टाव आदि को मौका देती है; यह हर चीज को मौका देती है। यह मानव सृजनों से एकदम उल्टी चीज है। और यह ऐसी ही रही है, यह अब भी ऐसी ही है और यह हमेशा ऐसी ही रहेगी, जब तक कि मैं यहां हूं।[१]

*

आंकड़े और हिसाब-किताब शुद्ध रूप से मानसिक होते हैं और यहां उच्चतर शक्ति की क्रिया से अन्ततः सभी मानसिक नियमों का खण्डन होता है।

*

[१] ध्वन्यांकित।

मुझे उचित व्यवस्था बहुत प्रिय है—अगर जो लोग व्यवस्था करते हैं वे सचाई से करना चाहें—मैं केवल स्पष्ट और ठीक-ठीक सूचना चाहती हूं। अगर यह सूचना दी जाये और 'व्यवस्था करने वाली शक्ति' में काफी विश्वास हो तो इतना काफी है। बाकी कर दिया जायेगा।

*

(आश्रम के एक विभाग में बुरी व्यवस्था के बारे में)

बुरी व्यवस्था तभी आती है जब विभागाध्यक्ष में उचित *चेतना* का अभाव हो।

किसी संगठन या व्यवस्था को ठीक तरह चलाने के लिए जो करना है उसके लिए स्पष्ट और ठीक-ठीक दृष्टि और उसे करवाने के लिए सुस्थिर, शांत और दृढ़ निश्चय जरूरी हैं। और सामान्य नियम के रूप में, औरों से कभी उन गुणों की मांग न करो जो स्वयं तुम्हारे अन्दर न हों। मुझे काफी जोरों से यह महसूस होता है कि 'क' के विभाग में निरीक्षण वैसा नहीं है जैसा होना चाहिये।

*

(एक साधक दिन में दो घंटे से ज्यादा काम न करना चाहता था। उसके निरीक्षक ने यह बात माताजी को लिखी :)

मैंने उससे कहा कि मैं कोई मांग नहीं कर रहा; मुझसे जितना बन पड़ता है मैं उतना काम करता हूं, क्योंकि मैं अपनी प्यारी माताजी की सेवा के लिए कर रहा हूं। किसी और से उतना ही करने के लिए मैं आग्रह नहीं कर सकता; लेकिन मैं माताजी को सूचना दे रहा हूं कि हम क्या कर रहे हैं।

तुमने बहुत अच्छा उत्तर दिया, लेकिन यह स्पष्ट है कि जिसमें कोई चेतना नहीं है उसे चेतना देना या किसी आलसी के अन्दर उत्साह डालना कठिन है।

३ मई, १९३५

*

मेरे चारों ओर के लोग अब पहले जैसा अच्छा काम नहीं करते।

इसका उपाय? यही कि ठण्डे दिमाग से लो, परवाह किये बिना शांति से काम करते चलो... आशा रखो कि अच्छे दिन आयेंगे...।

*

सभी ओर कार्य और कार्यकर्ताओं में ह्रास दीखता है।

हां, अव्यवस्था व्यापक है। एकमात्र सहायता है *श्रद्धा*।

*

ऐसी बात नहीं है कि आश्रम में बेकार लोगों की कमी है; लेकिन जो काम नहीं कर रहे वे निश्चय ही इसलिए नहीं कर रहे कि वे काम नहीं करना चाहते; और इस रोग की दवाई खोज निकालना बहुत कठिन है—इसे कहते हैं आलस्य...।

*

जब काम का नेतृत्व मानव आवेग कर रहे हों, तो मैं केवल साक्षी के रूप में अलग खड़ी रह सकती हूं। जो कुछ निश्चय होता है मुझे बड़े विनम्र ढंग से उसकी सूचना दी जाती है—मुझसे यह कभी नहीं पूछा जाता कि क्या करना चाहिये।

मैं आज्ञा नहीं दे सकती क्योंकि यदि आज्ञा का उल्लंघन किया जाये, तो उससे स्वभावतः अपने-आप महान् विपत्ति आयेगी।

तो करने के लिए बस यही रह जाता है कि धीरज के साथ आवेगों के ठण्डे पड़ जाने तक प्रतीक्षा की जाये और... आशा की जाये कि अच्छे-से-अच्छा होगा।

शायद कुछ लोग कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता के प्रति जागें।

*

इतनी अधिक परस्पर-विरोधी रायें और भावनाएं हैं कि मेरे लिए आज्ञा देना सम्भव नहीं।

*

अब सभी के लिए कठिन समय है। युद्ध चल रहा है और सभी को कष्ट हो रहा है।

जिन्हें यहां शान्ति और सुरक्षा में रहने का सौभाग्य प्राप्त है उन्हें कम-से-कम तुच्छ झगड़ों और मूर्खतापूर्ण शिकायतों को त्याग कर अपनी कृतज्ञता दिखलानी चाहिये।

हर एक को अपना काम ईमानदारी से और मन लगाकर करना चाहिये, और सभी अंधकारमयी स्वार्थपूर्ण हरकतों पर विजय पानी चाहिये।

२७ सितम्बर, १९३९

*

मैं जानता हूं कि आजकल आश्रम के लिए सहयोग और तालमेल के साथ काम करना जरूरी है; मैं इसके लिए भरसक कोशिश करता हूं पर बुरी तरह असफल रहता हूं। शायद हममें से हर एक की यही कहानी है।

इसे व्यक्तिगत मामले के रूप में न लो। असामंजस्य और अस्तव्यस्तता सारे संसार में फैले हुए हैं, क्योंकि मिथ्यात्व 'सत्य' की क्रिया का प्रतिरोध करता है। चूंकि यहां 'सत्य' की क्रिया अधिक सचेतन और संकेन्द्रित है, इसलिए अधिक क्रुद्ध और उत्तेजित प्रतिरोध होता है। और इस खलबली में अधिकतर लोग संघर्ष में लगी शक्तियों के द्वारा कठपुतलियों की तरह नचाये जाते हैं।

*

रही बात आश्रम की अवस्था की, तो वह वैसी ही है जैसी तुम कहते हो, शायद उससे भी खराब। मैं श्रीअरविन्द की तरह कहूंगी : सचमुच तब तक कुछ नहीं किया जा सकता जब तक *चेतना* न बदले।

तुम बीच में पड़ोगे—और यह उदाहरण और प्रदर्शन के लिए अच्छा

है—पर दूसरे ही दिन बात और भी ज्यादा बिगड़ जायेगी।

हम 'सत्य' को प्रकट होने के लिए भी नहीं बुला सकते। मिथ्यात्व इतनी गहराई में और इतने विस्तार में फैला हुआ है कि उसका परिणाम होगा सम्पूर्ण विनाश। फिर भी, 'कृपा' अनन्त है, वह कोई रास्ता निकाल सकती है।

*

श्रीअरविन्द कहते हैं कि वे हालात को ठीक करने के लिए बाह्य प्रकार के कदम उठाने की जगह यौगिक उपायों द्वारा प्रयत्न करना चाहते हैं; लेकिन इसके लिए जरूरी है कि चीजें अभी जैसी चल रही हैं वैसी ही और कुछ समय तक चलती रहें। उसके लिए तुम्हारा सहयोग जरूरी होगा और उन्हें विश्वास है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रयास करने में वे तुम्हारी सद्भावना पर भरोसा कर सकते हैं।

*

यह बात बिलकुल सच है कि मैं अधिकतर ऐसे काम में व्यस्त रहती हूं जिसे मैं—अभी के लिए—बाहरी व्यवस्था से ज्यादा जरूरी मानती हूं, और इसीलिए मैं आशा करती हूं कि हर एक अपनी अधिकतम क्षमता के साथ अपना कर्तव्य पूरा करेगा और अपनी आंखें भगवान् के कार्य की विशालता पर लगाये रहेगा जो निश्चय ही उसकी निजी कठिनाइयों में भी सहायता देगी।

हर एक के लिए और हर चीज के लिए समय कठिन है—लेकिन निश्चय ही यह हमें अपनी सीमाओं को पार करना सिखाने के लिए है।

*

(कुछ दिनों के लिए ऐसा माना जाता था कि माताजी अपने दैनिक कामों से निवृत्त हो रही हैं)

यह बहुत मजेदार है परन्तु अप्रत्याशित नहीं। जब से मैं "निवृत्त" हुई हूं, तब से ऐसा लगता है कि हर एक परस्पर सम्बन्ध के बिना अपने ही विचारों के अनुसार—मेरे काम में विघ्न न डालने के बहाने—मुझसे पूछे या मुझे सूचना दिये बिना कर रहा है।

यद्यपि अपने तरीकों से मैं प्राय: जान जाती हूं कि क्या हो रहा है, फिर भी मैं बस मुस्कुरा देती हूं और बीच में नहीं पड़ती। हर एक को अनुभव से सीखना होगा।

मैं उस दिन की राह देख रही हूं जब व्यवस्था अव्यवस्था पर विजय पा लेगी और सामंजस्य अस्तव्यस्तता का स्वामी होगा। मैं इस दिशा में किये गये हर प्रयास के पीछे हूं।

*

यह कहने की जरूरत नहीं कि जो लोग, मेरे साथ मिलकर, इस परिस्थिति से लड़ रहे हैं उनके साथ मेरी शक्ति और सहायता तीव्र रूप में हैं। और मैं उनसे जो मांगती हूं वह बस यही है कि वे विश्वस्त रहें और डटे रहें। 'सत्य' की विजय होगी। हिम्मत रखो!

*

मैं किसी व्यक्ति या किसी चीज को दोष नहीं दे रही और मैं जानती हूं कि हर एक भरसक अपना अच्छे-से-अच्छा कर रहा है। यह तो स्पष्ट ही है कि काम बहुत कठिन है। लेकिन क्या हम यहां पर कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए नहीं हैं?

*

भली-भांति आश्रम का काम करने के लिए तुम्हें इतना मजबूत और नमनीय होना चाहिये कि तुम यह जानो कि जो अक्षय 'ऊर्जा' सारे समय तुम सबको सहायता देती रहती है उसका उपयोग कैसे किया जाये।

मैं यहां के हर व्यक्ति से आवश्यकताओं के अनुसार ऊंचा उठने की आशा करती हूं।

अगर हम इतना भी न कर सकें, तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि जब 'सत्य' की 'ज्योति' धरती पर अभिव्यक्त होने के लिए आयेगी तो उसके अवतरण के लिए हम तैयार होंगे?...

*

जब मैं किसी को काम देती हूं तो यह केवल काम के लिए ही नहीं होता बल्कि योग-मार्ग पर प्रगति के लिए सबसे अच्छे निमित्त के रूप में भी होता है। जब मैंने तुम्हें यह काम दिया था, तो मैं तुम्हारी त्रुटियों और कठिनाइयों से भली-भांति परिचित थी, लेकिन साथ ही यह भी जानती थी कि अगर तुम अपने-आपको मेरी सहायता और शक्ति की ओर खोलोगे तो तुम इन कठिनाइयों को पार कर सकोगे और साथ ही अपनी चेतना को बढ़ा सकोगे और अपने-आपको 'भागवत कृपा' की ओर खोल सकोगे।

अब समय आ गया है कि तुम्हें सच्ची प्रगति करनी चाहिये और जब कभी तुम्हारी इच्छा का विरोध हो तो तुम्हें अपने क्रोध के विस्फोटों को रोकना चाहिये। अगर तुम मुझे प्रसन्न करना चाहते हो—और इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं है—तो तुम सचाई से 'क' के साथ सहयोग करने की कोशिश करोगे और उसके साथ मिलकर काम करते रहोगे।

मैं तुम दोनों में से किसी को भी दूसरे का अध्यक्ष नहीं बनाना चाहती—मैं चाहती हूं कि तुम दोनों भाई-भाई की तरह, एक ही मां के बच्चों की तरह अनुभव करो और उसके प्रेम के लिए सचाई और साहस के साथ काम करो।

मैं आशा करती हूं कि तुम इससे सहमत होगे और मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि इस प्रयास में मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे।

१९ जनवरी, १९४५

*

मैंने 'क' से जो कहा था वह ठीक-ठीक यह है : "मैं तुम्हें इस काम की जिम्मेदारी देती हूं, इसकी व्यवस्था और इसे चलाने की जिम्मेदारी। योजना और नक्शे स्वीकृति के लिए मुझे दिखाने होंगे। क्रियान्वित करने के लिए, मैं 'ख' से कहूंगी जिसके उत्साह की मैं सराहना करती हूं, यह दृष्टि में रखते हुए कि यह मेरा और श्रीअरविन्द का काम है, वह तुम्हारे साथ, तुम्हारे आदेश के अनुसार काम करे और तुम्हें पूरा सहयोग दे, और इसे सफल करने के लिए भरसक काम करे।"

और तुमसे मैं कहती हूं :

काम शुरू कर दो और पूरी-पूरी व्यवस्था करो।

जब तक कुछ काम न हो जाये और हर एक अपने काम के द्वारा यह प्रमाणित न कर दे कि वह क्या करने के योग्य है, मेरा किसी को कोई पद या प्रतिष्ठा देने का इरादा नहीं है।

मैं कार्यकर्ताओं का मूल्यांकन उनके कार्य की कुशलता और गुणवत्ता के अनुसार करूंगी।

और उसके बाद ही पदवियां दी जा सकती हैं।

यह कभी न भूलो कि यहां हम अहं की तुष्टि के लिए नहीं, *कार्य की पूर्णता के* लिए प्रयास कर रहे हैं।

*

मैं साधकों को पद नहीं देती—मैं उन्हें काम देती हूं; और मैं सभी को समान अवसर देती हूं। जो सबसे अधिक योग्य, सबसे अधिक सच्चे, ईमानदार और वफादार साबित होते हैं उन्हें अधिक-से-अधिक काम और अधिक-से-अधिक जिम्मेदारी मिलती है।

बाहरी परिस्थितियां चाहे जो भी हों, वे हमेशा, बिना अपवाद के, तुम्हारे अन्दर जो कुछ है उसका बहिर्-प्रक्षेपण होता है। जब अपने काम में तुम्हें कोई चीज बाहर से तकलीफ देती हुई मालूम हो, तो अपने अन्दर देखो और वहां, अपने अन्दर तुम उसके अनुरूप तकलीफ पाओगे।

अपने-आपको बदलो और परिस्थितियां बदल जायेंगी।

२६ जून, १९५४

*

मैं खुश हूं कि अनुभव के द्वारा तुम इस तथ्य से अवगत हो गये हो कि मैं तुम्हारे साथ हूं।

यह हमारे बीच सच्चा सम्बन्ध है, सतही सम्पर्क की अपेक्षा कहीं अधिक।

१) यहां, आश्रम में, हमारा लक्ष्य सामान्य मानवीय रूढ़िवादिताओं का अनुसरण करना नहीं, बल्कि एक उच्चतर 'सत्य' को अभिव्यक्त करना है।

मैं इन सरकारी प्रलेखों या कागजों को कोई अनावश्यक महत्त्व नहीं देती। वे केवल जगत् की वर्तमान परिस्थिति में आवश्यक हैं, किसी गहरी

वास्तविकता के साथ मेल नहीं खाते।

२) जीवन की वास्तविकता में मनुष्य की शक्ति उसकी सरकारी उपाधियों पर नहीं, उसकी आन्तरिक चेतना के प्रकाश और उसकी शक्ति पर निर्भर होती है।

*

मैंने तुम्हारे पत्र पढ़ लिये हैं और तुम्हें अपनी काम करने की क्षमता पर जो विश्वास है उससे मैं सन्तुष्ट हूं। यह सच है कि तुम्हारे अन्दर क्षमता है, लेकिन तुम स्वीकार करोगे कि क्षमता होने और ज्ञान होने में फर्क है; और किसी काम का ज्ञान पाने के लिए उसे सीखना पड़ता है।

इसलिए तुम्हें पहले उन लोगों से सीखना चाहिये जो उसे जानते हैं और सीखने का सबसे अच्छा तरीका है उन्हें करते हुए देखना। जब तुम जान लोगे और काम करने में अपनी दक्षता, स्थिरता और वफादारी प्रमाणित कर दोगे, तब मैं तुम्हें पूरी जिम्मेदारी सौंप दूंगी और काम का पूरा प्रबन्ध तुम्हारे हाथों में होगा।

*

ईमानदार लोग हैं लेकिन उनमें काम करने की क्षमता नहीं है। क्षमतावाले लोग हैं परन्तु वे काम में ईमानदार नहीं हैं। जब मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जो ईमानदार भी हो और योग्य भी तो वह बहुत अमूल्य हो उठता है।

८ अगस्त, १९५५

*

यहां हर काम जगत् की किसी चीज का प्रतिनिधित्व करता है। जब यहां कोई नया काम शुरू किया जाता है तो संसार की नयी समस्याएं आ जाती हैं। इसीलिए मैं नयी समस्याओं को निमंत्रण नहीं देती, लेकिन वे आ जायें तो मैं उनसे कतराती भी नहीं। मुझे उच्चतम चेतना को नीचे लाना है; इसके लिए मुझे नीचे व्यवस्था करनी है और सभी समस्याओं का सामना करना है।

१७ अगस्त, १९५५

*

पहले मैं हर चीज पर नियंत्रण रखा करती थी। पहले से मुझे बताये और मेरी स्वीकृति के बिना कुछ भी न किया जा सकता था। उसके बाद मैंने काम का एक और ही तरीका अपनाया। मैंने सभी ब्योरों से हाथ खींच लिया और अपने-आपको दूरी पर रखा, मानों चीजों को ऊपर से देख रही थी और हर कार्यकर्ता के पास उसके अपने क्षेत्र के लिए ठीक-ठीक प्रेरणा भेजती थी।

कार्यकर्ता के आध्यात्मिक विकास के लिए यह परिवर्तन जरूरी था। उसे मेरे प्रभाव के बारे में आन्तरिक रूप में अवगत होना चाहिये। वह इसे तभी पा सकता है जब सभी कार्यकर्ता सहयोग दें। सहयोग के बिना उचित प्रेरणा प्रभावकारी न होगी। ऊपर की क्रिया का दायरा बहुत बड़ा होता है : उसमें सभी विभाग समा जाते हैं और वह सामंजस्यपूर्ण समग्रता है। अगर कार्यक्षेत्र में दीवारें खड़ी की जायें जो उसे तोड़ती और विभाजित करती हैं तो काम कभी आध्यात्मिक 'संकल्प' के अनुसार नहीं हो सकता।

तो यह बात मन में रखो : सहयोग नहीं, तो उचित कार्य भी नहीं।

१ दिसम्बर, १९५७

*

"पद" का कोई प्रश्न ही नहीं है—और न ही प्रतिष्ठा का। 'क' को रंगमंच का बहुत ज्ञान और अनुभव है जो हमें नहीं है। वह उसे हमारे साथ बांटने को तैयार है। समझदारी की बात बस यही है कि हम उससे जितना बन पड़े सीखें और उसके लिए कृतज्ञ हों।

और फिर, यह कभी न भूलो कि हम यहां भगवान् के लिए काम कर रहे हैं, किसी अहंकारमय भाव को दखल देकर काम बिगाड़ने नहीं दिया जा सकता।

सदा तुम्हारे साथ।

५ नवम्बर, १९५८

*

मेरे प्रिय बालक,

मेरे कहने से, 'क' तुमसे मिलने आयेगा ताकि तुम्हारे विभाग में अपने काम की व्यवस्था करे।

मैं तुमसे बहुत प्रेम के साथ उसका स्वागत करने के लिए कहती हूं, क्योंकि जैसे तुम मेरे बालक हो उसी तरह वह भी मेरा बालक है। उसे कुछ रोचक काम करने का अवसर दो जिसमें क्षमताओं का अच्छा उपयोग हो।

मैं चाहूंगी कि वह निश्चिंत अनुभव करे और यह अनुभव करे कि वह वहां *मेरा* काम करने के लिए है।

मेरे आशीर्वाद।

२ अक्तूबर, १९६२

*

अनुशासन के बिना कोई समुचित काम संभव नहीं है।

अनुशासन के बिना समुचित जीवन संभव नहीं है।

और सबसे बढ़कर, अनुशासन के बिना कोई साधना नहीं है।

अनिवार्य रूप से हर विभाग का एक अनुशासन होता है और तुम्हें अपने विभाग के अनुशासन का पालन करना चाहिये।

वैयक्तिक भावनाओं, मनमुटावों और गलतफहमियों को तुम्हारे काम में कभी दखल न देना चाहिये। यह काम मानव हितों के लिए नहीं, भगवान् की सेवा के रूप में किया जाता है।

भगवान् के लिए तुम्हारी सेवा एक धर्मभीरु की सेवा की तरह ईमानदार, अनासक्त और निःस्वार्थ होनी चाहिये, अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं।

२५ जनवरी, १९६५

*

यहां कोई भी सर्वेसर्वा रूप से अध्यक्ष नहीं हो सकता—हर एक को सहयोग करना सीखना चाहिये। यह दंभ, अहंकार और निजी महत्त्व के अत्यधिक अभिमान के लिए बहुत अच्छा अनुशासन है।

१७ फरवरी, १९६८

*

आश्रम में, काम में लापरवाही विश्वासघात है।

१५ मार्च, १९६९

*

मानव जीवन में सभी कठिनाइयों, सभी विसंगतियों, सभी नैतिक कष्टों का कारण है हर एक के अन्दर अहंकार की अपनी कामनाओं, अपनी पसंदों और नापसंदों की उपस्थिति। किसी निष्काम कार्य में भी, जो दूसरों की सहायता के लिए होता है, उसमें भी जब तक तुम अहंकार और उसकी मांगों पर विजय पाना न सीख लो, जब तक तुम उसे एक कोने में चुपचाप और शांत रहने के लिए बाधित न कर सको, अहंकार हर उस चीज के विरुद्ध क्रिया करता है जो उसे पसंद न हो, एक आन्तरिक तूफान खड़ा करता है जो सतह पर उठ जाता है और सारा काम बिगाड़ देता है।

अहंकार पर विजय पाने का यह काम लम्बा, धीमा और कठिन है; यह सतत सतर्क रहने की और अविच्छिन्न प्रयास की मांग करता है। यह प्रयास कुछ लोगों के लिए ज्यादा आसान और कुछ के लिए ज्यादा कठिन होता है।

हम यहां आश्रम में श्रीअरविन्द के ज्ञान और उनकी शक्ति की सहायता से आपस में मिलकर एक ऐसे समाज का निर्माण करने के प्रयास में हैं जो अधिक सामंजस्यपूर्ण, अधिक ऐक्यपूर्ण, और परिणामत: जीवन में अधिक प्रभावकारी और समर्थ हो।

जब तक मैं भौतिक रूप से तुम सबके बीच उपस्थित रहती थी, मेरी उपस्थिति अहंकार पर प्रभुत्व पाने में तुम्हारी सहायता करती थी, अत: मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से तुमसे बहुधा इस विषय में कुछ कहना जरूरी न था।

लेकिन अब इस प्रयास को हर व्यक्ति के जीवन का आधार बनना चाहिये। विशेषकर उनके जीवन का जो जिम्मेदार स्थिति में हैं और जिन्हें औरों की देखभाल करनी होती है। नेताओं को हमेशा उदाहरण सामने रखना चाहिये, नेताओं को हमेशा उन गुणों का अभ्यास करना चाहिये जिनकी वे उन लोगों से मांग करते हैं जो उनकी देख-रेख में हैं; उन्हें समझदार, धीर, सहनशील, सहानुभूति, ऊष्मा और मैत्री से पूर्ण सद्भावना से भरा होना चाहिये। ये चीजें अहंकार के कारण या अपने लिए मित्र बटोरने के लिए नहीं, अपितु उदारता के कारण होनी चाहियें ताकि वे औरों को समझ सकें और उनकी सहायता कर सकें।

सच्चा नेता होने के लिए अपने-आपको, अपनी चाह और पसंद को भूल जाना अनिवार्य है।

यही चीज है जिसकी मैं अब तुमसे मांग कर रही हूं, ताकि तुम अपनी जिम्मेदारियों का उस तरह सामना कर सको जैसे करना चाहिये। और तब तुम देखोगे कि जहां तुम अनबन और फूट देखा करते थे, वे गायब हो गयी हैं, और उनकी जगह सामंजस्य, शांति और आनन्द ने ले ली है।

तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे प्रेम करती हूं और तुम्हें सहारा देने, सहायता देने और रास्ता दिखाने के लिए सदा तुम्हारे साथ हूं।

आशीर्वाद।

२६ अगस्त, १९६९

*

ऐसा लगता है कि तुम यह भूल रहे हो कि आश्रम में रहने भर से ही, तुम न तो अपने लिए और न अपने अध्यक्ष के लिए काम कर रहे हो, बल्कि भगवान् के लिए कर रहे हो। तुम्हारा जीवन पूरी तरह से 'भगवान् के कार्य' को समर्पित होना चाहिये। उस पर तुच्छ मानव-विचारों का शासन नहीं हो सकता।

२८ मई, १९७०

*

यहां जो कुछ भी किया जाये, वह पूर्ण सहयोग की भावना से और अपनी दृष्टि के आगे एक ही लक्ष्य रखकर करना चाहिये—और वह लक्ष्य है भगवान् की सेवा।

*

अनिवार्य रूप से सामुदायिक या सामाजिक जीवन में अनुशासन होना चाहिये ताकि मजबूत वर्ग कमजोर वर्ग के साथ दुर्व्यवहार न करे; और जो भी उस समुदाय या समाज में रहना चाहते हों उन सबको इस अनुशासन का पालन करना चाहिये।

लेकिन समाज के सुखी होने के लिए यह जरूरी है कि यह अनुशासन किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा या ऐसे लोगों के द्वारा निर्धारित किया जाये

जिसमें या जिनमें मन की अत्यधिक विशालता हो और, अगर संभव हो तो, ऐसे व्यक्ति या लोगों द्वारा किया जाये जो 'भागवत उपस्थिति' के बारे में सचेतन हों और उसे ही समर्पित हों।

धरती के सुखी होने के लिए जरूरी है कि शक्ति केवल ऐसे लोगों के हाथ में हो जो 'भागवत इच्छा' के बारे में सचेतन हों। लेकिन अभी तो यह असंभव है क्योंकि ऐसे लोगों की संख्या लगभग नगण्य है जो 'भागवत इच्छा' के बारे में सचमुच सचेतन हैं और जिनमें अनिवार्य रूप से कोई महत्त्वाकांक्षा भी नहीं होती।

सच बात तो यह है कि जब इस उपलब्धि का समय आयेगा, तो यह बिलकुल स्वाभाविक रूप से हो जायेगा।

हर एक का कर्तव्य है कि अपने-आपको उसके लिए यथासंभव पूरी तरह से तैयार करे।

१८ फरवरी, १९७२

*

मैं इस बात से सहमत हूं कि मुख्य द्वार की अवस्था दुःखद है। लेकिन आदेश देना कठिन है क्योंकि सब तरह की ब्योरे की चीजें लिखनी होंगी।

*

द्वारपालों और 'लाइब्रेरी हाऊस' में रहने वालों के नाम

मैंने बार-बार कहा है कि "सूप का बरामदा" बिलकुल साफ-सुथरा रखना चाहिये, वहां व्यक्तिगत चीजें (जैसे, प्याले, गिलास, बोतलें, चप्पल, खड़ाऊं, आदि) बिखरी न रहनी चाहियें। आश्रम के फाटक में से आनेवाले दर्शकों के लिए यह बहुत ही अशोभन दृश्य होता है।

मैं आशा करती हूं कि मुझे यह बात फिर से न दोहरानी पड़ेगी और इस आदेश का पालन कर्तव्य-निष्ठा के साथ किया जायेगा।

६ जून, १९३२

*

द्वारपाल का कार्य

माताजी द्वारपाल के काम को बहुत महत्त्वपूर्ण और बहुत जिम्मेदारी-भरा मानती है। यह काम सावधानी और जागरूकता के साथ करना चाहिये।

दर्शकों और पूछ-ताछ करने वालों और काम के लिए आने वालों का उचित शिष्टता के साथ स्वागत होना चाहिये, जरूरत हो तो उन्हें कुर्सी देनी चाहिये, आवश्यक सूचना और संभव सहायता देनी चाहिये। लोगों में कोई भेद-भाव न करना चाहिये।

किसी असामान्य पूछ-ताछ के लिए, सचिव के पास जाना चाहिये।

यह द्वारपाल के अधिकार में होगा कि फाटक के आस-पास मंडराने वाले या भीड़ करने वाले लोगों से जगह छोड़ जाने के लिए निवेदन करे। उसे भी अन्य आश्रमवासियों के साथ लंबी बातचीत में न लगना चाहिये, लिखने-पढ़ने में या अपने कर्तव्य पर केन्द्रित होने के सिवा किसी और चीज में मग्न न होना चाहिये।

बिना स्वीकृति के किसी अनधिकृत व्यक्ति को आश्रम के प्रांगण में न जाने देना चाहिये।

आशा यह की जाती है कि नौकर फिल्टर को हाथ न लगायेंगे। उन्हें 'साइकिल हाऊस' से पानी लेना चाहिये। जरूरत हो तो आश्रमवासी उन्हें अपने साथ ला सकते हैं।

फाटक के आस-पास की जगह स्वच्छ और शांत रखनी चाहिये।

फाटक, उन लोगों को छोड़कर जो इस काम के लिए नियुक्त हैं, औरों पर न छोड़ना चाहिये।†

२५ सितम्बर, १९५२

*

माताजी चाहती हैं कि जो लोग दर्शकों के स्वागत के लिए जिम्मेदार हैं वे उनके प्रति आचरण में बहुत सौम्य और शिष्ट रहें। आने वाले अमीर-गरीब, बूढ़े-जवान, अच्छे कपड़ों में सजे या फटेहाल, कैसे भी क्यों न हों, सबका सद्व्यवहार और भद्रता के साथ स्वागत करना चाहिये। यह जरूरी नहीं है कि आश्रम में अच्छे कपड़ोंवाले ज्यादा अच्छे स्वागत के योग्य हों। ऐसा न होना चाहिये कि भिखारी-से दीखने वाले सामान्य आदमी की अपेक्षा

मोटरवाले की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाये। हमें यह न भूलना चाहिये कि वे भी उतने ही मानव हैं जितने हम और हमें यह मानने का कोई अधिकार नहीं है कि हम सोपान के शिखर पर हैं।

और हमारी शिष्टता केवल एक बाह्य शिष्टाचार या यूं कहें, रूखा शिष्टाचार न हो। वह अन्दर से आने वाली चीज हो। चाहे कैसी भी कठिनाइयां हों, चाहे जैसी परिस्थितियां हों—माताजी पूरी बारीकी में सब परिस्थितियों को जानती हैं और जानती हैं कि हम कब अपने काम में झल्ला पड़ते हैं और खीज उठते हैं, यह अच्छी तरह जानते हुए वे कहती हैं—चाहे कैसी भी परिस्थितियां हों, अभद्र और रूखे व्यवहार की कभी इजाजत नहीं दी जा सकती।

हमारे मार्ग में कठिनाइयां हैं, परंतु माताजी कहती हैं कि यह नियम समझ लो कि वे कठिनाइयां और तकलीफें हमेशा ऐसी होती हैं जिन्हें पार करने की क्षमता हमारे अंदर जरूर होती है। अगर हम अपनी सर्वोत्तम स्थिति में रहें तो हम हमेशा आपे से बाहर हुए बिना अपनी कठिनाइयों को सुलझा सकेंगे। याद रखो, जब-जब हम अपने काबू से बाहर हो जाते हैं, जब-जब हम क्रुद्ध होते या अनुशासन रखने के लिए बाहरी साधनों का उपयोग करने के लिए बाधित होते हैं, तो उसका मतलब यह होता है कि उस समय हम नीचे लुढ़क गये और मौके पर खरे न उतर सके। हर चीज में, हर तरह से, निष्कर्ष यही निकलता है—हमेशा प्रगति करने के लिए कोशिश करो, अपना सच्चा स्व बनने की कोशिश करो। भले तुम आज न कर सको पर तुम्हें कल वह कर सकने योग्य होना चाहिये। लेकिन प्रयास पूरा होना चाहिये। यह कभी न भूलो कि तुम आश्रम का प्रतिनिधित्व कर रहे हो। लोग तुम्हारे व्यवहार को देखकर आश्रम के बारे में अपनी धारणा बनायेंगे। अगर तुम्हें "ना" भी करनी हो, अगर किसी की बात अस्वीकार भी करनी हो, तो यह भी पूरे शिष्टाचार और भद्रता के साथ कर सकते हो। हर एक की मदद करने की कोशिश करो। अगर और लोग तुम्हारे साथ असभ्य व्यवहार करें, तो भी यह कोई कारण नहीं है कि तुम भी वैसा ही करो। अगर तुम भी वैसा ही व्यवहार करो जैसा बाहरवाले करते हैं, तो फिर तुम्हारे यहां होने का लाभ ही क्या है।†

९ मई, १९५७

वैतनिक कर्मचारी

जो लोग अपनी आजीविका के लिए तुम पर निर्भर हैं उनके साथ तुम्हें बहुत शिष्ट होना चाहिये। अगर तुम उनके साथ बुरा व्यवहार करो, तो उन्हें बहुत खटकता है परंतु नौकरी छूट जाने के भय से वे तुम्हारे मुंह पर जवाब नहीं दे सकते।

अपने से बड़ों के साथ रूखे होने में कुछ शान हो सकती है, परंतु जो तुम पर आश्रित हैं, उनके साथ तो बहुत शिष्ट होने में ही सच्चा बड़प्पन है।

२३ जून, १९३२

*

मोची तनख्वाह बढ़वाना चाहता है। वह चाहता है कि मैं उसकी ओर से आपसे ८ की जगह १० रुपये कर देने के लिए प्रार्थना करूं, क्योंकि उसे तीन के परिवार का पेट पालना होता है।

परिवार के बारे में मुझे जरा भी दिलचस्पी नहीं है। वेतन कर्मचारी के काम पर, उसकी योग्यता पर और उसके नियमित होने पर निर्भर होना चाहिये, जिनके पेट भरने हैं उनकी संख्या पर नहीं। क्योंकि अगर हम इन परिस्थितियों पर विचार करें, तो यह बैतनिक काम न होकर दान हो जायेगा और जैसा कि मैं कई बार कह चुकी हूं, हम कोई सहायता-समिति नहीं हैं। सामान्य नियम के अनुसार मैंने इस वर्ष कर्मचारियों और नौकरों के वेतन नहीं बढ़ाये हैं, लेकिन अगर यह लड़का बहुत अच्छा काम करता है और तुम उसके व्यवहार से संतुष्ट हो, तो मैं उसे शुरू के लिए ८ की जगह ९ रुपये दे सकती हूं।

३० अगस्त, १९३२

*

जब कर्मचारी अपने बिल्ले लेने आयें तो उन्हें व्यर्थ में मत रोको।

दिन-भर काम करने के बाद उन्हें आराम करने के लिए घर जाने की जरूरत होती है।

४ फरवरी, १९३३

*

नौकर कैदी नहीं है, उसे कुछ आजादी और हिलने-डुलने की छूट होनी चाहिये।

*

मुझे विश्वास है कि नौकर वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा उनसे व्यवहार किया जाता है।

१० मार्च, १९३५

*

नौकरों को हमेशा डांटते रहना बहुत बुरा है—तुम जितना कम डांटो उतना ही अच्छा है। जब 'क' तुमसे उन्हें डांटने के लिए कहे तो तुम इन्कार कर दो और उससे कह दो कि मैंने ऐसा करने से मना किया है।

रही बात तुम्हारे साथी-कार्यकर्ताओं की, हर एक को अपनी भावनाओं के अनुसार काम करने की छूट होनी चाहिये।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

१६ मई, १९४०

*

अगर तुम्हें विश्वास है कि नौकर चोरी कर रहे हैं तो यह प्रमाणित करता है कि उन पर ठीक निगरानी नहीं रखी जा रही और तुम्हें अधिक सावधानी के साथ नजर रखनी होगी।

१९ जुलाई, १९४०

*

मैं मजदूरों की संख्या के बारे में अपना दृष्टिकोण तुम्हें पहले ही बता चुकी हूं। वे जितने ज्यादा हों, उतना ही कम काम करते हैं। मैं तरकारियों के लिए १४ आदमियों की बात को स्वीकार नहीं करती। कम लोगों के साथ काम किया जा सकता है और अच्छी तरह किया जा सकता है।

१ नवम्बर, १९४३

*

मेरे प्रिय बालक,

'क' ने तुम्हें 'ख' के बारे में मेरा फैसला बतला दिया होगा। तुम्हारी "आपत्ति" के बावजूद, मुझे यह करना पड़ा, क्योंकि इस आदमी ने बस आश्रम के किसी और विभाग में काम मांगा था; उसने न तो धमकी दी और न अधिक वेतन मांगा। वह अच्छा कार्यकर्ता है और उसे खो देना खेदजनक होता। अगर तुम इस मामले में अपनी पहली अहंकारमयी प्रतिक्रिया से निकल आओ तो इस बात को आसानी से समझ सकोगे; और निश्चय ही तुम "अपमानित" होने के भाव को नहीं स्वीकार कर सकते, जो बिलकुल अयौगिक है।

मैं आशा करती हूं कि यह पढ़ने के बाद तुम शांत हो जाओगे और इस छोटी-सी महत्त्वहीन घटना को अधिक सच्चे परिप्रेक्ष्य में देख सकोगे।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद-सहित।

१३ अक्तूबर, १९४४

*

तुम उसे १० आने की दर पर दैनिक मजदूर रख सकते हो, लेकिन मैं ओवरटाइम की मजदूरी देने से इन्कार करती हूं; तुम्हें देखना होगा कि वह समय पर काम पूरा कर ले। हमारा हमेशा का अनुभव है कि जब मजदूरों को ओवरटाइम का पैसा दिया जाता है तो वे काम के समय में प्रायः कुछ नहीं करते और इस तरह बहुत अधिक दर पर नियमित रूप से ओवरटाइम का पैसा निकाल लेते हैं।

१ फरवरी, १९४५

*

सारे संसार में तोड़-फोड़ मचाने वाली दुःखद घटनाओं के कारण, कई वर्षों के अन्तराल के बाद आज हम फिर से नये वर्ष के दिन कपड़ा बांटने की प्रथा को शुरू कर रहे हैं।

दुर्भाग्यवश, परिस्थितियां अब भी बहुत कठिन हैं, लड़ाई के दिनों से कुछ ज्यादा ही खराब, इसलिए मैं जो करना चाहती थी नहीं कर पाती। मैं बस यही कपड़े पा सकी जो आज बांटे जायेंगे, और इन्हें पाना भी बहुत

कठिन था। मैं बस इतना और कहूंगी कि मैं आशा करती हूं कि अगले साल यह ज्यादा अच्छा होगा।

१ जनवरी, १९४६

*

श्रीअरविन्द आश्रम के कर्मचारियों के नाम घोषणा

मेरी इच्छा है कि साधारण मालिक और नौकर की जगह मेरे और कर्मचारियों के बीच जो विशेष सम्बन्ध है वह मैं कर्मचारियों को समझाऊं। मेरी यह भी इच्छा है कि इस विशेष सम्बन्ध को समझकर कर्मचारी हमेशा इस समझ को अपने सभी विचारों में और मेरे सामने अपनी सम्मिलित मांगें रखते समय अपने ध्यान में रख सकें।

यह विशेष सम्बन्ध इस प्रकार है :

(क) जैसा कि तुम भली-भांति जानते हो, आश्रम में काम मुनाफे के लिए नहीं किया जाता। इसलिए युद्ध के दिनों में जब चीजें सभी के लिए ज्यादा महंगी और कठिन हो गयीं, तो मेरे लिए भी ऐसा ही हुआ। इन्हीं परिस्थितियों के कारण मेरी आय भी नहीं बढ़ी। औद्योगिक और व्यापारिक संस्थाओं ने अधिक मुनाफा कमाया, इसलिए वे आसानी से वेतन बढ़ा सके, लेकिन यहां आश्रम में केवल खर्चे ही बढ़ते गये। इसके बावजूद, कर्मचारियों की कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए मैंने वेतन बढ़ाये और महंगाई-भत्ते भी दिये।

(ख) ऐसे समय आये हैं जब कुछ कर्मचारियों के लिए कोई काम न था, लेकिन मैंने व्यापारिक संस्थाओं की तरह कभी कर्मचारियों को बरखास्त नहीं किया बल्कि हमेशा उनके करने के लिए कोई और काम ढूंढ़ने की कोशिश करती रही। मेरी हमेशा यह नीति रही है कि जिन लोगों ने वफादारी के साथ काम किया है, उन्हें काम न होने के कारण, निकाला न जाये। मैं आसानी से ऐसा कर सकती थी और आश्रम के लिए कोई विशेष कठिनाई पैदा किये बिना सब काम बंद कर सकती थी। ऐसा करने से मैं व्यापक दरिद्रता को और भी बढ़ा देती जो वैसे ही इतनी अधिक है, और मैं यह नहीं करना चाहती थी।

(ग) काफी संख्या में ऐसे कर्मचारी हैं जिन्होंने पिछले बहुत वर्षों से भक्ति और निष्ठा के साथ मेरी सेवा की है, जो मुझे मालिक के अतिरिक्त अपने और अपने परिवार के रक्षक के रूप में भी देखते रहे हैं।

(घ) सब मिलाकर अभी तक आश्रम के कर्मचारी मुझे अपना मुखिया मान कर एक परिवार के सदस्यों के रूप में काम करते आये हैं, और इस विशेष सम्बन्ध ने उनमें से बहुतों को निश्चय ही लाभ पहुंचाया है। मैं इस सम्बन्ध को बनाये रखना चाहूंगी और कर्मचारियों के साथ अपने व्यवहार में मैं इसे ही आधार बनाऊंगी।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रस्ताव है कि आश्रम-कर्मचारी अपना एक अलग संघ बनायें, क्योंकि जैसा कहा गया है, मालिक के साथ सम्बन्ध में उनकी एक अलग ही स्थिति है। यह संघ कर्मचारियों की सार्वजनिक संस्था के साथ सम्बद्ध हो सकता है, लेकिन यह अपनी निजी कार्य और व्यवहार-प्रणाली रखेगा।

यह भी प्रस्तावित किया जाता है कि आश्रम-कर्मचारियों का यह संघ एक समिति को चुनेगा जो कर्मचारियों की राय की विभिन्न अर्थच्छटाओं का प्रतिनिधित्व करे। यह समिति कर्मचारियों द्वारा पेश की गयी मांगों को लेकर उन पर विचार करेगी और इन पर सोच-विचार करके वह ऐसे निश्चय पर पहुंचेगी जिसे वह उचित और न्यायसंगत समझे, फिर वह कार्रवाई के लिए अपने सभापति के द्वारा मेरे पास भेजेगी। इस प्रकार की सभी प्रार्थनाओं को मैं सद्भावना और सहानुभूति के साथ लूंगी और मांगों के औचित्य के अनुसार अच्छे-से-अच्छे के लिए कार्य करूंगी।

द्वंद्व और संघर्ष और दारिद्र्य और कष्ट के इस काल में जो भी मेरे अधीन, मेरे साथ काम करना चाहते हैं, उन सबको मैं प्रत्युत्तर में सहानुभूति, सफल और हितकारी सहयोग की संभावना भेंट करती हूं।

५ मार्च, १९४६

*

मैंने २१ अप्रैल, १९५२ को कर्मचारियों से जो कहा :

तुम्हारा यहां इकट्ठा होना और व्यर्थ में इतना कष्ट उठाना अनावश्यक था। लेकिन अब तुम आ गये हो तो मुझे तुमसे कुछ बातें कहनी हैं।

पहली बात, तुमने अपने कपड़ों के लिए मांग की है। मैंने कभी नहीं कहा कि ये तुम्हें नहीं मिलेंगे। लेकिन उन्हें पाना मुश्किल है और इसमें समय लगता है। अब वे रास्ते में हैं और जब आ जायेंगे तो तुम्हें सूचना दे दी जायेगी।

तुम्हारे वेतन बढ़ाने के बारे में, मैं पहले ही तुम्हें उत्तर दे चुकी हूं, और अब फिर दोहराती हूं, मैं अपने वर्तमान साधनों से अधिक खर्च कर चुकी हूं और अब मैं किसी भी तरह खर्च नहीं बढ़ा सकती। तो अगर मैं तुममें से कुछ का वेतन बढ़ाऊं तो मुझे कुछ अन्य लोगों को, हिसाब की क्षतिपूर्ति के लिए निकालना पड़ेगा। देखें, तुम्हारे व्यक्तिगत अहं में ज्यादा बल है या सामुदायिक अहं में? क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथी कर्मचारियों को कम करके तुम्हारे वेतन बढ़ाये जायें?

तुम्हें शिकायत है कि तुम दुर्दशा में रहते हो; और मैं तुमसे कहूंगी कि तुम दुर्दशा में इसलिए हो क्योंकि तुम अपना पैसा पीने में, सिगरेट फूंकने में और अपनी शक्ति अतिशय सेक्स में बरबाद करते हो। ये सब चीजें— शराब, तमाकू और सेक्स की अति—तुम्हारे स्वास्थ्य को बरबाद करती हैं।

धन सुख नहीं लाता। जिस संन्यासी के पास कुछ नहीं होता और जो सामान्यतः दिन में एक बार ही खाता है वह अगर सच्चा हो तो पूरी तरह सुखी रहता है। जब कि अगर किसी अमीर आदमी ने सब प्रकार की अतियों और अतिशय भोग-विलास के कारण अपना स्वास्थ्य बरबाद कर लिया हो तो वह पूरी तरह से दुःखी हो सकता है।

मैं फिर से कहती हूं, धन मनुष्य को सुखी नहीं बनाता, बल्कि आन्तरिक ऊर्जा का संतुलन, अच्छा स्वास्थ्य और अच्छे भाव सुखी बनाते हैं। पीना बंद कर दो, तमाकू पीना और अति भोग बंद कर दो, तुम घृणा करना और ईर्ष्या करना बंद कर दो, तब तुम अपने भाग्य को लेकर झींखते रहना बंद कर दोगे, तुम्हें यह न लगेगा कि जगत् दुःख से भरा है।

अप्रैल, १९५२

श्रीअरविन्द आश्रम के कर्मचारियों के नाम

मैं तुम्हारे लिए जो करना चाहती हूं।

मैं तुमसे यह कहूंगी कि मैं तुम्हारी, व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों समस्याओं के समाधान को किस दृष्टि से देखती हूं और हमारे परस्पर-सम्बन्ध का सत्य क्या है।

लेकिन जो कार्यक्रम मैं तुम्हारे सामने रखने जा रही हूं उसके कार्यान्वयन के लिए दो मौलिक शर्तें आवश्यक हैं। पहली, अपनी योजना के निष्पादन के लिए मेरे पास आर्थिक साधन होने चाहियें; दूसरी, अपने कार्य और मेरे प्रति अपने मनोभाव में तुम्हें न्यूनतम सचाई, ईमानदारी और सद्भावना दिखानी चाहिये। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि तुम्हें मुझे छलने की कोशिश करने की आदत है। खराब सलाहकारों ने तुम्हें यह सिखलाया है कि अपने मालिक के साथ सम्बन्ध में करने लायक यही सबसे अच्छी चीज है। तुम्हारी ओर से यह वृत्ति तभी न्यायसंगत हो सकती है जब मालिक स्वयं तुम्हें छलने और तुमसे अपना मतलब निकालने की कोशिश करे। लेकिन मेरे साथ यह मूर्खता और भारी भूल है; सबसे पहले, इसलिए कि तुम मुझे छल नहीं सकते और तुम्हारा कपट तुरन्त खुल जाता है और वह मेरे अन्दर से तुम्हारी सहायता के लिए आने की सारी इच्छा को दूर कर देता है, और दूसरा यह कि मैं "मालिक" नहीं हूं और तुमसे अपना मतलब निकालने की कोशिश नहीं करती।

मेरा सारा प्रयास है यथार्थ परिस्थितियां जितने अधिक-से-अधिक सत्य की अनुमति दें उसे धरती पर चरितार्थ करना; और सत्य की वृद्धि के साथ-साथ, सभी की भलाई और प्रसन्नता अनिवार्य रूप से बढ़ेगी।

मेरे लिए जाति और वर्ग के भेद-भाव में कोई सत्य नहीं है; केवल व्यक्ति का मूल्य ही अर्थ रखता है। मेरा लक्ष्य एक बड़ा परिवार बनाने का है जिसमें हर एक के लिए यह संभव होगा कि वह अपनी क्षमताओं का पूरा-पूरा विकास कर सके और उनको अभिव्यक्त कर पाये। भ्रातृभाव और सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध रखते हुए हर एक की क्षमता के अनुसार उसका अपना स्थान और काम होगा।

इस तरह के परिवार-संगठन के फलस्वरूप वेतन या पारिश्रमिक की

कोई आवश्यकता न होगी। काम जीविकोपार्जन का साधन न होना चाहिये; उसका उद्देश्य दोहरा होना चाहिये : पहला, काम के लिए अपने स्वभाव और क्षमता को विकसित करना, और दूसरा, अपने शारीरिक साधन और नैतिक और मानसिक योग्यता के अनुपात में उस परिवार के लिए कार्य करना जिसके तुम अंग हो और जिसके कल्याण के लिए तुम्हें योगदान देना चाहिये, उसी तरह जिस तरह परिवार के लिए अपने सदस्य की सच्ची आवश्यकताओं को पूरा करना उचित है।

जीवन की वर्तमान परिस्थितियों में इस आदर्श को मूर्त रूप देने के लिए, मेरा विचार एक तरह की नगरी बनाने का है जहां प्रारंभ में करीब दो हजार आदमी रहेंगे। उसका निर्माण आधुनिकतम योजना के अनुसार होगा जहां स्वास्थ्य और सामान्य आरोग्य की सभी अद्यतन आवश्यकताएं पूरी होंगी। वहां केवल घर ही न होंगे, बल्कि बगीचे, शारीरिक विकास के लिए क्रीड़ाक्षेत्र भी होंगे। हर एक परिवार अलग-अलग घर में रहेगा; अविवाहित पुरुष अपने कार्य और मेल-मिलाप के अनुसार दलों में बांट दिये जायेंगे।

जीवन के लिए कोई भी अनिवार्य वस्तु भुलाई न जायेगी। आधुनिकतम स्वास्थ्यकर उपकरणों से सज्जित रसोईघर सभी को समान रूप से सादा और स्वास्थ्यप्रद भोजन देंगे, जो शरीर के उचित पोषण के लिए पर्याप्त पौष्टिक होगा। व्यक्ति वहां सहकार के आधार पर मिलकर सहयोग के साथ काम करेंगे।

पढ़ाई के बारे में, जो कुछ आवश्यक है वह है बच्चे और वयस्क, सभी के विकास और बौद्धिक व नैतिक शिक्षा के लिए विभिन्न स्कूल, विभिन्न पेशों में तकनीकी शिक्षण, नृत्य और संगीत की कक्षाएं, एक सिनेमा हॉल जहां शिक्षा-सम्बन्धी फिल्में दिखायी जायें, सभा-कक्ष, पुस्तकालय, पठन-कक्ष, विभिन्न शारीरिक शिक्षण, क्रीड़ाक्षेत्र इत्यादि की व्यवस्था।

हर एक ऐसा कार्य चुन सकता है जो उसके स्वभाव के सबसे अधिक अनुरूप हो और वह उसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण पायेगा। यहां तक कि छोटे-बड़े बगीचे भी दिये जायेंगे जहां, जिन्हें खेती में रस है, वे वहां फल, फूल और तरकारी उगा सकेंगे।

स्वास्थ्य के विषय में, नियमित रूप से चिकित्सक देखभाल करेंगे,

अस्पताल, डिस्पेन्सरी और संक्रामक रोगों के रोगियों को अलग रखने के लिए एक नर्सिंग होम होगा। एक स्वास्थ्य विभाग का पूरी तरह से यही काम होगा कि सभी सार्वजनिक और व्यक्तिगत गृहों में जाकर यह देखे कि सभी जगहों पर और सभी के द्वारा सफाई के कठोरतम नियमों का पालन किया जा रहा है। इस विभाग से स्वाभाविक रूप से जुड़े हुए सार्वजनिक स्नानगृह और सामूहिक धोबीखाने होंगे।

अंत में, बड़ी दूकानें बनायी जायेंगी जहां व्यक्ति छोटी-मोटी "अतिरिक्त चीजें" पा सकेगा जो जीवन को विभिन्नता और सुख देती हैं। ये उसे "कूपन" के बदले में मिलेंगी जो काम और आचरण की किसी विलक्षण सफलता के पुरस्कार के रूप में दिया जायेगा।

मैं संस्था के काम और व्यवस्था का लंबा वर्णन नहीं करूंगी, यद्यपि सारी चीज छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ पहले से देखी जा चुकी है।

यह मानी हुई बात है कि इस आदर्श स्थान में प्रवेश के लिए जिन अनिवार्य शर्तों को पूरा करने की आवश्यकता होगी वे हैं अच्छा चरित्र, अच्छा आचरण, सच्चा, नियमित और कुशल कार्य और एक व्यापक सद्‌भावना।

१० जुलाई, १९५४

*

क्या तुम सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी की कहानी जानते हो? एक समय की बात है, एक किसान था। एक मुर्गी ही उसकी सारी सम्पत्ति थी; लेकिन वह एक अद्‌भुत मुर्गी थी। हर तीसरे दिन वह उसे एक सोने का अण्डा देती थी। अब इस किसान ने अपने लालच-भरे अज्ञान के कारण सोचा कि इस मुर्गी का सारा शरीर सोने से भरा होगा, और अगर वह उसके शरीर को चीरे तो उसे बड़ा-सा खजाना मिल जायेगा। इसलिए उसने मुर्गी को चीर डाला—लेकिन मिला कुछ नहीं। उसने मुर्गी भी गंवायी और अण्डे भी गये।

यह कहानी हमें बतलाती है कि अज्ञानभरा और मूर्खतापूर्ण लोभ जरूर बरबादी की ओर ले जाता है। इससे यह सीख लो और समझ लो कि अगर तुम मुझसे इतना मांगो जो मेरी बिसात से बाहर हो, और अगर

मैं इतनी मूर्ख होऊं कि तुम्हारी मांग को स्वीकार कर लूं, तो मैं सीधी बरबादी की ओर जाऊंगी और परिणाम यह होगा कि सब काम बंद कर दिया जायेगा और तुम बेकार हो जाओगे और इस कारण तुम्हें कोई वेतन न मिलेगा, और अपनी रोजी कमाने का कोई उपाय न रहेगा।

१८ मार्च, १९५५

*

कुछ लोगों के वेतन बढ़ाने का अर्थ होगा औरों को आजीविका से वंचित करना।

*

कार्यकर्ताओं के बारे में विभिन्न रिपोर्टों से सावधान—वे हमेशा पक्षपातपूर्ण होती हैं। हर एक अपनी अभिरुचि (पसंद और नापसंद) के अनुसार बोलता है और बातों को तोड़-मरोड़ कर रखता है।

*

अपने कार्यकर्ताओं में से अविश्वास को कैसे हटाया जाये?

क्या तुम अंधे को दिखला सकते हो?

सारी मानवजाति—बहुत थोड़े-से अपवादों को छोड़कर—भगवान् पर अविश्वास करती है, फिर भी उनकी 'कृपा' सबसे अधिक क्रियाशील है।

*

मालिक और कर्मचारी के बीच सम्बन्ध

विश्वास की नींव के बिना कोई स्थायी चीज नहीं स्थापित की जा सकती। और यह विश्वास पारस्परिक होना चाहिये।

तुम्हें यह विश्वास होना चाहिये कि केवल मेरा अपना भला ही नहीं, तुम्हारा भला भी मेरा लक्ष्य है। इस ओर मुझे भी यह पता होना चाहिये कि तुम केवल लाभ उठाने के लिए ही नहीं सेवा करने के लिए भी हो।

हर एक का कल्याण हुए बिना सबका कल्याण होना असंभव है। प्रत्येक भाग की प्रगति के बिना सबका सामंजस्यपूर्ण विकास नहीं हो सकता।

अगर तुम्हें लगता है कि तुम्हारा शोषण किया जा रहा है, तो मुझे भी लगेगा कि तुम मुझसे अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हो। और अगर तुम्हें धोखा दिये जाने का डर है, तो मुझे भी लगेगा कि तुम मुझे धोखा देने की कोशिश कर रहे हो।

मानव समाज केवल स्पष्टवादिता, सचाई और विश्वास में ही प्रगति कर सकता है।

*

(नौकरों के साथ व्यवहार के बारे में)

मेहरबान भी न होओ, कठोर भी न बनो।

उन्हें पता होना चाहिये कि तुम सब कुछ देखते हो, लेकिन उन्हें डांटो मत।

२ जुलाई, १९६८

प्रकीर्ण

'क' से कहा जा सकता है कि प्रणाम के लिए न आने के उसके कारण छिछले और उथले हैं, अन्य लोग हैं जो साधना में उससे बहुत ज्यादा आगे बढ़े हुए हैं, और वे आते हैं। उनके बारे में क्या कहेगा वह?

वह हमेशा यह सिद्ध करने की कोशिश करता है कि वह अन्य साधकों से श्रेष्ठ है। यही उसकी भूल-भ्रांति की जड़ है।

मई, १९३२

*

मैं तुम्हारे निश्चय से खुश हूं और आशा करती हूं कि तुम उसे निभाओगे। मैं तुम्हें लिखने वाली थी कि तुम्हें मुझसे मिलने और पीने में चुनाव करना होगा—क्योंकि अगर तुम पीते ही रहोगे तो मैं तुमसे नहीं मिलूंगी—लेकिन यह जानकर खुश हूं कि तुमने पहले ही निश्चय कर लिया है।

११ अक्तूबर, १९३५

*

ऐसा लगता है कि प्रकाश, आनंद, ज्ञान और शक्ति का बड़ा भण्डार मेरे अन्दर उतरने के लिए सिर के ऊपर तैयार है। मुझे यह विचार आ रहा है कि मुझे अनिश्चित काल के लिए मौन जारी रखना चाहिये, मुझे किसी के साथ मिलना-जुलना या बातचीत नहीं करनी चाहिये और दर्शन तथा प्रणाम के दिन छोड़कर अपने घर या कमरे से बाहर न निकलना चाहिये।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि तुम्हें किसी भी कारण से हर रोज शाम के ध्यान में आना बंद न करना चाहिये। मैं उनके साथ पूरी तरह सहमत हूं कि यह उपस्थिति एकदम अनिवार्य है।

१६ दिसम्बर १९४०

*

मिथ्याभिमान और स्वार्थपरता ही साधकों को शिक्षा को अच्छे भाव से लेने से रोकते हैं।

१० मई, १९५४

*

इस कमरे में बिलकुल चुप रहना होगा।

जो श्रीअरविन्द की उपस्थिति में एक शब्द भी बोलेगा उसे कमरा छोड़ कर बाहर निकल जाना होगा।

*

इस स्थान से सेवा की भावना चली गयी है।

१६ मई, १९५४

*

यहां ऐसा कोई भी नहीं है, अच्छे-से-अच्छों में भी नहीं, जो अन्तिम विजय पाने के लिए अपनी सभी आदतें, सुविधाएं और अभिरुचियां या पसंदें छोड़ने को तैयार हो, भले मार्ग में उसे अपनी गर्दन ही तोड़नी पड़ जाये।

*

तुम्हारा मनोभाव बदलना चाहिये—क्योंकि कुछ भी *व्यक्तिगत* नहीं है, सब कुछ भगवान् का है और आवश्यकता हो तो सामूहिक उपयोग के लिए है—और इसके ठोस उदाहरण के रूप में मैं तुमसे अपना वर्तमान निवास-स्थान छोड़कर नये मकान में जाने के लिए कहूंगी जहां तुम्हें रहने की जगह दी गयी है। मैं तुम्हें इस फैसले को '*कृपा*' की अभिव्यक्ति के रूप में लेने की सलाह दूंगी।

१६ अप्रैल, १९५८

*

'क' कहता है कि वह ऐसे किसी को नहीं जानता जो यह काम कर

सके। वह प्रदर्शनी करने वालों के पास यह सूचना भेज देना चाहता है कि प्रदर्शनी नहीं होगी।

मुझे इसके लिए बहुत खेद है।

यह परिस्थितियों की अपेक्षा, कहीं अधिक संकल्प की *पराजय* है और आश्रम के लिए बदनामी की बात है।

१४ फरवरी, १९६३

*

(अम्बालाल पुराणी के बारे में जो श्रीअरविन्द के शिष्य थे और ११ दिसम्बर, १९६५ को शरीर छोड़ गये)

पुराणी

उसका उच्चतर बौद्धिक भाग श्रीअरविन्द के पास चला गया और उनमें मिल गया।

उसका चैत्य मेरे साथ है, और वह बहुत प्रसन्न और शांत है।

उसका प्राण अब भी उन लोगों की सहायता कर रहा है जो उसकी सहायता चाहते हैं।

५ *मार्च, १९६६*

*

(पवित्र के बारे में जो एक फ्रेंच शिष्य थे जिन्होंने १६ मई, १९६९ को शरीर छोड़ा)

उस रात मुझे जो अनुभूति हुई वह बहुत रोचक थी। मेरे जीवन में ऐसा कभी नहीं हुआ था। यह उस दिन से पहले की रात थी जब उसने शरीर छोड़ा था। नौ बजे थे। मैंने अनुभव किया कि वह अपने को विलग कर रहा है, एक असाधारण तरीके से पीछे हट रहा है। वह अपने-आपसे बाहर निकलकर, अपने को समेट कर मेरे अंदर उंड़ेल रहा था। वह

सचेतन रूप से और सोच-समझ कर केंद्रित संकल्प की पूरी शक्ति के साथ बाहर आ रहा था। वह बिना रुके, अनवरत घंटों यह करता रहा। यह काम लगभग एक बजे खतम हुआ। मैंने घड़ी देखी थी।

किसी भी समय कोई ढील या व्याघात या विराम न था। सारे समय बिना रुके, शक्ति में जरा भी कमी आये बिना, एक-सा स्थिर सतत प्रवाह रहा। जरा भी कम न होने वाली कितनी केंद्रित धारा थी वह। जब तक वह पूरी तरह मेरे अंदर समा नहीं गया तब तक वह क्रिया चलती रही मानों वह अपने शरीर की अंतिम बूंद तक को दे देना चाहता था। मैं कहती हूं यह अद्भुत था—मैंने ऐसी चीज का कभी अनुभव न किया था। जब प्रवाह बंद हुआ तो शरीर में बहुत ही कम रह गया था : डॉक्टरों द्वारा शरीर को मृत घोषित कर देने के बहुत बाद तक मैंने शरीर को बहुत देर तक, उतनी देर तक रहने दिया जितनी देर तक काम जारी रहने के लिए जरूरी था।

वह जीवन में जैसा था, उस हिसाब से वह यह न कर सकता था, मैंने उससे इसकी आशा नहीं की थी। शायद उसका कोई पूर्वजन्म क्रियाशील था और वह यह कर पाया। अधिकतर योगी, बड़े-से-बड़े योगी भी ऐसा न कर पाते। वह यहां मेरे अन्दर है, पूरी तरह जाग्रत्, और तुम लोग जो कर रहे हो उसे विनोद की दृष्टि से देख रहा है। वह मेरे अन्दर पूरी तरह मिल गया है यानी वह मेरे अन्दर निवास करता है, विलीन नहीं हुआ है : उसका व्यक्तित्व अक्षुण्ण है। अमृत उससे भिन्न है। वह बाहर है, तुममें से एक, तुम घूमने-फिरने वालों में से एक है। हां, कभी जब वह आराम करना, विश्राम लेना चाहता है, तो वह आता है और यहां निवास करता है। एक विलक्षण कहानी है यह। पवित्र ने बहुत बड़ा और दु:साध्य काम किया है।†

२५ मई, १९६९

*

मेरा यह इरादा नहीं है कि तुम्हें पसंद न होने पर भी तुम्हें मिल का कपड़ा पहनने के लिए बाधित करूं।

मैंने बस इतना ही कहा था कि मेरे पास देने के लिए केवल मिल का कपड़ा ही है।

जब तुम हृदय और मन में स्वतंत्र हो जाते हो, तो चीजों को देखने का तुम्हारा तरीका बिलकुल बदल जाता है। लेकिन जब तक यह स्वाधीनता न आ जाये, कोई अनिवार्यता नहीं है।

बुरे विचारों और संदेहों को अपने अंदर प्रवेश करने देने के कारण तुम सुरक्षा से बाहर निकल गये हो।

*

("प्रॉस्पेरिटी"[1] से आवश्यक चीजें पाने वालों के नाम)

प्रॉस्पेरिटी से मिली हुई चीजों को बेचना भगवान् का अपमान है और इसके आध्यात्मिक दुष्परिणाम होंगे।

जून, १९७१

*

यहां हर एक को, उतनी शक्ति, ज्योति और ताकत दी जाती है जितनी वह ले सके, बल्कि उससे भी अधिक। यह तुम्हारा रूपान्तर करने के लिए दी जाती है। लेकिन जब तुम इन सबको लेकर अपने निजी प्रयोजन के लिए या तथाकथित मानव प्रेम के लिए काम में लाओ, तो यह बेईमानी है, डकैती है और पहले दर्जे का अपराध है।†

*

तुम्हें हर चीज का उस प्रयोजन के लिए उपयोग करना चाहिये जिसके लिए वह दी गयी है, अन्यथा तुम अपराध करते हो। मैं केवल भौतिक चीजों की बात नहीं कर रही। वे सब आंतरिक चीजें जो मैं तुम्हें सारे समय देती रहती हूं, सारी ताकत, प्रकाश, ऊर्जा और जीवन जो तुम्हारे अंदर सारे समय उंडेली जा रही हैं, वे सब भगवान् की सेवा के लिए हैं, तुम्हारा

[1] यह आश्रम का एक विभाग है जहां से आश्रमबासियों को तेल, साबुन, कपड़े, आदि वस्तुएं मिलती हैं।—अनु०

रूपान्तर करने के लिए हैं। अगर तुम उनका उपयोग किसी और प्रयोजन के लिए करो तो तुम डाकू हो और तुम्हारा अपराध बुरे-से-बुरा है।†

*

जब मैं आपको दूसरों के कृत्यों के बारे में बताता हूं, तो क्या इसका मतलब यह होता है कि मैं उनकी शिकायत कर रहा हूं और क्या ऐसा करना ठीक है?

यह तुम्हारे मनोभाव पर निर्भर है। अगर तुम किसी के विरुद्ध बदले की भावना से या अपनी श्रेष्ठता दिखाने के लिए या किसी और व्यक्तिगत हेतु से रिपोर्ट करो तो यह बिलकुल गलत है और तुम्हें यह न करना चाहिये। लेकिन सच्चा तरीका यह है कि तुम एक आईने की तरह होओ, जैसा देखो ठीक वैसा ही दिखलाओ। अपना निजी रंग न चढ़ाओ और बिलकुल तटस्थ रहो। अगर स्वयं आईने में ही कुछ खराबी होगी, तो मैं उसे ठीक कर सकती हूं। लेकिन तुम्हें निश्चित रूप से यह कोशिश करनी चाहिये कि तुम्हारा आईना चित्र को बिगाड़े नहीं।†

*

निश्चय ही किसी की शिकायत करना बुरा है। लेकिन 'क' जो सोचता है वह ठीक नहीं है। अगर तुम सारे समय ध्यान में रहो, तब और केवल तभी तुम यह कह सकते हो कि मैं कोई बुरी बात नहीं देखता, कोई बुरी बात नहीं सुनता और कोई बुरी बात नहीं कहता। लेकिन जब तुम कार्यक्षेत्र में हो, तो तुम्हें मुझे सूचना देनी ही होगी। निर्णय करने के लिए न बैठ जाओ। आईने की तरह रहो और जो तुम देखते हो उसका ठीक-ठीक चित्र मुझे दो। हो सकता है कि तुम्हारे आईने में दोष हो, लेकिन यह मेरा काम है और मैं उसे देख लूंगी। तुम्हें अपने प्रकाश के अनुसार ठीक चित्र देने का अच्छे-से-अच्छा प्रयास करना चाहिये।†

भाग ४

ओरोवील

Bénédictions
à
Auroville

Auroville wants to be a universal town where men and women of all countries are able to live in peace and progressive harmony, above all creeds, all politics and all nationalities.

The purpose of Auroville is to realise human unity.

8-9-65.

ओरोवील को आशीर्वाद।

ओरोवील एक वैश्व नगरी बनना चाहता है जहां सभी देशों के नर-नारी शांति और बढ़ते हुए सामंजस्य में, सभी मतों, समस्त राजनीति और सब राष्ट्रीयताओं से ऊपर रह सकें।

ओरोवील का उद्देश्य है मानव एकता को चरितार्थ करना।

८ सितम्बर, १९६५

*

१. ओरोवील-निर्माण के लिए पहल किसने की?

परम प्रभु ने।

२. ओरोवील की आर्थिक व्यवस्था में कौन भाग लेता है?

परम प्रभु।

३. अगर कोई ओरोवील में रहना चाहे, तो उसके लिए इसका क्या अर्थ है?

'परम पूर्णता' पाने के लिए कोशिश करना।

४. क्या ओरोवील में रहने के लिए व्यक्ति को योग का विद्यार्थी होना चाहिये?

सारा जीवन ही योग है। अतः तुम परम योग किये बिना जी ही नहीं सकते।

५. ओरोवील में आश्रम की क्या भूमिका होगी?

जो कुछ परम प्रभु चाहेंगे।

६. क्या ओरोवील में पड़ाव डालने की व्यवस्था होगी?

सभी चीजें जैसी होनी चाहियें होंगी, जब होनी चाहियें होंगी।

७. क्या ओरोवील में पारिवारिक जीवन होगा?

अगर आदमी उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

८. क्या आदमी ओरोवील में अपना धर्म बनाये रख सकता है?

अगर वह उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

९. क्या ओरोवील में आदमी नास्तिक भी हो सकता है?

अगर वह उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

१०. क्या ओरोवील में सामाजिक जीवन होगा?

अगर आदमी उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

११. क्या ओरोवील में सामुदायिक क्रिया-कलाप अनिवार्य होंगे?

कुछ भी अनिवार्य न होगा।

१२. क्या ओरोवील में धन का उपयोग होगा?

नहीं, ओरोवील केवल बाह्य जगत् के साथ धन का सम्बन्ध रखेगा।

१३. ओरोवील में काम कैसे बांटा जायेगा और उसकी व्यवस्था कैसे होगी?

"धन ही सर्वेसर्वा नहीं होगा; भौतिक सम्पत्ति और सामाजिक स्तर की अपेक्षा व्यक्ति के मूल्य का कहीं अधिक महत्त्व होगा। वहां कार्य निजी आजीविका का साधन न होकर अपने-आपको अभिव्यक्त करने, अपनी क्षमताओं और संभावनाओं को विकसित करने, साथ ही समूचे संगठन की सेवा करने के लिए होगा, और संगठन हर व्यक्ति के भरण-पोषण और कार्यक्षेत्र की भी व्यवस्था करेगा।"[१]

१४. ओरोवील-निवासियों और बाहरी जगत् वालों में क्या सम्बन्ध होगा?

हर व्यक्ति को पूरी आजादी है। ओरोवीलवासियों के बाहरी सम्बन्ध हर एक की अपनी अभीप्सा और उसके ओरोवील के काम पर निर्भर होंगे।

१५. ओरोवील की भूमि और भवनों का स्वामी कौन होगा?

परम प्रभु।

१६. पढ़ाने के लिए कौन-सी भाषा का उपयोग होगा?

धरती-भर पर बोली जाने वाली हर भाषा का।

१७. ओरोवील में परिवहन की क्या व्यवस्था होगी?

हमें पता नहीं।†

१९६५[२]

*

[१] माताजी के एक लेख "स्वप्न" से उद्धृत।

[२] माताजी ने १९६५ में इन प्रश्नों के मौखिक उत्तर दिये थे। उन्होंने इनके लिखित रूप को ८ अक्तूबर, १९६९ में देखा, तो प्रश्न १२ और १७ के उत्तर बदल दिये। यहां बदले हुए उत्तर दिये गये हैं।

ओरोवील ठीक चल रहा है और अधिकाधिक वास्तविक होता जा रहा है, लेकिन उसकी चरितार्थता साधारण मानव ढंग से नहीं हो रही। वह बाहर की आंखों की अपेक्षा भीतरी चेतना को ज्यादा अच्छी तरह दिखायी देती है।†

जनवरी १९६६

*

तुम कहते हो कि ओरोवील एक स्वप्न है। हां, यह प्रभु का "स्वप्न" है और प्रायः ये "स्वप्न" *सत्य* निकलते हैं—तथाकथित मानव वास्तविकताओं की अपेक्षा बहुत अधिक वास्तविक!

२० मई, १९६६

*

पार्थिव सृष्टि में मानवजाति ही अन्तिम सीढ़ी नहीं है। विकास जारी है और मनुष्य का अतिक्रमण होगा। यह तो हर व्यक्ति को जानना है कि वह इस नयी जाति के आगमन में भाग लेना चाहता है या नहीं।

जो वर्तमान जगत् से संतुष्ट है उनके लिए ओरोवील के होने का कोई मतलब नहीं।

अगस्त, १९६६

*

हम ओरोवील को 'अतिमानव' का पालना बनाना चाहेंगे।

१९६६

*

सभी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विश्वासों से ऊपर उठकर ओरोवील को 'सत्य' की सेवा में होना चाहिये।

ओरोवील सचाई और 'सत्य' के साथ शांति की ओर प्रयास है।

२० सितम्बर, १९८८

*

ओरोवील वैश्व शांति, मैत्री, भ्रातृभाव और एकता के लिए प्रयास है।†

२० सितम्बर, १९६६

*

जब तक तुम किसी के *पक्ष में* और किसी के *विपक्ष में* हो, तुम निश्चित रूप से 'सत्य' के *बाहर* हो।

तुम्हें अपने हृदय में निरंतर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शांति और समता के साथ उंडेलना चाहिये।

१६ दिसम्बर, १९६६

*

ओरोवील : अन्ततः एक ऐसा स्थान जहां मनुष्य केवल भविष्य के बारे में सोच सकेगा।

जनवरी, १९६७

*

(ओरोवील के एक भाग "प्रोमेस" के कमल-सरोवर के पास पत्थर में खोदकर लगाने के लिए संदेश)

ओरोवील उन सब लोगों के लिए एक आश्रय है जो 'ज्ञान', 'शांति' और 'एकता' के भविष्य की ओर तेजी से जाना चाहते हैं।

१६ मार्च, १९६७

*

ओरोवील में रहने की शर्तें

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, आवश्यक शर्तें ये हैं :

(१) मानवजाति की मौलिक एकता के बारे में विश्वास होना और उस एकता को मूर्त रूप से चरितार्थ करने के लिए सहयोग देने की इच्छा;

(२) उस सबमें सहयोग देने की इच्छा जो भावी उपलब्धियों को आगे बढ़ा सके।

जैसे-जैसे उपलब्धि आगे बढ़ेगी भौतिक शर्तों को रूप दिया जायेगा।

१९ जून, १९६७

*

ओरोवील के लक्ष्य—
प्रभावशाली मानव एकता
धरती पर शांति

*

ओरोवील
'सत्य' की सेवा में लगी नगरी

२८ फरवरी, १९६८

*

(ओरोवील के उद्‌घाटन के लिए संदेश)

28. 2. 68.

Greetings from Auroville
to all men of good will.
Are invited to Auroville all
those who thirst for progress
and aspire to a higher
and truer life.

सभी शुभेच्छुओं को ओरोवील की ओर से अभिनन्दन।

निमंत्रण है उन सबको जो प्रगति के प्यासे हैं और उच्चतर और सत्यतर जीवन के लिए अभीप्सा करते हैं।

२८ फरवरी, १९६८

*

ओरोवील का घोषणा-पत्र

१) ओरोवील किसी व्यक्ति-विशेष का नगर नहीं है। ओरोवील पूरी मानवजाति का है।

किन्तु इसमें रहने के लिए व्यक्ति को 'भागवत चेतना' का सहर्ष सेवक बनना होगा।

२) ओरोवील अंतहीन शिक्षा का, सतत विकास एवं एक ऐसे यौवन का स्थल होगा जिसे कभी बुढ़ापा नहीं व्यापेगा।

३) ओरोवील भूतकाल एवं भविष्य के मध्य एक सेतु बनना चाहता है।

अंतर और बाहर की सभी खोजों से लाभान्वित होता हुआ, ओरोवील साहसपूर्वक भविष्य की उपलब्धियों की ओर छलांग लगायेगा।

४) ओरोवील एक वास्तविक मानव एकता को सजीव रूप में मूर्तिमन्त करने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक खोजों का स्थान होगा।

२८ फरवरी, १९६८

28. 2. 68

Charte d'Auroville

1) Auroville n'appartient à personne en particulier. Auroville appartient à toute l'humanité dans son ensemble.

Mais pour séjourner à Auroville, il faut être le serviteur volontaire de la Conscience Divine

*

2) Auroville sera le lieu de l'éducation perpétuelle, des

progrès constant et d'une jeunesse qui ne vieillit point.

*

3) Auroville veut être le pont entre le passé et l'avenir.

Profitant de toutes les découvertes extérieures et intérieures, elle veut hardiment s'élancer vers les réalisations futures.

*

4) Auroville sera le lieu des recherches matérielles et spirituelles pour donner un corps vivant à une unité humaine concrète.

*

आखिर एक ऐसा स्थान जहां आदमी केवल प्रगति करने और अपने से ऊपर उठने के बारे में ही सोच सकेगा।

आखिर एक ऐसा स्थान जहां आदमी शांति में, राष्ट्रों, धर्मों और महत्त्वाकांक्षाओं के संघर्ष और स्पर्धा के बिना रह सकेगा।

आखिर एक ऐसा स्थान जहां किसी चीज को यह अधिकार न होगा कि अपने-आपको अनन्य सत्य के रूप में आरोपित करे।

फरवरी १९६८

*

आश्रम में और ओरोवील में क्या फर्क है?

आश्रम प्रणेता, प्रेरक और पथ-प्रदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभायेगा।

ओरोवील सामूहिक सिद्धि के लिए प्रयास है।

जून, १९६८

*

यह सच है कि ओरोवील में रहने के लिए चेतना को बहुत समुन्नत करना चाहिये।

लेकिन वह घड़ी आ गयी है जब यह उन्नति संभव है।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

जून, १९६८

*

(ओरोवील-प्रॉस्पेरिटी ओरोवील-वासियों को आवश्यक वस्तुएं देती है। वहां से चीजें पाने वालों के नाम संदेश)

ओरोवील कामनाओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि सच्ची चेतना की वृद्धि के लिए है।

१६ जून, १९६८

*

मनुष्यों में शांति और एकता लाने वाले किसी भी सच्चे प्रयास का ओरोवील में स्वागत है।

२० जुलाई, १९६८

*

भविष्य की ओर अभियान का अर्थ है भविष्य हमें जो दे सकता है उसे पाने के लिए सभी भौतिक और नैतिक लाभों को छोड़ने के लिए तैयार रहना।

ऐसे बहुत कम हैं; यद्यपि ऐसे बहुत-से हैं जो उसे पाना चाहेंगे जिसे 'भविष्य' ला रहा है, लेकिन वे नयी संपदा पाने के लिए उनके पास जो कुछ है उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

५ *अगस्त, १९६८*

*

आदमी आराम और कामनाओं की तुष्टि के लिए ओरोवील नहीं आता; वह आता है चेतना के विकास के लिए और जिस 'सत्य' को चरितार्थ करना है उसके प्रति एकनिष्ठ होने के लिए।

ओरोवील के सृजन में भाग लेने के लिए निःस्वार्थता पहली आवश्यकता है।

५ *नवम्बर, १९६८*

*

भगवती मां,

ओरोवील का निर्माण मनुष्य द्वारा आध्यात्मिकता को स्वीकार करने पर कहां तक निर्भर है?

मेरे लिए आध्यात्मिकता और भौतिक जीवन के बीच विरोध का, इन दोनों के विभाजन का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि सच तो यह है कि जीवन और आत्मा एक हैं और भौतिक कर्म में व उसके द्वारा उच्चतम 'आत्मा' को अभिव्यक्त करना होगा।

१९ अप्रैल, १९६८

*

दिव्य मां,

क्या ऐसा कोई कारण है कि जिससे हम ओरोवील में काम पूरा करने के भाव से या भौतिक लाभ की दृष्टि से सत्य के साथ समझौता कर लें?

जीना और काम करना ही अपने-आपमें एक समझौता है, क्योंकि अभी तक संसार 'सत्य' के विधान के अधीन नहीं रह रहा है।

७ जून, १९६८

*

ओरोवील

अनुशासन के बिना कोई बड़ा सृजन संभव नहीं है—
व्यक्तिगत अनुशासन,
सामुदायिक अनुशासन,
भगवान् को पाने के लिए अनुशासन।

१६ सितम्बर, १९६८

*

(कार्य की व्यवस्था के बारे में)

मुख्य चीज है कार्य-संपादन, और यह हम जिस आदर्श को चरितार्थ करना चाहते हैं उसके आंख से ओझल हुए बिना होना चाहिये।

दिसम्बर, १९६८

*

मधुर मां,

कल एक आम सभा होगी जिसमें यह देखने की कोशिश की जायेगी कि क्या हम सबके लिए किसी कार्य-पद्धति पर सहमत होना संभव है।

कोई भी एक भाषा नहीं बोलता; सभी व्यक्ति बहुत भिन्न हैं और कार्य के सामूहिक अनुशासन के आगे नहीं झुकते। मैं आपसे कुछ लिखित उत्तर पाना चाहूंगा ताकि मैं जान सकूं कि वहां क्या कहना चाहिये—कोई ऐसी चीज जो 'सत्य' हो और यहां की अव्यवस्था को दूर कर सके।

क्या ओरोवील के निर्माण के लिए एक कार्य-पद्धति, व्यवस्था और सहयोग की जरूरत है?

अनुशासन जीवन के लिए जरूरी है। जीने के लिए, स्वयं शरीर अपने सारे कामों के लिए एक कड़े अनुशासन के अधीन है। इस अनुशासन में कोई भी ढील बीमारी पैदा करती है।

यह व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिये, आजकल और भविष्य में भी?

व्यवस्था कार्य का अनुशासन है, लेकिन ओरोवील के लिए हम मनमानी और कृत्रिम व्यवस्था के परे जाने की अभीप्सा करते हैं।

हम एक ऐसी व्यवस्था चाहते हैं जो भावी सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए कार्यरत उच्चतर चेतना की अभिव्यक्ति हो।

लेकिन जब तक यह सामुदायिक चेतना प्रकट न हो, और जब तक हम सच्चे और उचित ढंग से सम्मिलित कार्य न कर पायें, तब तक क्या करें?

सबसे अधिक प्रकाशमान केंद्र के इर्द-गिर्द एक श्रेणीबद्ध संगठन और सम्मिलित अनुशासन के आगे झुकना।

क्या हमें व्यवस्था के ऐसे तरीकों का उपयोग करना चाहिये जो सफल सिद्ध हुए हैं, पर हैं मानव-युक्ति और मशीन के उपयोग पर आधारित?

यह काम-चलाऊ व्यवस्था है और इसे बिलकुल अस्थायी रूप से स्वीकारना चाहिये।

क्या हमें व्यक्तिगत पहलू को खुलकर प्रकट होने देना और प्रेरणा और अंतर्भास को व्यक्तिगत कार्य की परिचालिका शक्ति मानना चाहिये? क्या हमें उन सब बातों को रद्द कर देना चाहिये जिन्हें उनमें दिलचस्पी रखने वाले पसंद न करें?

इस तरह काम करना हो तो ओरोवील के सभी कार्यकर्ताओं को 'भागवत सत्य' के बारे में सचेतन योगी होना चाहिये।

क्या समय आ गया है कि हम एक व्यापक संगठन की कामना करें, उसे खड़ा करने की कोशिश करें, या हमें उचित मनोभाव और मनुष्यों के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये?

काम करने के लिए एक संगठन की जरूरत है—लेकिन स्वयं वह संगठन नमनीय और प्रगतिशील होना चाहिये।

अगर प्रतीक्षा करना ही समाधान है तो भी व्यवस्था के नियमों की व्याख्या करना और उच्छृंखल अव्यवस्था से बचना जरूरी है?

उन सबमें जो ओरोवील में रहना और काम करना चाहते हैं पूर्ण सद्भावना, 'सत्य' को जानने और उसके आगे झुकने के लिए सतत अभीप्सा होनी चाहिये, उनमें काफी नमनीयता होनी चाहिये जो काम में आने वाले संकटों का सामना कर सके और इस प्रकार की प्रगति करने के लिए अनंत संकल्प हो जो परम 'सत्य' की ओर अपने-आप बढ़ता चला जाये।

और, अंततः सलाह का एक शब्द : औरों के दोषों की अपेक्षा अपने दोषों की अधिक चिंता करो। अगर हर एक गंभीरता के साथ आत्म-परिपूर्णता के लिए काम करे, तो अपने-आप ही बाकी सबकी पूर्णता आती जायेगी।†

६ फरवरी, १९६९

*

ओरोवील
ऐसी नगरी जिसकी धरती को
जरूरत है।

२२ फरवरी, १९६९

*

(ओरोवील की पहली वर्षगांठ पर दो संदेश)

'प्रकाश', शांति और आनन्द उनके साथ रहें जो ओरोवील में रहते हैं और उसके चरितार्थ होने के लिए काम करते हैं।

आशीर्वाद।

२८ फरवरी, १९६९

*

स्वाधीनता भगवान् के साथ ऐक्य में ही संभव है।

भगवान् के साथ एक होने के लिए तुम्हें अपने में कामना की संभावना तक पर विजय पा लेनी चाहिये।

२८ फरवरी, १९६९

*

हम ओरोवील में जो स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं वह स्वच्छन्दता नहीं है जिसमें हर एक अपनी मरजी के मुताबिक, समस्त संगठन की भलाई के बारे में सोचे बिना, करता है।

१९६९

*

क्या यह 'भगवान् की इच्छा' है कि ओरोवील उत्पन्न हो या, भगवान् ओरोवील-निर्माण की कोशिश को एक परीक्षण के रूप में देखते हैं?

ओरोवील की अवधारणा शुद्ध रूप से भगवान् की है और यह साकार किये जाने से बहुत वर्ष पहले की है

स्वभावतः, उसके कार्य के ब्योरे में मानवीय चेतना हस्तक्षेप करती है।

१७ अप्रैल, १९६९

*

विभिन्न मूल्य रखने वाले लोग एक साथ, सामंजस्य में कैसे रह सकते और काम कर सकते हैं?

इसका समाधान यह है कि अपने अंदर गहराइयों में जाओ और उस जगह को पा लो जहां सभी भेद मिलकर सारभूत और शाश्वत 'ऐक्य' का निर्माण करते हैं।

४ मई, १९६९

*

ओरोवीलवासियों के नाम

ओरोवील में वह सामंजस्यपूर्ण वातावरण स्थापित करने के लिए जिसका, परिभाषा के अनुसार, वहां राज होना चाहिये, पहला कदम यह है कि हर व्यक्ति रगड़ और गलतफहमी का कारण ढूंढ़ने के लिए अपने अन्दर देखे।

क्योंकि ये कारण *हमेशा* दोनों ओर होते हैं, और औरों से किसी भी चीज की मांग करने से पूर्व, हर एक को पहले यह प्रयास करना चाहिये कि वह अपने अन्दर से उन्हें निकाल बाहर करे।

४ जुलाई, १९६९

*

हर अच्छे ओरोवीलवासी को अपने-आपको समस्त कामनाओं, अभिरुचियों और घृणाओं से मुक्त करने का प्रयास करना चाहिये।

ओरोवील में रहने के लिए सभी परिस्थितियों में समता प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य है।

*

लड़ाई-झगड़े ओरोवील की आत्मा के एकदम विपरीत हैं।

*

धरती को आवश्यकता है

एक ऐसे स्थान की जहां मनुष्य समस्त राष्ट्रीय स्पर्धाओं से, सामाजिक प्रथाओं से, आत्म-विरोधी नैतिकताओं से और संघर्षरत धर्मों से दूर रह सके;

एक ऐसे स्थान की जहां मनुष्य अतीत की सारी दासता से मुक्त होकर, अपने-आपको उस 'दिव्य चेतना' की खोज में पूरी तरह लगा सके जो वहां अभिव्यक्त होने की कोशिश कर रही है।

ओरोवील ऐसा ही स्थान होना चाहता है और अपने-आपको उन लोगों को अर्पण करना चाहता है जो आगामी कल के 'सत्य' को जीने की अभीप्सा करते हैं।

२० सितम्बर, १९६९

*

ओरोवील उन लोगों के लिए आदर्श स्थान है जो अपने पास निजी संपत्ति न होने के आनन्द और आजादी का अनुभव करना चाहते हैं।

१८ सितम्बर, १९६९

*

मानव एकता द्वारा शांति :

एकरूपता द्वारा एकता एक बेतुकी बात है।

एकता को 'बहु' के मिलन द्वारा चरितार्थ करना चाहिये।

हर एक एकता का अंग है; हर एक समग्र के लिए अनिवार्य है।

अक्तूबर, १९६९

*

क्या ऐसा दिन आयेगा जब संसार में न गरीब लोग होंगे न दुःख-कष्ट रहेगा?

जो लोग श्रीअरविन्द की शिक्षा के समझते और उन पर श्रद्धा रखते हैं उनके लिए यह बात बिलकुल निश्चित है।

हम एक ऐसा स्थान बनाने की दृष्टि से ही ओरोवील की स्थापना कर रहे हैं जहां यह हो सके।

लेकिन इस सिद्धि के संभव होने के लिए, हममें से हर एक को अपने-आपको रूपांतरित करने के लिए प्रयास करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यों के बहुत-से दुःख-कष्ट उनकी अपनी भौतिक और नैतिक भूलों के परिणाम होते हैं।

८ नवम्बर, १९६९

*

आप यह कैसे मान सकती हैं कि ओरोवील में दुःख-कष्ट न होंगे, जब तक कि वहां रहने के लिए आने वाले लोग उसी दुनिया के, उन्हीं दोषों और दुर्बलताओं में पैदा हुए लोग होंगे?

मैंने यह कभी नहीं सोचा कि ओरोवील में दुःख-दर्द न होंगे, क्योंकि मनुष्य —जैसे कि वे हैं—दुःख-दर्द से प्रेम करते हैं और उसे बुरा-भला कहते हुए भी अपने पास बुलाते हैं।

लेकिन हम कोशिश करेंगे कि उन्हें सचमुच शांति से प्रेम करना और समानता को जीवन में उतारना सिखायें।

मेरा तात्पर्य अनैच्छिक गरीबी और भीख मांगने से था।

ओरोवील का जीवन इस तरह संगठित किया जायेगा कि ये चीजें न रहने पायें—और अगर बाहर से भिखारी आ भी जायें, तो या तो उन्हें चले जाना पड़ेगा या उन्हें आश्रय दिया जायेगा और कर्म का आनन्द सिखाया जायेगा।

९ नवम्बर, १९६९

*

आश्रम और ओरोवील के आदर्श में मौलिक भेद क्या है?

भविष्य के बारे में सोचने के भाव में और भगवान् की सेवा करने के बारे में कोई मौलिक भेद नहीं है।

लेकिन यह माना जाता है कि आश्रम के लोगों ने अपना जीवन योग के लिए अर्पित कर दिया है (निश्चय ही, विद्यार्थी अपवाद हैं जो यहां केवल अध्ययन के लिए आये हैं और उनसे यह आशा नहीं की जाती कि उन्होंने अपने जीवन का चुनाव कर लिया है)।

जब कि ओरोवील में प्रवेश पाने हेतु मानवजाति की प्रगति के लिए सामूहिक परीक्षण करने की सद्भावना काफी है।

१० नवम्बर, १९६९

*

(यूनेस्को-समिति के लिए लिखा गया)

श्रीअरविन्द के अंतर्दर्शन को मूर्त रूप देने का काम माताजी को सौंपा गया था। उन्होंने नये जगत्, एक नयी मानवजाति, नवीन चेतना को मूर्त रूप देने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए एक नये समाज के सृजन के कार्य का बीड़ा उठाया है। वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार, यह एक सामूहिक आदर्श है जिसे चरितार्थ करने के लिए सामूहिक प्रयास की जरूरत है ताकि वह समग्र मानवीय पूर्णता के रूप में उपलब्ध हो सके।

माताजी के द्वारा स्थापित और निर्मित आश्रम इस लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए पहला कदम था। ओरोवील-योजना दूसरा, अधिक बाहरी कदम है, जो अंतरात्मा और शरीर, आत्मा और प्रकृति, स्वर्ग और धरती में, मानवजाति के सामुदायिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए इस प्रयास के आधार को प्रशस्त करता है।[१]

१९६९

*

[१] माताजी ने १९७२ में इसे दोहराने के बाद आखिरी वाक्य में "अधिक बाहरी" शब्द बढ़ा दिये थे।

मैंने हमेशा आश्रम और ओरोवील को समग्र पूर्णता के भाग समझा है। मैं उन्हें पृथक् सत्ताओं के रूप में नहीं देख सकता। तो, माताजी, आपने इनमें भेद कैसे किया है? या मेरी ही कहीं पर भूल है? मुझे लगता है कि हमारे दृष्टिकोण को मिलाने और पूर्ण बनाने की सख्त जरूरत है।

आश्रम केंद्रीय चेतना है, ओरोवील बाह्य अभिव्यक्तियों में से एक है। दोनों स्थानों पर समान रूप से भगवान् के लिए काम किया जाता है।

आश्रम में रहने वालों के पास अपने काम हैं और उनमें से अधिकतर इतने व्यस्त हैं कि ओरोवील को समय नहीं दे सकते।

हर एक को अपने-अपने काम में व्यस्त रहना चाहिये; समुचित व्यवस्था के लिए यह जरूरी है।

*

ओरोवील एकता के लिए अभीप्सा करता है।

१९७०

*

उन सबके नाम जो भविष्य के लिए जीना चाहते हैं :

शरीर के संतुलन के लिए शारीरिक काम उतना ही जरूरी है जितना भोजन।

काम किये बिना खाने से गंभीर असंतुलन पैदा होता है।

फरवरी, १९७०

*

तुम सबको सहमत होना चाहिये।

अच्छा काम करने के लिए *यही एक तरीका* है।

२ अप्रैल, १९७०

*

सबके सहमत होने के लिए हर एक को अपनी चेतना के शिखर तक

उठना चाहिये; ऊंचाइयों पर ही सामंजस्य पैदा किया जाता है।

अप्रैल, १९७०

*

ओरोवील और धर्म

हम 'सत्य' चाहते हैं।

अधिकतर लोग, अपने-आप जो चाहते हैं उसी पर सत्य का लेबल लगा देते हैं।

ओरोवीलवासियों को 'सत्य' की चाह होनी चाहिये, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो।

ओरोवील उनके लिए है जो मूलतः दिव्य जीवन जीना चाहते हैं और जो पुराने, नये, नूतन या भावी सभी धर्मों को त्याग देंगे।

'सत्य' का ज्ञान केवल अनुभूति में ही हो सकता है।

जब तक भगवान् की अनुभूति न हो जाये तब तक किसी को भगवान् के बारे में बोलना नहीं चाहिये।

भगवान् की अनुभूति प्राप्त करो, उसके बाद ही तुम्हें भगवान् के बारे में बोलने का अधिकार होगा।

धर्मों का वस्तुपरक, तटस्थ अध्ययन मानवजाति और मानव चेतना के विकास के अध्ययन का एक भाग होगा।

धर्म मानवजाति के इतिहास का एक भाग हैं और ओरोवील में उनका अध्ययन इसी रूप में होगा—ऐसी मान्यताओं के रूप में नहीं जिन्हें आदमी को मानना या न मानना चाहिये, बल्कि मानव चेतना के विकास की उस प्रक्रिया के अंग के रूप में जो मनुष्य को उसकी अगली उपलब्धि की ओर ले जाये।

कार्यक्रम

'परम सत्य' की अनुभूति द्वारा
भागवत जीवन की खोज
लेकिन
कोई धर्म नहीं

हमारा शोध किन्हीं रहस्यवादी उपायों से प्रभावित शोध न होगा। हम स्वयं जीवन में ही भगवान् को पाने की इच्छा रखते हैं। और इसी शोध के द्वारा जीवन सचमुच रूपान्तरित हो सकता है।

२ मई, १९७०

*

अक्सर धर्म की धारणा भगवान् की खोज के साथ संबद्ध होती है। क्या धर्म को केवल इसी सन्दर्भ में समझना चाहिये? वस्तुतः, क्या आजकल धर्म के और रूप नहीं हैं?

हम संसार या विश्व की ऐसी किसी भी धारणा को धर्म का नाम दे देते हैं जिसे ऐकांतिक 'सत्य' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें मनुष्य को पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये, साधारणतः इसलिए कि इस 'सत्य' को किसी अंतःप्रकाश का परिणाम घोषित किया जाता है।

अधिकतर धर्म भगवान् के अस्तित्व को और उनकी आज्ञा-पालन के लिए नियमों को स्वीकार करते हैं, लेकिन कुछ सामाजिक-राजनीतिक संगठनों की तरह, नास्तिक धर्म भी हैं जो, किसी 'आदर्श' या 'प्रशासन' के नाम पर, अपनी आज्ञा मनवाने के उसी अधिकार का दावा करते हैं।

स्वाधीनता के साथ 'सत्य' की खोज करना और अपने निजी पथ द्वारा स्वतंत्र रूप से 'सत्य' के निकट जाना मनुष्य का अधिकार है। लेकिन हर एक को यह जानना चाहिये कि उसकी खोज सिर्फ उसी के लिए अच्छी है और उसे दूसरों पर नहीं लादना चाहिये।

१३ मई, १९७०

*

ओरोवील में कोई भी चीज विशेष रूप से किसी व्यक्ति की नहीं है। सब कुछ सामूहिक संपत्ति है जो मेरे आशीर्वाद के साथ सभी के कल्याण के लिए उपयोग में लायी जानी चाहिये।

१४ मई, १९७०

*

सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए

१. पहली आवश्यकता है आंतरिक शोध की ताकि मनुष्य यह जान सके कि सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, जातीय और आनुवंशिक आभासों के पीछे सचमुच वह है क्या।

केंद्र में एक स्वतंत्र, विशाल और सजग सत्ता है जो हमारी खोज की प्रतीक्षा कर रही है और जिसे हमारी सत्ता और ओरोवील में हमारे जीवन का सक्रिय केंद्र बनना चाहिये।

२. व्यक्ति ओरोवील में नैतिक और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए रहता है; लेकिन यह मुक्ति अहं, उसकी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की नयी दासता नहीं होनी चाहिये।

व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति आंतरिक खोज के मार्ग को रोक देती है जिसे केवल शांति और पूर्ण अनासक्ति की पारदर्शकता में ही पाया जा सकता है।

३. ओरोवीलवासी को व्यक्तिगत स्वामित्व-भाव को बिलकुल भूल जाना चाहिये। क्योंकि हमारी भौतिक जगत् की यात्रा में, हमें जो स्थान लेना है उसके अनुसार, हमारे जीवन और हमारे कार्य के लिए जो कुछ अनिवार्य है वह हमारे लिए जुटा दिया जाता है।

हम अपनी आंतरिक सत्ता के साथ जितने अधिक सचेतन रूप से संपर्क रखते हैं उतने ही अधिक ठीक-ठीक उपाय हमें दिये जाते हैं।

४. काम, हाथ का काम भी, आंतरिक शोध के लिए अनिवार्य वस्तु है। अगर व्यक्ति काम न करे, अगर अपनी चेतना को जड़-भौतिक में न डाले, तो जड़ कभी विकसित न होगा। चेतना को अपने शरीर द्वारा कुछ भौतिक तत्त्व को संगठित करने देना बहुत अच्छा है। अपने चारों तरफ व्यवस्था करना अपने अंदर व्यवस्था लाने में सहायता देता है।

व्यक्ति को अपना जीवन बाहरी और कृत्रिम नियमों के अनुसार नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित आंतरिक चेतना द्वारा संगठित करना चाहिये, क्योंकि अगर व्यक्ति जीवन को उच्चतर चेतना के संयम के अधीन न रखकर यूं ही चलने दे, तो वह अस्थिर और अर्थशून्य हो जाता है। यह इस अर्थ में अपने समय का अपव्यय होगा कि जड़-भौतिक बिना किसी सचेतन उपयोग

के जैसे-का-तैसा ही बना रहेगा।

५. सारी पृथ्वी को नयी जाति के आविर्भाव के लिए तैयार होना होगा, और ओरोवील इस आविर्भाव को शीघ्र लाने के लिए सचेतन रूप से काम करना चाहता है।

६. थोड़ा-थोड़ा करके हमारे सामने यह व्यक्त किया जायेगा कि यह नयी जाति कैसी होगी, और तब तक के लिए सबसे अच्छा रास्ता यही है कि अपने-आपको पूरी तरह से भगवान् को अर्पण किया जाये।

१३ जून, १९७०

*

ओरोवील में "सब कुछ सामूहिक संपत्ति है"। क्या इसका यह अर्थ है कि सभी चीजों का सभी मनुष्य उपयोग कर सकते हैं या फिर चीजें केवल उन्हीं को देनी चाहियें जो उनका भलीभांति उपयोग करते हैं?

मैंने देखा है कि नाजुक उपकरणों को किसी व्यक्ति से लगाव हो जाता है और वह दूसरों को दिये जाने पर अच्छी तरह काम नहीं करते।

यह सब ऐसी चेतना में समाविष्ट है जो पृथ्वी पर बहुत फैली हुई नहीं है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि चीजें उन लोगों को दी जानी चाहियें जिन्हें उनका उपयोग करना नहीं आता।

ओरोवील के प्रशासन के लिए जिस चीज की जरूरत है वह है ऐसी चेतना जो सभी रूढ़ियों से मुक्त हो और अतिमानसिक 'सत्य' के प्रति सचेतन हो। मैं अभी तक किसी ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा में हूं। हर एक को उसे पाने के लिए अच्छे-से-अच्छा प्रयास करना चाहिये।

१५ जुलाई, १९७०

*

(कुछ अस्थायी अतिथियों ने ओरोवील की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार जताया। इस बारे में माताजी ने लिखा :)

ओरोवीलवासियों से

ओरोवील की व्यवस्था में हस्तक्षेप करनेका अधिकार उन्हीं लोगों को है जिन्होंने हमेशा के लिए यहां रहने का निश्चय कर लिया है।

२२ जनवरी, १९७१

*

अब से मुझे ओरोवील के बारे में जो कुछ कहना होगा उसे लिख लिया जायेगा और उस पर मेरे हस्ताक्षर होंगे।

१५ फरवरी, १९७१

*

"क्या ओरोवील में कोई और कमेटियां होनी चाहियें?" माताजी ओरोवील के लिए किसी और नयी कमेटी को स्वीकार नहीं करतीं। वे कहती हैं : "अधिक कमेटियां, अधिक फालतू बातें।"

आशीर्वाद।

१७ फरवरी, १९७१

*

हममें से कई मानसिक असंतुलन और अव्यवस्था से गुजर चुके हैं या गुजर रहे हैं। जो इस अवस्था में हैं उनके प्रति हमें कैसी वृत्ति अपनानी चाहिये? इन संकटों से बचने के लिए हमें क्या करना और क्या नहीं करना चाहिये?

हमेशा अचंचलता, शांति और स्थिरता होनी चाहिये, और हमेशा कम-से-कम बोलना चाहिये और केवल तभी क्रिया करनी चाहिये जब जरूरी हो। अचेतना से जितना अधिक हो सके बचना चाहिये।

१७ फरवरी, १९७१

*

सच्ची आध्यात्मिकता भागवत कार्य की सेवा में है।

सबके लिए कार्य करने से इन्कार करना स्वार्थ को दिखाता है, और उसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है।

ओरोवील में रहने के योग्य होने के लिए सबसे पहली चीज है अपने-आपको अहं से मुक्त करने के लिए राजी होना।

२४ फरवरी, १९७१

*

(ओरोवील की तीसरी वर्षगांठ के लिए संदेश)

सभी ओरोवीलवासियों के नाम

सामूहिक और व्यक्तिगत चेतना की प्रगति और विकास के लिए मेरे आशीर्वाद।

२८ फरवरी, १९७१

*

ओरोवीलवासी होने के लिए व्यक्ति को कम-से-कम मानवता के प्रबुद्ध भाग का सदस्य होना चाहिये और उच्चतर चेतना की अभीप्सा करनी चाहिये जो भावी जाति का संचालन करेगी।

हमेशा अधिक ऊंचा और हमेशा अधिक अच्छा,—अहं की सीमाओं के परे।

फरवरी, १९७१

*

ओरोवील कोई धर्मार्थ काम नहीं है। "ऐस्पिरेशन" में बितायी एक रात एक दिन के काम के बराबर है।

फरवरी, १९७१

*

व्यक्ति ओरोवील में आराम के लिए नहीं बल्कि चेतना में वृद्धि और भगवान् की सेवा के लिए रहता है।

१ मार्च, १९७१

*

क्या तुम ओरोवील में अपनी छोटी-मोटी निजी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने आये हो?

यह सचमुच आवश्यक नहीं था। इसके लिए तो बाकी सारी दुनिया पड़ी है।

आदमी ओरोवील में भागवत जीवन चरितार्थ करने के लिए आता है जो पृथ्वी पर अभिव्यक्त होना चाहता है।

हर एक को इस दिशा में प्रयास करना चाहिये और तथाकथित "आवश्यकताओं" के सम्मोहन में न रहना चाहिये जो व्यक्तिगत सनकों के सिवाय और कुछ नहीं होतीं।

ऊपर और सामने देखो, पाशविक मानवीय प्रकृति से ऊपर उठने की कोशिश करो। दृढ़ निश्चय करो और तुम देखोगे कि पथ पर चलने में तुम्हारी सहायता की जा रही है।

३ मार्च, १९७१

*

ओरोवील के लिए काम करना अधिक सामंजस्यपूर्ण 'भविष्य' के आगमन को जल्दी लाना है।

२७ मार्च, १९७१

*

अगर उचित मनोभाव हो तो हम अपनी छोटे-से-छोटी क्रिया में भी भगवान् की सेवा कर सकते हैं।

१५ अप्रैल, १९७१

*

भगवान् के प्रति समर्पण-भाव से किये गये काम में ही चेतना का सर्वोत्तम

विकास होता है।

आलस्य और निष्क्रियता का परिणाम है तमस् जो निश्चेतना में गिरना है और प्रगति तथा प्रकाश के एकदम विपरीत है।

अपने अहं पर विजय पाना और केवल भगवान् की सेवा में जीना सच्ची 'चेतना' पाने का आदर्श और सबसे छोटा रास्ता है।

२७ अप्रैल, १९७१

*

मैं हिंसा को एकदम अस्वीकार करती हूं। हम जिस लक्ष्य के लिए अभीप्सा करते हैं उसकी ओर ले जाने वाले मार्ग पर हिंसा की हर एक क्रिया हमें एक कदम पीछे ले जाती है।

भगवान् सर्वत्र हैं और हमेशा अत्यधिक सचेतन। ऐसी कोई चीज कभी नहीं करनी चाहिये जो भगवान् के सामने नहीं की जा सकती।

६ मई, १९७१

*

ओरोवील का प्रतीक

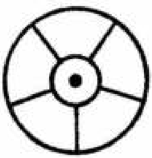

केंद्र में जो बिंदु है वह 'एकत्व' का, 'परम पुरुष' का प्रतिनिधित्व करता है; अन्दर का वृत्त सृष्टि का प्रतीक है, शहर की अवधारणा है; पंखुड़ियां अभिव्यक्त करने, चरितार्थ करने की शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।†

१६ अगस्त, १९७१

*

हर एक वस्तु अपनी जगह पर हो, तो हर एक वस्तु के लिए स्थान होगा।

२६ *अगस्त*, १९७१

*

यह कहने का कि "इस चीज का समावेश असंभव है" बस यही अर्थ है कि उसका सच्चा स्थान खोजा ही नहीं गया।

२६ *अगस्त*, १९७१

*

सभी सनकें प्राणिक गतिविधियां हैं और सबसे अधिक अवांछनीय वस्तुएं।

स्वतंत्रता का अर्थ अपनी कामनाओं का अनुसरण करना नहीं बल्कि इसके विपरीत, उनसे मुक्त होना है।

२७ *अगस्त*, १९७१

*

हर एक समस्या का एक ऐसा समाधान होता है जो सभी को संतोष दे सकता है; लेकिन इस आदर्श समाधान को पाने के लिए दूसरों पर अपनी अभिरुचि का दबाव डालने की बजाय हर एक को उसकी कामना करनी चाहिये।

अपनी चेतना का विस्तार करो और सबके संतोष की अभीप्सा करो।

२८ *अगस्त*, १९७१

*

ओरोवीलवासी को झूठ नहीं बोलना चाहिये। हर एक को जो ओरोवीलवासी बनने की अभीप्सा करता है, कभी झूठ न बोलने का दृढ़ निश्चय करना चाहिये।

२८ *अगस्त*, १९७१

*

तुम प्रश्न का केवल *अपना* पहलू देखते हो, लेकिन अगर तुम अपनी

चेतना का विस्तार करना चाहते हो तो निष्पक्ष भाव से हर तरफ देखना ज्यादा अच्छा होगा। बाद में तुम्हें पता चलेगा कि इस वृत्ति से बहुत लाभ होता है।

१७ सितम्बर, १९७१

*

अपनी चेतना को धरती के आयाम तक विस्तृत करो और तुम्हें हर वस्तु के लिए स्थान मिल जायेगा।

२० सितम्बर, १९७१

*

ओरोवीलवासियों का आदर्श होना चाहिये अहंकार-शून्य होना—अपने अहंकार को संतुष्ट करना हर्गिज नहीं।

अगर वे स्वार्थ-भरे अधिकार के पुराने मानवीय ढर्रे का अनुसरण करें, तो वे दुनिया को बदलने की आशा कैसे कर सकते हैं?

२३ अक्तूबर, १९७१

*

ओरोवील में उनके लिए जो सच्चे सेवक बनना चाहते हैं क्या इतवार छुट्टी का दिन होगा?

शुरू में सप्ताह की व्यवस्था इस प्रकार सोची गयी थी: व्यक्ति छह दिन उस समुदाय के लिए काम करे जिसका वह अंग है; सप्ताह का सातवां दिन भगवान् के लिए आंतरिक खोज करने का और अपनी सत्ता को भागवत इच्छा के प्रति समर्पण के लिए था। तथाकथित इतवार के विश्राम का केवल यही अर्थ और केवल यही सच्चा कारण है।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि सिद्धि के लिए निष्कपटता अनिवार्य शर्त है; किसी भी तरह का कपट अवनति है।

२५ अक्तूबर, १९७१

*

अपनी राय का समर्थन करने के लिए हर एक के पास अच्छे कारण होते हैं, और उनके बीच निर्णय करने में मैं पटु नहीं हूं।

लेकिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मैं जानती हूं कि सच्ची सद्भावना के साथ सभी रायों का अधिक विस्तृत और सच्चे समाधान में सामंजस्य किया जा सकता है। ओरोवील में काम करने वालों से मैं इसकी आशा रखती हूं। ऐसा नहीं कि कुछ लोग औरों के आगे दब जायें, बल्कि इसके विपरीत अधिक विस्तृत और पूर्ण परिणाम पाने के लिए सभी को सम्मिलित प्रयास करना चाहिये।

ओरोवील का आदर्श इस प्रगति की मांग करता है—क्या तुम इसे नहीं करना चाहते?

आशीर्वाद।

१४ नवम्बर, १९७१

*

भगवान् के साथ ऐक्य से प्राप्त हुई स्वाधीनता ही सच्ची स्वाधीनता है।

अपने अहं पर प्रभुत्व पाने के बाद ही तुम भगवान् के साथ एक हो सकते हो।

१९७१

*

ओरोवील श्रीअरविन्द की शिक्षा पर आधारित मानव एकता की पहली उपलब्धि होना चाहता है, जहां सभी देशों के लोग अपनापन अनुभव करेंगे।

जनवरी, १९७२

*

यूनेस्को के लिए संदेश

ओरोवील पृथ्वी पर अतिमानसिक 'सद्वस्तु' के आगमन की गति को तेज करने के लिए है।

उन सब लोगों के सहयोग का स्वागत है जिन्हें लगता है कि जगत् जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है।

हर एक को जानना चाहिये कि वह मृत्यु के लिए तैयार पुराने जगत् के साथ मेल-जोल रखना चाहता है, या नये और अधिक अच्छे जगत् के साथ जो जन्म लेने की तैयारी कर रहा है।

१ फरवरी, १९७२

*

ओरोवील में बहुत-से लोग कहते हैं कि ओरोवील में नियोजित कार्य अभीष्ट नहीं हैं; वे सहज-स्फुरित कार्य के पक्ष में हैं।

सहज-स्फुरित कार्य केवल कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति ही कर सकता है।

क्या कोई प्रतिभाशाली होने का दावा करता है?...

आशीर्वाद।

३ जुलाई, १९७२

*

निम्न प्रकृति के सभी आवेगों का अनुसरण करना निश्चय ही अतिमानसिक तरीका नहीं है और उसका यहां कोई स्थान नहीं है।

हम जो चाहते हैं वह है अतिमानस के आगमन की गति को तेज करना, आवेगों और कामनाओं से भरी मानवता की कुरूप अवस्था में पतन बिलकुल नहीं।

१० जुलाई, १९७२

*

जब तक हम झूठ बोलते जायेंगे, तब तक हम सुखद 'भविष्य' को अपने से बहुत दूर धकेलते रहेंगे।

१३ जुलाई, १९७२

*

ओरोवील उन व्यक्तियों को आश्रय देना चाहता है जो ओरोवील में रहकर खुश होते हैं। जो इससे असंतुष्ट हैं उन्हें दुनिया में वापस चले जाना चाहिये जहां वे जो चाहें कर सकते हैं और जहां हर एक के लिए जगह है।

२ अक्तूबर, १९७२

*

ओरोवील में जिन लोगों को उनके गलत वक्तव्य के आधार पर लिया गया है, उनके लिए केवल एक ही समाधान है : वह है अपने अंदर से सारे मिथ्यात्व को, यानी, उस सब को दूर करना जो उनकी चेतना में भागवत उपस्थिति का विरोध करता है।

२२ अक्तूबर, १९७२

*

ओरोवील का सच्चा भाव है *सहयोग* और यह अधिकाधिक होना चाहिये। सच्चा सहयोग देवत्व तक जाने का रास्ता तैयार करता है।

२२ अक्तूबर, १९७२

*

(उन ओरोवीलवासियों के लिए जो अभिनन्दन के इन तीन संभव उद्‌गारों का उपयोग करना चाहते हैं)

"ओ सैर्विस द ला वेरिते"
परम 'सत्य' की सेवा में
'सत्य'

३० अक्तूबर, १९७२

*

सामंजस्य
सद्‌भावना
अनुशासन
सत्य

मैं तुम्हारे साथ तभी काम कर सकती हूं जब तुम बिलकुल झूठ न बोलो और 'सत्य' की सेवा में लगे रहो।

३१ अक्तूबर, १९७२

*

मरने से पहले, मिथ्यात्व अपनी पूरी पेंग में उठता है।

अभी तक मनुष्य केवल विध्वंस के पाठ को समझता है। क्या मनुष्य के 'सत्य' की ओर आंखें खोलने से पहले उसे आना ही पड़ेगा?

मैं सबसे प्रयास की मांग करती हूं ताकि उसे न आना पड़े।

केवल 'सत्य' ही हमारी रक्षा कर सकता है, वाणी में सत्य, क्रिया में सत्य, संकल्प में सत्य, भावों में सत्य। यह 'सत्य' की सेवा करने या नष्ट हो जाने के बीच एक चुनाव है।

२६ नवम्बर, १९७२

*

ओरोवील का निर्माण एक प्रगतिशील अतिमानवजाति के लिए हुआ है, अधःमानवजाति के लिए नहीं जिसका संचालन उसकी सहजवृत्तियां करती हैं और जिस पर उसकी कामनाओं का आधिपत्य रहता है। जो अधःमानव-जाति, पाशविक मानवजाति के अंग हैं, उनके लिए यहां कोई स्थान नहीं है।

ओरोवील उन लोगों के लिए है जो अतिमानस की अभीप्सा करते हैं और उस तक पहुंचने का प्रयास करते हैं।

१ दिसम्बर, १९७२

*

(५ दिसम्बर, १९७२ की रात के तूफान के बारे में)

यह प्रकृति द्वारा दी गयी एक चेतावनी है, कि जिनके अंदर ओरोवील का सच्चा भाव नहीं है उन्हें या तो बदलना होगा या अगर वे बदलना न चाहें तो उन्हें यहां से चले जाना होगा।

७ दिसम्बर, १९७२

*

हर एक को प्रगति करनी है और अधिक सच्चा तथा निष्कपट बनना है।

ओरोवील का निर्माण अहंकारों और उनके लालचों की संतुष्टि के लिए नहीं, बल्कि एक नये जगत्, अतिमानसिक जगत् के लिए हुआ है जो भागवत पूर्णता को अभिव्यक्त करता है।

१२ दिसम्बर, १९७२

*

ओरोवील का निर्माण अतिमानवजाति के लिए हुआ है, उनके लिए जो अपने अहं पर विजय पाना और सभी कामनाओं को त्यागना चाहते हैं, जो अतिमानस को प्राप्त करने के लिए अपने-आपको तैयार करना चाहते हैं। केवल वे ही सच्चे ओरोवीलवासी हैं।

जो लोग अपने अहं की आज्ञा का पालन करना चाहते हैं और अपनी सभी कामनाओं को संतुष्ट करना चाहते हैं वे अवमानवजाति के सदस्य हैं और उनके लिए यहां कोई स्थान नहीं है। उन्हें जगत् में वापस चले जाना चाहिये जो उनका सच्चा स्थान है।

१८ दिसम्बर, १९७२

*

उन सबके लिए जो झूठ बोलते हैं

इस एक साधारण-सी हकीकत से कि तुम झूठ बोलते हो, तुम यह प्रमाणित कर देते हो कि तुम सच्चे ओरोवीलवासी नहीं बनना चाहते।

अगर तुम ओरोवील में रहना चाहते हो तो तुम्हें झूठ बोलना बंद करना होगा।

१९ दिसम्बर, १९७२

*

सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए व्यक्ति को *कभी झूठ नहीं बोलना* चाहिये।

२८ दिसम्बर, १९७२

*

क्या मानवजाति के दुःख-दैन्य और समाज की अव्यवस्थाओं का एकमात्र हल ओरोवील ही है?

एकमात्र हल नहीं। यह रूपांतरण का केंद्र है, ऐसे मनुष्यों का एक छोटा-सा केंद्र-बिंदु जो अपने-आपको रूपांतरित कर रहे हैं और जगत् के सामने एक उदाहरण रख रहे हैं। ओरोवील यही होने की आशा करता है। जगत् में जब तक अहंभावना और दुर्भावना का अस्तित्व है, व्यापक रूपांतर असंभव है।

२८ दिसम्बर, १९७२

*

ओरोवील के लिए आप कैसी राजनीतिक व्यवस्था चाहती हैं?

एक मजेदार परिभाषा मेरे दिमाग में है: भागवत अराजकता। लेकिन जगत् इसे नहीं समझेगा। मनुष्यों को अपने चैत्य के प्रति सचेतन होना चाहिये और सहज रूप से, निश्चित नियमों और विधानों के बिना, अपने-आपको व्यवस्थित करना चाहिये—यह आदर्श है।

इसके लिए, व्यक्ति को अपनी चैत्य चेतना के संपर्क में होना चाहिये, व्यक्ति को उसके पथ-प्रदर्शन में रहना चाहिये और अहंकार के अधिकार और प्रभाव को अदृश्य हो जाना चाहिये।†

२८ दिसम्बर, १९७२

*

ओरोवील का निर्माण उन लोगों के लिए हुआ है जो प्रगति करना चाहते हैं, *अपनी निजी* प्रगति।

यह हर एक के लिए लिखा गया है; हर एक व्यक्ति का सबसे पहले अपने-आपसे सरोकार है।

२८ दिसम्बर, १९७२

*

जब तक उनमें कामनाएं हैं, वे सच्चे ओरोवीलवासी नहीं हैं।

उन्हें शब्दों से खेलना न चाहिये : कामनाओं और अभीप्सा में जमीन-आसमान का अन्तर है। हर सच्चा आदमी यह जानता है। और सबसे पहली चीज यह है कि उन्हें *अपने अहं और अपनी कामनाओं* को भगवान् मान लेने की भूल नहीं करनी चाहिये। चूंकि वे अपने-आपको धोखा देते हैं इसलिए यह घपला होता है।

उन्हें अपने अंदर भागवत उपस्थिति के प्रति सचेतन होना चाहिये, और उसके लिए, अहं को चुप करवाना होगा और कामनाओं को अदृश्य होना होगा।†

२८ दिसम्बर, १९७२

*

ईसा उन बहुत-से रूपों में से एक है जिन्हें भगवान् ने धरती के साथ नाता जोड़ने के लिए धारण किया है। लेकिन और भी बहुत-से हैं और होंगे; और ओरोवील के बच्चों को एक ही धर्म की ऐकांतिकता के स्थान पर ज्ञान की उदार श्रद्धा को लाना चाहिये।

१९७२

*

मिथ्यात्व के लिए केवल एक ही समाधान है : वह है अपने अंदर से उन सभी चीजों को दूर करना जो हमारी चेतना में भागवत उपस्थिति का विरोध करती हैं।†

३१ दिसम्बर, १९७२

*

तुम क्या करते हो इससे नहीं बल्कि किस भाव से करते हो इससे कर्मयोग होता है।†

५ फरवरी, १९७३

*

ओरोवील राजनीति का स्थान नहीं है। ओरोवील में और ओरोवील के

कार्यालयों में कोई राजनीति नहीं होनी चाहिये।

१५ फरवरी, १९७३

*

ओरोवील को जो बनना चाहिये वह बन जायेगा :

केवल तभी जब ओरोवील में रहने वाले लोग *झूठ बोलना बंद कर देंगे*।

१८ मार्च, १९७३

*

जब तुम कहते हो "मैं भगवान् की सेवा करना चाहता हूं", तो क्या तुम यह मानते हो कि 'सर्वज्ञ' यह नहीं जानते कि यह झूठ है?

१८ मार्च, १९७३

*

ओरोवील श्रीअरविन्द के आदर्श को चरितार्थ करने के लिए बनाया गया है, जिन्होंने हमें कर्मयोग सिखलाया है। ओरोवील उन लोगों के लिए है जो कर्मयोग करना चाहते हैं।

ओरोवील में रहने का अर्थ है कर्मयोग करना। इसलिए सभी ओरोवील-वासियों को कोई-न-कोई काम लेना चाहिये और उसे योग के रूप में करना चाहिये।

२७ मार्च, १९७३

27.3.73.

Auroville is created to realise the ideal of Sri Aurobindo and taught us the Karma yoga. Auroville is for those who want to do the Yoga of work. To live in Auroville means to do the Yoga of work. So all Aurovilians must take up a work and do it as yoga.

Blessings

मातृमंदिर

मातृमंदिर मनुष्य की पूर्णता की अभीप्सा के लिए भगवान् के उत्तर का प्रतीक बनना चाहता है।

प्रगतिशील मानव एकता में अभिव्यक्त होते हुए भगवान् के साथ ऐक्य।

१४ अगस्त, १९७०

*

मातृमंदिर श्रीअरविन्द की शिक्षा के अनुसार 'वैश्व जननी' का प्रतीक बनना चाहता है।

*

मातृमंदिर ओरोवील की आत्मा होगा।

जितनी जल्दी आत्मा आ जाये, उतना ही अधिक अच्छा, सभी के लिए, विशेषकर ओरोवीलवासियों के लिए।

१५ नवम्बर, १९७०

*

मातृमंदिर के निर्माण के लिए, क्या केवल ओरोवीलवासी काम करेंगे या वेतन पाने वाले कर्मचारी, और दूसरे शुभचिन्तक भी करेंगे?

ज्यादा अच्छा होगा कि कार्य की व्यवस्था वेतन-भोगी कर्मचारियों के बिना हो ताकि हर परिस्थिति में काम को जारी रखने की निश्चिति बनी रहे।

१६ फरवरी, १९७२

*

(मातृमंदिर की नींव रखने के समय दिया गया संदेश)

मातृमंदिर भगवान् के प्रति ओरोवील की अभीप्सा का जीवंत प्रतीक हो।

२१ फरवरी, १९७१

Let the Matrimandir
be the living symbol of Auroville's
aspiration for the
Divine

*

(मातृमंदिर का काम शुरू होने पर दिया गया संदेश)

सहयोग का भ्रातृसंघ।

आनन्द और 'प्रकाश' में 'एकता' के प्रति अभीप्सा।

आशीर्वाद।

१४ मार्च, १९७१

*

हम निर्माण-काल में हैं। यह अत्यावश्यक है कि जो ओरोवीलवासी 'सेंटर' में रहते हैं वे मातृमन्दिर के निर्माण के लिए कार्य करें।

जो लोग मातृमन्दिर के लिए काम नहीं करना चाहते उन्हें 'सेंटर' में नहीं रहना चाहिये।

१० अप्रैल, १९७१

*

मातृमंदिर सीधा भगवान् के प्रभाव में है और निश्चय ही हम अपने-आप चीजों को जैसे व्यवस्थित करते उसकी अपेक्षा वे ज्यादा अच्छी तरह करते हैं।

अक्तूबर, १९७१

*

केवल एक ही मातृमंदिर है, ओरोवील का मातृमंदिर।

दूसरों का कुछ और नाम होना चाहिये।

५ *अक्तूबर, १९७१*

*

इमारत की सुरक्षा और मजबूती व्यक्तिगत प्रश्नों से पहले आनी चाहिये।

सभी चीजें सामंजस्यपूर्ण हों, इसका भार मैं तुम्हारे ऊपर सौंपती हूं।

२० *अक्तूबर, १९७१*

*

क्या आप जिस तरह से मातृमंदिर का निर्माण करवाना चाहती हैं उसके बारे में कुछ विस्तार से कहेंगी ताकि हमारे अन्दर और शंकाएं न पैदा हों और हम हलके-फुलके और विश्वस्त हृदय के साथ उसका निर्माण कर सकें?

मजबूती, सुरक्षा, दृढ़ता, सामंजस्यपूर्ण संतुलन।

नींव विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और उसका काम विशेषज्ञों के द्वारा होना चाहिये।

हर शुभचिन्तक के लिए स्थान है, और उनके लिए जो अपनी पूरी सचाई और सरलता के साथ अपने काम को सर्मपित करना चाहते हैं, उन्हें उपयोगी रूप से काम में लगाये रखने के लिए पर्याप्त काम है।

३ *नवम्बर, १९७१*

*

(मातृमंदिर के गोले के चार आधारस्तंभों के शुरू करने के समय दिया गया संदेश)

ओरोवील प्रगतिशील एकता का प्रतीक हो।

और इसे चरितार्थ करने का सबसे अच्छा तरीका है कार्य और भावनाओं में, समस्त जीवन के समर्पण में 'भागवत पूर्णता' के प्रति अभीप्सा की एकता।

२१ फरवरी, १९७२

*

(चार स्तंभों के अर्थ)

उत्तर	महाकाली	पूरब	महालक्ष्मी
दक्षिण	महेश्वरी	पश्चिम	महासरस्वती

*

(भूमिगत बारह कक्षों के नाम जो मातृमंदिर की नींव में बनेंगे)

'सचाई', 'नम्रता', 'कृतज्ञता', 'अध्यवसाय', 'अभीप्सा', 'ग्रहणशीलता', 'प्रगति', 'साहस', 'भद्रता', 'उदारता', 'समता', 'शांति'।

जुलाई १९७२

*

(मातृमंदिर के चारों ओर के बारह बगीचों के नाम)

'सत्', 'चित्', 'आनन्द', 'प्रकाश', 'जीवन', 'शक्ति', 'वैभव', 'उपयोगिता', 'प्रगति', 'यौवन', 'सामंजस्य', 'पूर्णता'।

*

(मातृमंदिर के आधार के फर्श की कांक्रीटिंग के समय दिया गया संदेश)

आओ, हम सब 'भागवत सत्य' की अभिव्यक्ति के लिए बढ़ती हुई सचाई के साथ काम करें।

३ मई, १९७२

*

(श्रीअरविन्द की जन्म-शताब्दी के पहले दिन मातृमन्दिर के कार्यकर्ताओं को दिया गया संदेश)

सबके लिए सद्भावना और शांति।

१५ अगस्त, १९७२

कम्यूनिटी-सम्बन्धी कामकाज

सर्वसामान्य

'ओरोमॉडल एक प्रयास और परीक्षण है। जैसे-जैसे उसका विकास होगा, आवश्यकता के अनुसार उसके संगठन में संशोधन किये जायेंगे।

हर एक संगठन को लचीला और सुनम्य होना चाहिये ताकि वह निरंतर प्रगति कर सके और आवश्यकता पड़ने पर अपने-आपमें सुधार ला सके।

१२ फरवरी, १९६३

*

माताजी,

क्या मैं 'क' की चिट्ठी के उत्तर में लिख सकता हूं कि अमरीकी मण्डप (जो ओरोवील में बनेगा) के बारे में अमरीका या आश्रम में लिखी गयी किसी भी पुस्तिका या पैम्फलेट के लिए पहले आपकी स्वीकृति लेनी चाहिये?

ओरोवील की किसी भी योजना के बारे में कुछ भी मेरी स्वीकृति के बिना नहीं छप सकता।

आशीर्वाद। २२ मार्च, १९६६

*

मधुर मां,

हमारी तरकारियों की फसल पर कीड़ों का आक्रमण हुआ है। अभी हम इनकी रोक-थाम के लिए विषहीन उपायों के बारे में पता लगा रहे हैं, और हमने सोचा कि जब तक इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें पर्याप्त सूचनाएं नहीं मिलतीं, तब तक बहुत सावधानी के साथ किसी कीट-नाशक दवाई का इस्तेमाल कर लें। क्या हमें यह करने की स्वीकृति है और उनके उपयोग में आपका संरक्षण मिल सकता है?

बहुत बार हल्की और अहानिकर रक्षक-दवाई विषैली से ज्यादा प्रभावशाली होती है।

१ अप्रैल, १९६६

*

मुझे लगता है कि ओरोवील की धरती तक अभीप्सा कर रही है। क्या यह सच है, मधुर मां?

हां, स्वयं धरती की चेतना होती है, यद्यपि यह चेतना बौद्धिक नहीं होती और अपने-आपको अभिव्यक्त नहीं कर सकती।

२१ मार्च, १९६८

*

(ओरोवील के 'संपर्क कार्यालय' के लिए संदेश जिसकी स्थापना धन जुटाने और ऐसे व्यक्तियों के बारे में छान-बीन करने के लिए की गयी है जो ओरोवील देखने या वहां रहने में रुचि रखते हैं)

'संपर्क कार्यालय' का अध्यक्ष होने के लिए व्यक्ति को सबके लिए और हर देश के लिए एकदम समानता की भावना रखनी चाहिये।

इस मनोभाव में पूरी सच्चाई की आवश्यकता होती है।

अप्रैल, १९६८

*

दिव्य मां,

क्या आप चाहती हैं कि जो लोग ओरोवील के लिए काम करने आते हैं उनके चित्र आपके पास भेजने से पहले मैं व्यक्तिगत रूप से उनके साथ मुलाकात करूं?

हां।

२० जून, १९६८

*

दिव्य मां,

पिछले रविवार को आश्रम के कई छोटे बच्चे अप्रत्याशित रूप से ओरोवील की लॉरी में घूमने चले गये और उन्होंने सारी सुबह ओरोवील में बितायी। उनकी देखभाल के लिए कुछ वयस्क भी थे जिनमें मेरे साथ 'क', 'ख', 'ग' भी रहे।

यदि हम भली-भांति देखभाल करें तो बच्चों को रविवार के दिन ओरोवील जाने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिये, या नहीं?

हां, वे जा सकते हैं अगर सब कुछ भली-भांति व्यवस्थित हो।

आशीर्वाद।

२८ जून, १९६८

*

दिव्य मां,

१. क्या ओरोवील में 'कर्मचारी विभाग' की आवश्यकता है?

नहीं।

२. क्या उसे 'संपर्क कार्यालय' का अंग होना चाहिये?

विभागों, पदों और नामों को मत बढ़ाओ। इससे व्यर्थ में जीवन जटिल बन जाता है।

२८ जून, १९६८

*

('ओरोफूड प्रा. लि.' के शिलान्यास के समय दिया गया संदेश)

हम अधिक अच्छे आगामी कल के लिए काम करेंगे।

१४ अगस्त, १९६८

*

('पीस' के बारे में—मातृमंदिर के कार्यकर्ताओं का शिविर और उसके आस-पास का स्थान।

मैं चाहूंगी कि यह सारा स्थान "पीस" (शांति) कहलाये, और वहां शांति, यथार्थ शांति का राज्य हो, केवल रहने वालों के बीच नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के समूचे ओरोवील में।

२१ दिसम्बर, १९६८

*

ऐसा लगता है कि ओरोवील के और स्थानों की अपेक्षा 'पीस' में भागवत कार्य का अधिक विरोध हो रहा है। क्या यह सच है? क्या इसका कोई गूढ़ कारण है?

तुम खुद विश्वास रखो और शांत बने रहो।

यह संक्रामक है।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१९६९

*

(ओरोवील की ब्लॉक बनाने वाली यूनिट के उद्‌घाटन पर दिया गया संदेश)

हमेशा पूरी सचाई के साथ अपना अच्छे-से-अच्छा करना।

हमेशा पूरी सचाई के साथ सर्वोत्तम बनना।

२३ जून, १९६९

*

(ओरोसन के घर, 'सर्टिट्यूड-कम्यूनिटी' के लिए संदेश)

'नयी चेतना' के लिए एक 'नया घर'।

आशीर्वाद।

२५ जून, १९६९

*

'ओरोमॉडल' एक ठोस परीक्षण करने और यह सीखने के लिए बन रहा है कि ओरोवील में कैसे रहना चाहिये।

१८ अगस्त, १९६९

*

दिव्य मां,

मैं ओरोवील के निर्माण में मदद करना चाहता हूं। मुझे लगता है कि मदद करने के लिए सबसे अधिक व्यावहारिक तरीका यह है कि मैं वापिस अमरीका जाकर ओरोवील के लिए कार्य करूं। क्या यह आपकी इच्छा है?

मेरी इच्छा है कि तुम्हें जैसे लगता है उसके अनुसार, चाहे अमरीका में या यहां, कुछ उपयोगी, व्यावहारिक और सार्थक काम करो।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

३१ दिसम्बर, १९६९

*

सामान्य तौर पर ओरोवील और विशेषकर 'ओरोमॉडल' में रहने का क्या उद्देश्य है? कम्यूनिटी की सेवा करना या 'भागवत चेतना' का सच्चा सेवक बनना?

'ओरोमॉडल' में रहने का उद्देश्य है ओरोवील में रहना सीखना, वहां ओरोवील में रहना सीखने के लिए सभी आवश्यक परीक्षण करना।

हम एक ऐसा मार्ग खोजना चाहते हैं जिसमें कम्यूनिटी भगवान् के लिए जिये।

हर एक व्यक्ति का अपना रास्ता होता है लेकिन सारी कम्यूनिटी को ऐसा रास्ता खोज निकालना चाहिये जो सबके अनुकूल हो।

(२२ मई, १९७०

*

(विभिन्न विषयों के संबंध में ओरोवील की एक कम्यूनिटी के निवासियों के साथ पूछताछ के बारे में)

शायद उन लोगों से पूछना ज्यादा अच्छा हो जिन्होंने योग के गंभीर अभ्यास द्वारा, 'उच्चतर प्रज्ञा' की कम-से-कम एक झांकी पा ली हो।

१९७०

*

दिव्य मां,

पिछली बार ओरोवील में मेरे बीमार पड़ने का क्या कारण था? क्या मैं फिर से ओरोवील में रह पाऊंगा?

अपने बारे में ज्यादा मत सोचो।

प्रेम और आशीर्वाद।

२९ नवम्बर, १९७०

*

('ऐस्पिरेशन स्कूल' के उद्घाटन पर दिया गया संदेश)

जानने और प्रगति करने का सच्चा संकल्प।

१५ दिसम्बर, १९७०

*

('ऐस्पिरेशन स्कूल' में सिखायी जाने वाली भाषाएं)

(१) तमिल (२) फ्रेंच

(३) भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी का स्थान लेने के लिए सरल संस्कृत।
(४) अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेजी।

१५ दिसम्बर, १९७०

*

(पॉण्डिचेरी में 'ओरोवील कार्यालय' के लिए संदेश)

१९७१
मधुर वर्ष

२ जनवरी, १९७१

*

('गजट ओरोवीलियन' के लिए संदेश)

हम चाहेंगे कि यह 'गजट' भविष्य का और प्रगति का सन्देशवाहक हो जिसे मानवजाति के लिए चरितार्थ करना है।

जनवरी, १९७१

*

(किसी के पास भोजन और पॉण्डिचेरी से ओरोवील के 'ऐस्पिरेशन स्कूल' तक आने-जाने के किराये का बिल पहुंचा। उसने माताजी को लिखा, उन्होंने उत्तर दिया :)

पढ़ाई निःशुल्क है। लेकिन स्वभावतः आने-जाने के किराये और खाने का पैसा देना होगा।†

६ फरवरी, १९७१

*

(किसी ने पूछा कि क्या ओरोवील में रासायनिक खाद या कीटनाशक

औषधियों का उपयोग करना चाहिये।)

नहीं, नहीं, नहीं।

ओरोवील को उन पुरानी भूलों में न जा गिरना चाहिये जो उस अतीत की हैं जो फिर से उठने की कोशिश कर रहा है।

मार्च, १९७१

*

रासायनिक खाद और घातक कीटनाशक दवाइयों के बिना उगायी फसल लाभदायक होती है।

१९७१

*

('ऐस्पिरेशन' के पास 'लास्ट स्कूल' के उद्घाटन के समय दिया गया संदेश)

भविष्य उनके हाथों में है जो प्रगति करना चाहते हैं।

उन्हें आशीर्वाद जिनका आदर्श-वचन है : "हमेशा अधिक अच्छा।"

भौतिक में भगवान् 'सौंदर्य' के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

६ *अक्तूबर, १९७१*

*

(पुष्प-रोपणी [फूलों की नर्सरी]—"ब्यूटी" के लिए संदेश)

पुष्प वनस्पति-जगत् की प्रार्थनाएं हैं।।

पौधे परम प्रभु को अपना सौंदर्य समर्पित करते हैं।

५ *नवम्बर, १९७१*

*

(ओरोवील के भूगोलीय केंद्र पर स्थित बरगद के पेड़ के चारों तरफ के बगीचे का अर्थ)

एकता।

*

दिव्य मां,

महालक्ष्मी के बारे में श्रीअरविन्द ने कहा है : "अगर यह स्वयं को ऐसे मनुष्यों के हृदयों में देखे जो स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, धूर्तता, द्वेष, संघर्ष से घिरे हों, अगर पवित्र चषक में छल, लोभ और कृतघ्नता मिली हों, अगर आवेग का विकार और अपरिष्कृत कामना भक्ति का ह्रास कर रही हों, तो ऐसे हृदयों में करुणामयी और लावण्यमयी देवी नहीं ठहरेंगी। एक भागवत विरक्ति उनमें पैदा हो जाती है और वे पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं जो आग्रह करें या श्रम करती रहें ...।"

इस भय से कि आप कहीं ऐसा ही न करें, और इस दुःख से कि हमने आपको दुःख दिया है, हम, 'ऐस्पिरेशन वासी', आपसे क्षमा चाहते हैं। हममें से कइयों ने, कई बार, बदलने का वायदा किया है; हममें से कई आज फिर से वही वायदा कर रहे हैं। हम आपकी कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं। अपने प्रेम के साथ।

प्रगति और रूपान्तर के लिए मेरा प्रेम और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।[१]

१२ अप्रैल, १९७२

*

परम प्रिय मां,

"बाहरी" जगत् के साथ व्यावहारिक संपर्क में मेरे सामने यह प्रश्न आता है कि मैं किस हद तक उनके रंग-ढंग और औपचारिकताओं

---

[१] अपना उत्तर लिखते समय माताजी ने कहा कि इस चिट्ठी को मढ़वाकर ध्यान के स्थान पर रखना चाहिये।

का साथ दूं और किस हद तक हमारे ओरोवील के प्रयासों की नवीनता पर जोर दूं।

आपके दो शब्द ओरोवील के बाहर के जगत् के साथ मेरे संपर्क में अधिक प्रकाश लायेंगे।

पूरी ग्रहणशीलता और सचाई के साथ भगवान् की सेवा में।

आशीर्वाद।

२ जनवरी, १९७३

*

सामाजिक नियम

(किसी ने ओरोवील में बच्चे के जन्म के बारे में समुचित व्यवस्था-संबंधी प्रश्न पूछा। माताजी ने सलाह दी कि वहां केवल डॉक्टर और पिता को उपस्थित रहना चाहिये, फिर उन्होंने जोड़ा :)

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है शांति के वातावरण में निश्चल बने रहना ताकि 'शक्ति' बिना किसी बाधा के कार्य कर सके।†

१९६७

*

... निश्चय ही शादी-ब्याह का सारा विचार ही हास्यास्पद है क्योंकि मैं इस चीज को बचकाना समझती हूं।

जानते हो, ओरोवील में शादियां नहीं होंगी। अगर कोई स्त्री-पुरुष आपस में प्रेम करते हैं और एक साथ रहना चाहते हैं तो वे बिना किसी रस्म-रिवाज के ऐसा कर सकते हैं। अगर वे अलग होना चाहते हैं तो यह भी पूरी छूट के साथ कर सकते हैं। जब लोगों में परस्पर प्रेम न रहे तो भला उन्हें साथ रहने के लिए क्यों विवश किया जाये?

अगर लोग इस विषय में मुक्त हो जायें तो बहुत-से अपराधों को रोका जा सकेगा। उन्हें एक-दूसरे से बातें छिपानी नहीं पड़ेंगी या एक-दूसरे से अलग होने के लिए अपराध नहीं करने पड़ेंगे। निस्संदेह, अगर वे सचमुच

आपस में प्रेम करते हों तो स्वभावतः, बिना किसी नियम के बंधन में बंधे हमेशा साथ रहेंगे। इसीलिए ये विवाह-संस्कार और अनुष्ठान इतने बचकाने लगते हैं।

ओरोवील में जन्मे बच्चों का पारिवारिक नाम नहीं होगा। उनका केवल अपना नाम होगा।†

१५ जून, १९६८

*

(माताजी ने सुझाव दिया कि विवाह के संबंध में उनका निम्नलिखित पत्र उपर्युक्त वक्तव्य के साथ प्रकाशित किया जाये।)

अपने भौतिक जीवन और सांसारिक रुचियों को एक करना, जीवन की पराजयों और विजयों, कठिनाइयों और सफलताओं का एक साथ सामना करने के लिए साथी बनना—यह विवाह का पक्का आधार है, लेकिन तुम जानते ही हो कि इतना पर्याप्त नहीं है।

संवेदनों में एक होना, समान रुचि और समान सौंदर्यात्मक अभिरुचियां होना, परस्पर और आपस में समान वस्तुओं में समान रूप से स्पंदित होना—यह अच्छा है, यह आवश्यक है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

गंभीर भावनाओं में, पारस्परिक स्नेह और कोमलता की भावना में एक होना जो जीवन के सभी धक्कों के बावजूद न बदले और हर तरह की श्रान्ति, विक्षोभ और निराशा को सह जाना, सभी अवस्थाओं में और सभी परिस्थितियों में हमेशा खुश रहना, सभी हालतों में एक-दूसरे की उपस्थिति में विश्राम, शांति और आनंद पाना—यह अच्छा है, बहुत अच्छा है, अनिवार्य है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

अपने मस्तिष्कों को एक करना, अपने विचारों को सामंजस्यपूर्ण बनाना और एक-दूसरे का पूरक बनाना, अपनी बौद्धिक अवधारणाओं और खोजों में दोनों का हिस्सा लेना; संक्षेप में, अपने मानसिक क्रिया-कलापों के क्षेत्र को दोनों के द्वारा, एक साथ प्राप्त की हुई समृद्धि के द्वारा, विस्तृत करके एक-सा बनाना—यह अच्छा है, यह एकदम आवश्यक है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

इन सबके परे, गहराइयों में, केंद्र में, सत्ता के शिखर पर, सत्ता का 'परम सत्य' स्थित है, एक 'शाश्वत प्रकाश' जो जन्म, देश, परिवेश, शिक्षा की सभी अवस्थाओं से मुक्त है; हमारी आध्यात्मिक प्रगति के 'वे' ही मूल, कारण और स्वामी हैं; 'वे' ही हमारे जीवन को स्थायी दिशा देते हैं; 'वे' ही हमारी नियति को निर्धारित करते हैं; 'उस' परम की चेतना के साथ तुम्हें एक होना है। अभीप्सा और आरोहण में एक होना, आध्यात्मिक पथ पर कदम-से-कदम मिलाकर चलना, यही स्थायी ऐक्य का रहस्य है।

मार्च, १९३३

*

'ऐस्पिरेशन' में (ओरोवील)

वे आश्रम की तरह उसी समय और उसी कार्यक्रम के अनुसार ध्यान करना चाहते हैं। आवश्यक सूचना 'क्ष' को दी जाये।

*

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि बृहस्पतिवार और रविवार को आश्रम के समय पर ही हम जो "ध्यान" करने की कोशिश कर रहे हैं, वह न्यूनतम अनुशासन है जो 'ऐस्पिरेशन' को अपने ऊपर लगाना चाहिये।

क्या नीरवता के ये विरले क्षण और मिलकर एकाग्र होने का प्रयास—अगर ध्यान न भी हो—आपकी शक्ति प्राप्त करने और अपने-आपको आपके और श्रीअरविन्द के प्रति, जो हमारी सामूहिक आत्मा को रूप देने में सहायता करते हैं, जरा-सा और खोलने के लिए सुअवसर नहीं हैं?

बाहर से किसी पर भी किसी तरह का दबाव न डालने की इच्छा करते हुए भी, क्या शुरू में यह प्राथमिक अनुशासन आवश्यक नहीं है?

मिलकर एकाग्र होना सचमुच एक बहुत अच्छी चीज है और तुम्हारे सचेतन

होने में तुम्हारी सहायता करती है। लेकिन इसे लादा नहीं जा सकता। मैं तुम्हें और दूसरे लोगों को यह सलाह देती हूं कि उन लोगों के लिए, जो इसमें भाग लेना चाहते हैं, प्रतिदिन इस मौन वेला की व्यवस्था करो, लेकिन औरों पर कुछ न लादो। यह अनिवार्य नहीं है लेकिन यह अच्छा है।

१३ नवम्बर, १९७०

*

ओरोवील

धूम्रपान को सार्वजनिक अभिशाप नहीं बनना चाहिये।

जो लोग धूम्रपान किये बिना नहीं रह सकते वे किसी ऐसे कमरे में सिगरेट पी सकते हैं जो इसी काम के लिए अलग से रखा गया हो।

१९७१

*

१५ साल से कम उम्र के बच्चे केवल शिक्षा-संबंधी चलचित्र देखेंगे।†

ओरोवील में दिखाये जाने वाले चलचित्रों के चुनाव में सावधानी बरतनी चाहिये।†

उन सब चीजों से बचना चाहिये जो निम्न हरकतों और क्रियाओं को प्रोत्साहन देती हैं।

२५ फरवरी, १९७२

*

ओरोवीलवासी अपने मित्रों को अपने साथ घर में रख सकते हैं, अगर वे उनके खर्च में सहायता करें। निवास अस्थायी होना चाहिये, कुछ दिनों के लिए।

एक सप्ताह से अधिक नहीं।

२७ फरवरी, १९७१

*

ओरोवील में नशीली दवाएं निषिद्ध हैं।

अगर ऐसे लोग हैं जो उनका उपयोग करते हैं तो वे धोखेबाजी करते हैं।

'भागवत चेतना' के प्रति सचेतन होने के लिए उत्सुक ओरोवीलवासी तंबाकू, मद्य या नशीली दवाएं नहीं लेता।

फरवरी, १९७१

*

तीन साल पहले, आपने कहा था :

"मुझसे पूछा गया है कि ओरोवील में रहने के क्या नियम हैं।

"भगवान् की कृपा से, अभी तक कोई नियम नहीं है।

"जब तक कोई नियम नहीं है, तब तक आशा है।"

जुलाई में, आपने फिर से 'ऐस्पिरेशन' के युवकों से कहा था, "मैं ओरोवील के लिए कोई नियम नहीं बनाना चाहती जैसा कि मैंने आश्रम के लिए किया था।" लेकिन हाल ही में आपने लिखा है, "ओरोवील में नशीली दवाएं निषिद्ध हैं।" आपके ओरोवील के अंतर्दर्शन में कोई परिवर्तन आया है क्या?

शायद ओरोवीलवासी चेतना के उस स्तर तक नहीं पहुंच पाये हैं जिसकी उनसे आशा की जाती है।

४ मार्च, १९७१

*

माताजी, क्या यह सच है कि यद्यपि आप यह नहीं चाहतीं कि 'ऐस्पिरेशन' के लोग नशीली दवाएं लें, लेकिन दूसरी ओर 'सेंटर' में या ओरोवील के दूसरे भागों में आप उसे सह लेती हैं?

यह झूठ है।

मैंने कहा है, *ओरोवील में नशीली दवाएं नहीं*, और मैं अपने शब्दों से पीछे नहीं हटती।

क्या यह सच है कि तत्त्वतः आप नशीली दवाओं के अनुभव के विरुद्ध नहीं हैं?

यह तथाकथित अनुभव प्रगति को संकुचित और चेतना को क्षति पहुंचाता है; भगवान् के पथ पर यह गर्त में जा गिरना है!

मेरे ख्याल से यह स्पष्ट है।

१५ अप्रैल, १९७१

*

मातृमंदिर वर्कर्स कैंप किचन ऐण्ड डाइनिंग रूम

ये प्राथमिक रूप से मातृमंदिर-कार्यकर्ताओं के लिए हैं, उन्हें साफ रखना चाहिये और उपयोग करते समय सफाई रखनी चाहिये। यहां धूम्रपान नहीं करना चाहिये और शांति में भोजन करना सीखना चाहिये।

टायफॉयड से बचने के लिए इस देश में स्वच्छता *अनिवार्य* है।

१ जून, १९७१

*

(मातृमंदिर वर्कर्स किचन के लिए संदेश)

इस देश में और यहां की जलवायु में बीमारी से बचने के लिए पूर्ण स्वच्छता *अनिवार्य* है। बहुत सावधानी बरतनी चाहिये।

१९७१

*

कामकेलि मनुष्य को पशु से जोड़ती है और भविष्य में इनका पूर्ण रूपांतर होगा।

जो लोग भविष्य के लिए काम करना और अपने-आपको उसे जीने

के लिए तैयार करना चाहते हैं, अच्छा होगा कि वे इस विषय से सम्मोहित न हों जो चेतना को पशुवत् बना देता है। सबसे बढ़कर, अपने विचार में इसे प्रेम से मत जोड़ो, क्योंकि इनका परस्पर कोई संबंध नहीं है।

२३ नवम्बर, १९७१

*

हम हमेशा पशुओं से बहुत आकर्षित रहे हैं, अतीत में देखने की अपेक्षा भविष्य की ओर देखना अधिक रुचिकर होता है।

जहां तक मेरा संबंध है, चिड़ियाघर में मुझे कोई रस नहीं। पहले ही हमारे अन्दर अतिबौद्धिकता की अपेक्षा पशुता से बहुत अधिक चिपके रहने की वृत्ति है।†

३१ अगस्त, १९७२

*

गंदगी और अव्यवस्था में मजा लेना एक ऐसे स्वभाव का पक्का लक्षण है जो अपनी चैत्य सत्ता का बहिष्कार करती है और उससे कोई संबंध नहीं रखना चाहती।

२१ अक्तूबर, १९७२

*

अतिमानसिक अभिव्यक्ति की ओर जाने के लिए स्वच्छता सबसे पहला अनिवार्य कदम है।

२१ जनवरी, १९७३

*

स्थानीय गांववालों के साथ संबंध

दिव्य मां,

कुछ बातों के लिए आपके दिव्य निर्देशन की आवश्यकता है।

जमीन बेचने के लिए गांववालों की ओर से प्रतिरोध है। शायद

यह इसलिए हो कि ओरोवील के साथ उनका संबंध जोड़ने के लिए हमने कुछ नहीं किया। वे इसे अपने ऊपर लादी गयी विदेशी वस्तु समझते हैं जो उनकी कोई भलाई नहीं करेगी बल्कि उन्हें अपने घर-द्वार से दूर हटा देगी।

उन्हें औषधालय, विद्यालय, पीने का स्वच्छ पानी, आदि, कुछ सुविधाएं देकर क्या हमें उनके प्रति अपने सच्चे इरादों को प्रकट नहीं करना चाहिये? अगर यह प्रेम और नम्रता के भाव से किया जाये, परोपकार के रूप में नहीं, तो यह पैसे का अच्छा उपयोग होगा।

यह अनिवार्य है।

अप्रैल, १९६९

*

('ऐस्पिरेशन' के निकट 'कम्यूनिटी वर्कर्स किचन' में काम करने वाले किसी व्यक्ति ने माताजी को लिखा :)

कुछ लोग कर्मचारियों को भोजन देना जारी रखना चाहेंगे, दूसरों को लगता है कि धन हो भी तो उसका अन्यत्र ज्यादा अच्छा उपयोग हो सकता है। कृपया मार्ग-दर्शन प्रदान करें।

एक बार तुमने *कर्मचारियों* को भोजन देना शुरू कर दिया है तो उसे बंद नहीं कर सकते, अन्यथा तुम उनका विश्वास खो दोगे। यह अत्यावश्यक है—यह औरों को भी दिखाओ।

सबको आशीर्वाद।

४ अप्रैल, १९६९

*

('कम्यूनिटी वर्कर्स किचन' के निरीक्षक के चले जाने के बाद, किसी ने लिखा :)

ओरोवील के कर्मचारियों के भोजन में कभी कोई बाधा नहीं आयी है और जब तक कोई नयी व्यवस्था नहीं हो जाती, मैं स्वयं इसकी देखरेख कर लूंगा।

बहुत अच्छा।

सभी ओरोवील कर्मचारियों को दोपहर का खाना मुफ्त में देने का जो कार्यक्रम बनाया गया है उसके लिए अगर आप कोई संदेश दें तो वह हम सबको शक्ति और एकता का भान देगा।

सबके लिए सद्‌भावना और सबकी ओर से सद्‌भावना ही शांति और सामंजस्य का आधार है।

आशीर्वाद।

१३ अगस्त, १९६९

*

जिन लोगों का गांववालों के साथ संपर्क है उन्हें यह न भूलना चाहिये कि उनका मूल्य भी उतना ही है जितना इनका अपना, इनके जितना वे भी जानते हैं, जितनी अच्छी तरह ये सोचते और अनुभव करते हैं उतनी ही अच्छी तरह वे भी करते हैं। इसलिए इनके अंदर एक हास्यास्पद श्रेष्ठता की मनोवृत्ति कभी नहीं होनी चाहिये।

वे अपने घर में हैं और तुम हो अतिथि।†

सितम्बर या अक्तूबर, १९६९

*

'ऐस्पिरेशन'वासियों के नाम :

पड़ोसी गांववालों के साथ केवल अच्छा ही नहीं बल्कि मैत्रीपूर्ण नाता जोड़ना एकदम अनिवार्य है। क्योंकि ओरोवील के चरितार्थ होने के लिए पहला कदम है एक सच्चे मानवीय भ्रातृभाव की स्थापना—इस विषय में कोई भी कसर गंभीर भूल होगी जो संपूर्ण कार्य को जोखिम में डाल देगी।

सामंजस्य के लिए किये गये सभी सच्चे प्रयासों के साथ मेरे आशीर्वाद हैं।

२३ नवम्बर, १९६९

*

गांव के परिवारों को अपने साथ मिलाने के कार्यक्रम के बारे में जो ७ अगस्त, १९७० को शुरू हुआ था, हम निम्नलिखित बातों में आपसे पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करते हैं :

(१) क्या सभी बातों में उनके साथ ओरोवीलवासी के रूप में बर्ताव करना चाहिये?

हां।

(२) क्या उन्हें नियमित 'प्रॉस्पेरिटी' देनी चाहिये?

हां।

(३) क्या 'प्रॉस्पेरिटी' की सभी चीजें ओरोवील 'प्रॉस्पेरिटी' से ली जा सकती हैं?

वे जो कुछ लेना चाहें।

(४) ओरोवील में भरती होते समय क्या उनके सामने कुछ पथ-प्रदर्शक सिद्धांत रखने चाहियें? अगर हां, तो माताजी कृपया हमारा पथ-प्रदर्शन करें।

निश्चय ही अगर कोई इतना समझदार हो कि यह कर सके और ठीक तरह कर सके तो अच्छा होगा।

(५) क्या हर एक के भोजन के लिए कोई दैनिक राशन निश्चित

करना ठीक होगा? अगर हां, तो क्या हर वयस्क के लिए २.५० रु. और हर बच्चे के लिए २.०० रु. ठीक होगा?

कम-से-कम एक महीने की अवधि ऐसी होनी चाहिये जिसमें वे जो मांगें वह दिया जाये। बाद में हम देखेंगे कि यथोचित रूप से क्या किया जाये।

१० सितम्बर, १९७०

*

गांववाले जैसा खाना खाते हैं हम उन्हें उससे ज्यादा अच्छा देने का इरादा रखते हैं, इसलिए क्या यह ठीक होगा कि जो लोग 'कम्यूनिटी किचन' से उचित मूल्य पर पैसा देकर खाना लेना चाहते हैं उन्हें लेने दिया जाये?

हां—लागत पर।

आशीर्वाद।

नवम्बर, १९७०

*

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भारत जगत् में सबसे ऊपर है। आध्यात्मिक उदाहरण प्रस्तुत करना ही उसका मिशन है। श्रीअरविन्द जगत् को यही सिखाने के लिए धरती पर आये थे।

यह तथ्य इतना स्पष्ट है कि यहां का एक भोला और अज्ञानी कृषक भी, अपने हृदय में, यूरोप के बुद्धिजीवियों के अपेक्षा भगवान् के कहीं अधिक पास है।

जो लोग ओरोवीलवासी बनना चाहते हैं उन सबको यह जानना चाहिये और इसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिये; अन्यथा वे ओरोवीलवासी बनने के योग्य नहीं हैं।

८ फरवरी, १९७२

*

(किसी ने 'लास्ट स्कूल' की सफाई में सहायता करने के लिए अपनी सेवाएं अर्पित कीं)

ठीक है! लेकिन चीजों को व्यवस्थित करते समय, इस बात की बड़ी सावधानी बरतना कि तमिल गांववालों को चोट न पहुंचे। हमें उनका विश्वास जीतने में बड़ी कठिनाई हुई है और ऐसा कुछ न करना चाहिये जिससे हम उनके अन्दर का यह नवजात विश्वास खो बैठें जो बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अपने साथ एक ऐसा आदमी ले जाओ जो बहुत अच्छी तरह तमिल जानता और बोल सकता हो ताकि तुम उनके साथ बातें कर सको और चीजें उन्हें समझा सको।

आत्म-रूप से वे तुम्हारे भाई हैं—यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये।

जुलाई, १९७२

वित्तीय व्यवस्था

ओरोवील के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने के लिए हम इस तरह चल सकते हैं: हर देश में एक बहुत धनाढ्य आदमी को खोजा जाये जो ओरोवील के लिए धनराशि इकट्ठी करने का केंद्र हो।

लाभ: ऐसे व्यक्ति का मान होगा, वह दूसरों के सामने उदाहरण होगा और उसे देखकर यह न लगेगा कि वह भीख मांग रहा है।

सिद्धांत रूप में यह तरीका ठीक है। लेकिन व्यवहार में, और असफलता की सभी संभावनाओं से बचने के लिए (क्योंकि असफलता का प्रभाव बहुत शोचनीय होगा), हमें परिस्थितियों से मिलने वाले किसी संकेत की प्रतीक्षा करनी होगी जिसके बारे में मुझे तुरंत सूचना दी जायेगी। और तब मैं हरी झंडी दूंगी।

नवम्बर, १९६५

*

माताजी,

क्या 'अमरीकी मण्डप' का संगठन करने के लिए 'ख' काम कर सकती है, अगर हां, तो क्या वह तुरंत अमरीका में धनराशि जुटाना शुरू कर सकती है?

मैंने अधिकृत रूप से उसे कभी यह काम नहीं दिया।

लेकिन अगर वह पैसा लाये तो बहुत अच्छा है।

२२ मार्च, १९६६

*

दिव्य मां,

क्या आपकी इच्छा है कि हम आश्रम और ओरोवील की परियोजना, दोनों के लिए अमरीका में बड़ी रकम जुटाने की कोशिश करें?

अगर यह तुम्हारे लिए जरा भी संभव हो तो बहुत सहायक होगा और चीजों के 'सत्य' के अनुरूप होगा।

३० मई, १९६६

*

(कुछ व्यक्तियों और दलों के बारे में जो ओरोवील के विकास में सहायता करना चाहते हैं)

वे खुद चाहे अभ्यास न करते हों, लेकिन अगर वे योग के बारे में जानते भी नहीं तो वे ओरोवील के उद्देश्य को भला कैसे समझ पायेंगे?

१९ जून, १९६७

*

(ओरोवील के लिए धन देने वाले किसी व्यक्ति ने विशेष रूप से कहा :)

मैं चाहता हूं कि मेरे धन का उपयोग केवल हमारे दुःख-दैन्य के कारणों पर विजय पाने के लिए हो।

हम सब यहां इसी काम के लिए हैं, लेकिन परोपकारियों के कृत्रिम तरीकों से करने के लिए नहीं, जो केवल बाहरी प्रभावों पर ही क्रिया करते हैं।

हम सर्वांगीण रूपांतर द्वारा जड़-पदार्थ को दिव्य बनाकर दुःख-दर्द के कारण को हमेशा के लिए निकाल बाहर करना चाहते हैं।

२८ दिसम्बर, १९६७

*

पहला प्रश्न, क्या विशेष रूप से कोई ऐसी चीज की जा रही है जो ओरोवील में आने वाले धन के प्रवाह में रुकावट डालती है?

भविष्य की ओर बढ़ने के उत्साह का अभाव ही धन के प्रवाह में रुकावट डाल रहा है।

दूसरा, ओरोवील में धन के प्रवाह को बढ़ाने के लिए क्या कोई विशेष चीज करनी चाहिये?

अवश्यंभावी भविष्य में विश्वासपूर्ण निश्चिति इस व्यवधान को मिटा सकती है।

१७ मई, १९६८

*

दिव्य मां,

ओरोवील की वर्तमान आर्थिक स्थिति देखते हुए, क्या हमें धन इकट्ठा करने के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों में से किसी के पास जाना चाहिये : (नाम दिये गये)।

ये ऐसे लोग नहीं हैं जो ओरोवील को वह सब दे सकें जिसकी उसे आवश्यकता है।

१७ मई, १९६८

*

दिव्य मां,

पहला, नये जगत् के निर्माण में अमरीका की क्या भूमिका है?

नयी सृष्टि के लिए पृथ्वी को तैयार करने में आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करना अमरीका का कार्य है।

दूसरा, इस भूमिका को अदा कर सकने के लिए अमरीका के लोगों को क्या करना चाहिये?

उन व्यक्तियों या संस्थाओं का पता लगाना जो यह रूपांतर लाने में समर्थ हैं और उन्हें आवश्यक धन देना।

९ जून, १९६८

*

क्या संसार के पूंजीपतियों के साथ संपर्क करने की कोशिश करने का समय आ गया है?

अगर हां, तो फिर हमें एक ऐसे संहत और आनुषंगिक व्यवस्थापन का निर्माण करना पड़ेगा जो इस धन-राशि को संभाल सके और उसके उचित उपयोग के बारे में उत्तरदायी हो। जब यह हो जाये केवल तभी हम अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से संपर्क कर सकते हैं और उनसे अनुकूल उत्तर की अपेक्षा कर सकते हैं। क्या आपकी स्वीकृति है?

ठीक है। आशीर्वाद।

अप्रैल, १९६९

*

(किसी ऐसे व्यक्ति ने जो ओरोवील के लिए धन जुटाने की कोशिश कर रहा है, विकास की योजनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी मांगी थी। माताजी को जब उसकी चिट्ठी दिखायी गयी, तो उन्होंने लिखा :)

ये सब प्रश्न इस बात को प्रमाणित करते हैं कि तुम यह आशा करते हो कि अब तक जो कुछ हुआ है उसी को ओरोवील जारी रखेगा।

ओरोवील नयी प्रणाली के अनुसार नये तरीके से एक नयी चेतना को अभिव्यक्त करती हुई नयी सृष्टि बनना चाहता है।

१८ अगस्त, १९६९

*

'ओरोमॉडल' के लिए धन जुटाने के लिए हमें क्या करना चाहिये?

तुम धन का जितना अधिक पीछा करोगे उतना ही कम पाओगे। तुम्हें करना यह चाहिये कि ओरोवील के बारे में लोगों को बताओ। यही महत्त्वपूर्ण है।†

नवम्बर, १९६९

*

प्रचुरता से धन तभी आयेगा जब लोग यह अनुभव करेंगे कि ओरोवील के विकास में सहायता करना उनका सौभाग्य है।

दिसम्बर, १९६९

*

ओरोवील के लिए जमीन खरीदनी है और खरीदी जा सकती है—रुपये की आवश्यकता है।

क्या तुम सहायता करोगे?

मई, १९७०

*

तुम हमारी आवश्यकता को जानते हो।

क्या तुम वह व्यक्ति नहीं बनोगे जो सहायता करता है?

*

(मातृमंदिर के लिए धन जुटाने के लिए संदेश)

अपना धन भागवत कार्य के लिए दे दो। इस तरह देकर तुम, उसे बचा लेने पर जितना संपन्न होते उसकी अपेक्षा ज्यादा संपन्न बनोगे।

१९७१

पहले की वार्ताएं

जून १९६५

क्या तुमने ओरोवील के बारे में सुना है?

काफी लंबे समय तक, यह बात श्रीअरविन्द के जीवनकाल की है, मेरे पास एक "आदर्श नगरी" की योजना रही जिसके केंद्र में श्रीअरविन्द निवास करते थे। बाद में, मुझे कोई दिलचस्पी नहीं रही। फिर ओरोवील का विचार—ओरोवील नाम मैंने दिया था—एक बार फिर से उठाया गया, लेकिन दूसरे छोर से : निर्माण के लिए स्थान ढूंढ़ने के बजाय, स्वयं स्थान —'लेक' (झील) के पास—ने निर्माण को जन्म दिया, और अब तक मैं उसमें बहुत ही कम रुचि ले रही थी, क्योंकि मुझे स्पष्ट रूप में कुछ भी न मिला था। फिर हमारी छोटी 'क' ने मन में यह बात ठान ली कि वहां, 'लेक' के किनारे, एक घर उसके अपने लिए होगा, और उसके साथ ही एक घर मेरे लिए होगा जिसे वह मुझे समर्पित कर देगी। और उसने अपने सभी स्वप्न मुझे लिखे : दो-एक वाक्यों ने अचानक पुरानी, बहुत पुरानी किसी ऐसी चीज की, एक सृष्टि की, स्मृति को कुरेद दिया जिसने, जब मैं बहुत छोटी थी तब, अभिव्यक्त होने की चेष्टा की थी और जिसने फिर से इस शताब्दी के एकदम शुरू में अपने-आपको अभिव्यक्त करने की चेष्टा शुरू की थी, जब मैं तेओं के साथ थी। फिर मैं वह सब भूल गयी। इस पत्र के साथ-साथ वह चीज वापस लौट आयी; एकदम से, मेरे पास ओरोवील की योजना बन गयी। अब मेरे पास समस्त योजना है, मैं 'ख' का इन्तजार कर रही हूं, कि वह ब्योरे के साथ योजना को अंकित करे, क्योंकि मैंने शुरू में ही कहा था : "'ख' वास्तुकार होगा", और मैंने 'ख' को लिख दिया। पिछले साल जब वह यहां आया था, तो चण्डीगढ़ देखने गया था, इस शहर को ल कारब्यूजिए ने बनाया है, यह पंजाब में है। 'ख' बहुत खुश न हुआ। यह मुझे काफी सामान्य लगा—मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानती, मैंने इसे देखा नहीं है, केवल कुछ चित्र देखे हैं जो भयंकर थे। जब वह मुझसे बातें कर रहा था, तो मैं देख सकती थी कि वह क्या अनुभव कर रहा है : "काश, मुझे एक शहर बनाने को मिलता!..."

इसलिए मैंने उसे लिखा: "अगर तुम चाहो, तो मुझे एक शहर बनवाना है।" वह खुश है। वह आ रहा है। जब वह आयेगा, मैं उसे अपनी योजना दिखलाऊंगी और वह शहर बनायेगा। मेरी योजना बहुत सरल है।

स्थान मद्रास के रास्ते पर है, वहां, ऊपर, पहाड़ी पर। (*माताजी एक कागज लेकर आंकना शुरू करती हैं।*) यहां है—स्वभावतः, 'प्रकृति' में ऐसा नहीं है, हमें अपने-आपको उसके अनुकूल बनाना होगा; आदर्श स्तर पर यह ऐसा है—यहां, एक केंद्र-बिन्दु। यह केंद्र-बिंदु एक उपवन है जिसे मैंने तब देखा था जब मैं बहुत छोटी थी—शायद भौतिक, जड़-भौतिक प्रकृति के दृष्टिकोण से दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु—अन्य उपवनों की तरह एक उपवन जिसमें पानी हो, वृक्ष हों और फूल हों, लेकिन बहुत नहीं; फूलों की लताएं, ताड़-वृक्ष, फ़र्न, सभी प्रकार के ताड़-वृक्ष हों; पानी, अगर संभव हो तो बहता पानी, संभव हो तो एक छोटा-सा झरना। व्यावहारिक दृष्टि से, यह बहुत अच्छा रहेगा: उपवन के बाहर, दूर, उस छोर पर, हम तालाब बना सकते हैं जिनसे वहां के निवासियों को पानी दिया जा सकेगा।

हां तो, इस उपवन में मैंने "प्रेम का मण्डप" देखा। लेकिन मुझे यह शब्द नापसंद है, क्योंकि मनुष्य ने इसे विकृत कर दिया है; मैं 'भागवत प्रेम' के तत्त्व की बात कर रही हूं। लेकिन यह बदल गया है: यह "मां का मण्डप" होगा—इस मां का नहीं (माताजी अपनी ओर इशारा करती हैं)— 'जननी', सच्ची 'जननी', 'जननी'-तत्त्व का मण्डप होगा। मैं "जननी" शब्द कह रही हूं क्योंकि श्रीअरविन्द ने इस शब्द का उपयोग किया है, नहीं तो मैं कोई और शब्द रखती, मैं "सर्जक तत्त्व" या "सिद्धि के तत्त्व" या-—मुझे मालूम नहीं... ऐसा कोई नाम रखती। वह एक छोटी इमारत होगी, बड़ी नहीं, जिसमें नीचे केवल एक ध्यान का कक्ष होगा, लेकिन उसमें स्तंभ होंगे और कमरा शायद गोलाकार हो। मैं शायद कह रही हूं, क्योंकि मैं यह 'ख' के निश्चय पर छोड़ रही हूं। ऊपर, पहली मंजिल में एक कमरा होगा और छत बंद-छत होगी। तुम पुराने भारतीय मुगल लघु-चित्रों को जानते हो जिनमें स्तंभों के सहारे खड़ी खुली छतोंवाले महल होते हैं? तुम उन पुराने लघुचित्रों को जानते हो? ऐसे सैकड़ों चित्र मैंने देखे हैं...। लेकिन यह मण्डप बहुत, बहुत सुन्दर है, इस तरह का एक छोटा मण्डप, जिसके छज्जे पर छोटी-सी छत होगी, और नीची दीवारें

होंगी जिनसे सटकर बैठने के लिए गद्दियां होंगी, शाम को, रात को, खुली हवा में ध्यान करने के लिए। और नीचे, सबसे नीचे की मंजिल पर एक ध्यान का कमरा होगा, सीधा सादा—एकदम खाली-सा। शायद दूर के छोर पर कोई ऐसी चीज होगी जो जीवंत ज्योति हो, शायद जीवंत ज्योति में प्रतीक, निरंतर ज्योति। वैसे यह बहुत ही शांत, बहुत ही नीरव स्थान होगा।

पास ही, एक छोटा-सा घर होगा, छोटा-सा घर, फिर भी जिसमें तीन मंजिलें होंगी, लेकिन बड़े आकार की नहीं, और वह 'क' का घर होगा। वह मण्डप की संरक्षिका होगी। उसने मुझे एक बहुत ही प्यारी चिट्ठी लिखी लेकिन निश्चय ही, वह इतना सब नहीं समझ पायी।

वह केंद्र है।

उसके चारों तरफ, एक गोल सड़क होगी जो बगीचे को बाकी शहर से अलग करती है। वहां शायद एक प्रवेशद्वार होगा—सचमुच, उपवन में एक होना चाहिये। द्वार के रक्षक के साथ प्रवेशद्वार की रक्षक एक नयी लड़की है जो अफ्रीका से आयी है, उसने मुझे एक चिट्ठी लिखी जिसमें वह कहती है कि केवल "सत्य के सेवकों" को अंदर आने की इजाजत देने के उद्देश्य से वह ओरोवील की संरक्षिका बनना चाहती है (माताजी हंसती हैं)। यह बहुत अच्छी योजना है। तो शायद मैं उसे उपवन् की संरक्षिका के रूप में रखूं, साथ में, प्रवेश-द्वार के पास सड़क पर उसका एक छोटा-सा घर होगा।

लेकिन मजेदार बात यह है कि इस केंद्र-बिन्दु के चारों ओर, चार बड़े भाग हैं, चार बड़ी पंखुड़ियों की तरह (माताजी चित्र बनाती हैं), लेकिन पंखुड़ियों पर छोर गोल हैं और चार छोटे मध्यस्थ क्षेत्र हैं—चार बड़े भाग और चार क्षेत्र...। स्वभावतः यह केवल हवा में है; यथार्थ में, लगभग ऐसा ही कुछ होगा।

इसमें चार बड़े भाग हैं : उत्तर में, यानी, मद्रास के रास्ते की ओर है सांस्कृतिक विभाग; पूरब में, औद्योगिक विभाग; दक्षिण में अंतर्राष्ट्रीय विभाग और पश्चिम में, यानी झील की तरफ, रिहायशी विभाग।

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए : रिहायशी विभाग में उन लोगों के घर होंगे जिन्होंने पहले से ही धन दे दिया है और उन सबके घर

भी होंगे जो ओरोवील में जमीन लेने के लिए बड़ी संख्या में आ रहे हैं। वह झील के पास होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय विभाग: हर देश का एक मण्डप बनाने के लिए हमने कई राजदूतों और देशों के आगे प्रस्ताव रखा है—हर देश का एक मण्डप। यह एक पुराना विचार था। कुछ ने स्वीकार कर भी लिया है, इसलिए तैयारी हो रही है। हर मण्डप का अपना बगीचा होगा, उसमें जहां तक संभव हो, वहां के प्रतिनिधि पौधे और अन्य पैदावार होगी। अगर उनके पास पर्याप्त जगह और धन हो तो वे एक छोटा-सा संग्रहालय या अपने देश की उपलब्धियों की एक स्थायी प्रदर्शनी भी खोल सकते हैं। हर देश की इमारत उसके अपने देश के स्थापत्य के अनुसार होनी चाहिये—उसे सूचना के प्रलेख की तरह होना चाहिये, फिर, वे जितना पैसा खर्च करना चाहते हैं उसके अनुसार छात्रावास, सभा-भवन इत्यादि के लिए कमरे भी बनवा सकते हैं, उस देश की रसोई, वहां का रस्तोरां भी खोल सकते हैं —वे हर तरह के परिवर्द्धन कर सकते हैं।

फिर आता है औद्योगिक विभाग। अभी से काफी लोग, जिसमें मद्रास की सरकार भी है—मद्रास सरकार पैसा उधार दे रही है—वहां उद्योग शुरू करना चाहते हैं, जो विशेष आधार पर होंगे। यह औद्योगिक विभाग पूरब की ओर है और बहुत बड़ा है, वहां बहुत स्थान है जो नीचे समुद्र की ओर जा पहुंचता है। असल में पॉण्डिचेरी के उत्तर में काफी बड़ा क्षेत्र बिलकुल निर्जन और परती है; यह समुद्र के करीब है जो तट के साथ-साथ उत्तर की ओर चला गया है। तो यह औद्योगिक विभाग समुद्र की ओर नीचे जायेगा, और अगर सम्भव हो तो वहां एक तरह का जहाज-घाट होगा—ठीक बन्दरगाह नहीं, लेकिन एक ऐसा स्थान जहां नावें तट पर आ सकें; और इन सभी उद्योगों के पास अन्तःस्थलीय यातायात की व्यवस्था होगी, वे सीधा निर्यात कर सकेंगे। और वहां एक बड़ा होटल होगा—'ख' ने उसकी योजना भी बना ली है; हम यहां "मेसाजरी मारितिम" की जमीन पर होटल बनाना चाहते थे, लेकिन इसके मालिक ने पहले 'हां' करने के बाद 'ना' कर दी; यह बहुत अच्छा है, वहां ज्यादा अच्छा रहेगा—बाहर से आये अतिथियों के स्वागत के लिए एक बड़ा होटल। इस विभाग के लिए काफी संख्या में उद्योगों ने अभी से अपने नाम लिखवा दिये हैं; मुझे मालूम

नहीं कि पर्याप्त जगह होगी या नहीं, लेकिन हम काम चला लेंगे।

इसके बाद, उत्तर में—जहां निश्चय ही सबसे अधिक स्थान है—मद्रास की ओर, सांस्कृतिक विभाग होगा। वहां, एक सभा-भवन—ऐसा सभा-भवन जिसे बनाने का स्वप्न मैं बहुत दिनों से ले रही हूं; नक्शे अभी से तैयार हैं—एक ऐसा सभा-भवन जिसमें संगीतशाला हो और एक शानदार ऑर्गन, ऐसा ऑर्गन जो अत्याधुनिक और सर्वोत्तम हो। सुना है कि आजकल लोग विलक्षण चीजें बना रहे हैं। मुझे एक शानदार ऑर्गन चाहिये। पार्श्व भागों के साथ रंगमंच होगा—घूमने वाला रंगमंच, इत्यादि, अपनी तरह का अच्छे-से-अच्छा। तो, वहां एक भव्य सभा-भवन होगा। वहां पुस्तकालय, सभी तरह की प्रदर्शनियों के साथ एक संग्रहालय भी होगा—सभा-भवन के अन्दर नहीं : उसके साथ एक फिल्म-स्टूडियो, फिल्म-स्कूल भी होगा; एक ग्लाइडिंग क्लब भी होगा। हमें सरकार की ओर से अनुमोदन मिल गया है और वचन भी दिया जा चुका है, इसलिए काम काफी बढ़ चला है। फिर मद्रास की ओर, जहां बहुत स्थान है, वहां होगा एक स्टेडियम। हम इस स्टेडियम को अधिक-से-अधिक आधुनिक और जितना संभव हो पूर्ण बनाना चाहते हैं, इस विचार के साथ—यह विचार बहुत समय से मेरे दिमाग में है—कि बारह साल बाद—ओलिंपिक खेल हर चार साल बाद होते हैं—१९६८ से बारह साल बाद—६८ में ओलिंपिक खेल मेक्सिको में होने वाले हैं—बारह साल बाद हम भारत में यहां, ओलिंपिक खेल करेंगे। अतः हमें जगह की आवश्यकता होगी।

इन विभागों के बीच, मध्यवर्ती क्षेत्र होंगे, चार मध्यवर्ती क्षेत्र : एक होगा सार्वजनिक सेवा के लिए, डाकघर इत्यादि; दूसरे क्षेत्र में यातायात, रेलवे-स्टेशन और संभव हो तो हवाई-अड्डा भी होगा; तीसरा भोजन के लिए होगा—यह झील के पास होगा और इसमें गोशाला, मुर्गीखाने, फलोद्यान, खेती के लिए जमीन, इत्यादि होंगी; यह स्थान बहुत विस्तृत होगा और 'लेक एस्टेट' भी इसमें आ जायेगा : वे लोग जो अलग से करना चाहते थे वह भी ओरोवील की परिधि में आ जायेगा। फिर आता है चौथा क्षेत्र। मैंने कहा है : सार्वजनिक सेवा, यातायात, भोजन और चौथे क्षेत्र में होंगी दूकानें। हमें बहुत-सी दूकानों की जरूरत न होगी, लेकिन कुछ की आवश्यकता होगी जिनमें ऐसी चीजें मिल सकें जो हमारे यहां पैदा नहीं होतीं। देख रहे

हो न, ये क्षेत्र जिले की तरह होंगे।

और आप यहां केंद्र में होंगी?

'क' ऐसी आशा करती है *(माताजी हंसती हैं)*। मैंने 'ना' नहीं की, मैंने 'हां' भी नहीं की; मैंने उससे कहा : "परम प्रभु निश्चय करेंगे।" यह मेरे स्वास्थ्य पर निर्भर है। स्थानांतरण, नहीं—मैं यहां हूं तो समाधि के कारण, मैं यहीं रहूंगी, यह बिलकुल निश्चित है। लेकिन मैं वहां घूमने के लिए जा सकती हूं। वह बहुत दूर नहीं है, गाड़ी से पांच मिनट लगते हैं। लेकिन 'क' शांत, चुपचाप, अलग-थलग रहना चाहती है, और उसके उपवन में यह काफी संभव है। वह एक सड़क से घिरा होगा और वहां कोई होगा जो लोगों को अन्दर आने से रोके; आदमी वहां बहुत शांत रह सकता है—लेकिन अगर मैं वहां होऊं, तो बस बात वहीं खत्म हो जायेगी। वहां सामूहिक ध्यान, इत्यादि होंगे। यानी, अगर मुझे संकेत मिले, पहले तो भौतिक संकेत, फिर बाहर जाने के लिए आंतरिक आदेश, तो मैं वहां जाकर तीसरे पहर एक घंटा बिता सकती हूं—मैं कभी-कभी वहां जा सकती हूं। हमारे पास अभी समय है, क्योंकि सब कुछ तैयार होने में कई साल लगेंगे।

इसका अर्थ यह है कि शिष्य यहीं रहेंगे?

ओह! आश्रम यहीं रहेगा—आश्रम यहीं रहेगा, मैं यहीं रहूंगी, यह जानी हुई बात है। ओरोवील एक...

एक उपग्रह।

हां, यह बाहरी जगत् के साथ संपर्क होगा। मेरे नक्शे का केंद्र प्रतीकात्मक केंद्र है।

लेकिन 'क' इसी की आशा करती है : वह ऐसा घर चाहती है जिसमें वह एकदम अकेली हो और उसी के पास एक ऐसा घर हो जिसमें मैं

बिलकुल अकेली रहूं। यह दूसरी बात एक स्वप्न है, क्योंकि मैं और एकदम अकेली...। जो हो रहा है बस, उसे देखने-भर की जरूरत है! सच है, है न? तो यह सारी चीज "एकदम अकेले" के साथ मेल नहीं खाती। एकांत अपने अंदर पाना चाहिये, यही एकमात्र उपाय है। लेकिन जहां तक रहने का सवाल है, निश्चय ही मैं वहां जाकर नहीं रहूंगी, क्योंकि समाधि यहां है, लेकिन मैं वहां घूमने जा सकती हूं। उदाहरण के लिए, मैं वहां किसी उद्घाटन समारोह या अन्य अनुष्ठानों के लिए जा सकती हूं। देखेंगे। अभी तो बहुत साल लगेंगे।

संक्षेप में, ओरोवील बाहर वालों के लिए अधिक है?

ओह हां! यह एक शहर है! अतः, इसका बाहरी जगत् के साथ पूरा संबंध रहेगा। यह पृथ्वी पर एक अधिक आदर्श जीवन को चरितार्थ करने का प्रयास है।

उस पुरानी संरचना के अनुसार जो मैंने बनायी थी, वहां एक पहाड़ी और एक नदी होनी चाहिये। पहाड़ी तो होनी ही चाहिये, क्योंकि श्रीअरविन्द का मकान पहाड़ी की चोटी पर था। लेकिन श्रीअरविन्द वहां केंद्र में थे। यह मेरे प्रतीक की योजना के अनुसार व्यवस्थित किया गया था, यानी, बीच का बिंदु, जहां श्रीअरविन्द होंगे, श्रीअरविन्द के जीवन से संबंधित सब कुछ होगा, चार बड़ी पंखुड़ियां होंगी—वे ऐसी नहीं थीं जैसी इस चित्र में बनी हैं, कुछ और ही तरह की थीं—और उसके चारों तरफ बारह थीं, स्वयं शहर था, और उसके चारों तरफ शिष्यों के घर थे; तुम मेरे प्रतीक को जानते हो : रेखाओं के स्थान पर फीते होंगे; हां तो, अंतिम गोलाकार फीते पर शिष्यों के घर होंगे, हर एक का अपना घर और बगीचा होगा—हर एक के लिए एक छोटा-सा घर और बगीचा। यातायात का कोई साधन था, मुझे ठीक पता नहीं कि व्यक्तिगत वाहन थे या सामुदायिक—जैसे पहाड़ों पर खुली ट्रामकारें होती हैं, वैसी—हर दिशा में जाकर शिष्यों को वापस शहर के केंद्र में ले आती थीं। और इस सबके चारों तरफ एक दीवार थी, प्रवेशद्वार और द्वारपाल थे, और बिना अनुमति के व्यक्ति अंदर प्रवेश नहीं पा सकता था। धन नहीं था—दीवार के घेरे के अंदर धन नहीं था; विभिन्न

प्रवेश-स्थलों पर बैंक या इस तरह के काउंटर थे जहां व्यक्ति अपने पैसे जमा करा दे और उसके बदले में उसे टिकट मिलते, जिनसे वह वहां रहना, खाना, इत्यादि, सब कुछ पा लेता। लेकिन पैसे नहीं—टिकट बाहर से आने वालों के लिए होते, जो बिना स्वीकृति के अंदर नहीं आ सकते थे। बहुत बड़ा संगठन था...। धन नहीं, मैं धन एकदम नहीं चाहती थी।

अरे! अपने नक्शे में मैं एक चीज भूल गयी। कर्मचारियों के लिए, मैं एक बस्ती बनवाना चाहती थी, लेकिन यह बस्ती औद्योगिक विभाग का एक हिस्सा होती, शायद औद्योगिक विभाग के किनारे-किनारे का फैलाव।

मेरी पहली रचना में, दीवार के बाहर, एक तरफ औद्योगिक शहर था, और दूसरी तरफ शहर की जरूरतें पूरी करने के लिए खेत, खलिहान, फार्म, इत्यादि थे। लेकिन वह (रचना) देश का प्रतिनिधित्व करती थी— किसी बड़े देश का नहीं, बस, एक देश का। लेकिन अब चीज काफी छोटी हो गयी है। अब वह मेरा प्रतीक भी नहीं रहा; केवल चार क्षेत्र हैं और कोई दीवार नहीं। और धन भी होगा। समझ रहे हो न, पहली रचना सचमुच एक आदर्श प्रयास थी...। लेकिन शुरू करने की कोशिश करने से पहले मैंने कई साल इस पर विचार किया था। उस समय मैंने चौबीस साल का अंदाज लगाया था। लेकिन अब यह काफी अधिक मर्यादित है, यह एक अस्थायी प्रयास है, और इसे अधिक जल्दी चरितार्थ किया जा सकता है। दूसरी योजना... मुझे करीब-करीब जमीन मिल गयी थी; तुम्हें याद है, यह हैदराबाद के सर अकबर हैदरी के समय की बात है। उन्होंने हैदराबाद रियासत के कुछ फोटोग्राफ भी मुझे भेजे थे, और उन फोटोग्राफों में मुझे अपना आदर्श स्थान मिल गया था: एक निर्जन पहाड़ी, काफी ऊंची पहाड़ी, और उसके नीचे, बड़ी, बहती हुई नदी। मैंने उनसे कहा: "मुझे यह स्थान चाहिये," और उन्होंने सारी व्यवस्था कर दी। सब कुछ व्यवस्थित हो गया। उन्होंने यह कहकर मुझे योजनाएं, सब कागज-पत्र भेज दिये कि वे इसे आश्रम को दे रहे हैं। लेकिन उन्होंने एक शर्त रखी—वह अछूता, परती क्षेत्र था—स्वभावतः जगह इस शर्त के साथ दी कि हम उसमें खेती-बारी करेंगे—लेकिन उपज का उपयोग उसी स्थान पर होना चाहिये; उदाहरण के लिए, फसल, लकड़ी का उसी स्थान पर उपयोग होना चाहिये, उसे बाहर नहीं भेजा जा सकता था; हैदराबाद रियासत से बाहर

कुछ नहीं जा सकता था। 'ग' भी था जो नाविक है, उसने कहा कि वह इंग्लैंड से पाल की एक नौका प्राप्त कर लेगा ताकि उसमें जाकर वहां की उपज यहां, हमारे लिए ला सके। सारी योजना बहुत अच्छी तरह बन गयी थी! और तब उन्होंने यह शर्त लगा दी। मैंने पूछा कि क्या इस शर्त को हटाना संभव नहीं है? तब सर अकबर हैदरी का देहांत हो गया और मामला वहीं ठप्प हो गया, उस विचार को छोड़ दिया गया। बाद में, मुझे खुशी हुई कि ऐसा हुआ नहीं, क्योंकि अब, जब श्रीअरविन्द ने शरीर त्याग दिया है, मैं पॉण्डिचेरी नहीं छोड़ सकती। मैं पॉण्डिचेरी उन्हीं के साथ छोड़ सकती थी, बशर्ते कि वे अपने आदर्श नगर में रहना स्वीकार करते। उस समय मैंने इस योजना के बारे में 'घ' से बात की थी (जिसने 'गोलकुण्ड' बनाया है) और वह उत्साह से भर गया, उसने मुझसे कहा, "जैसे ही आप बनाना शुरू करें, मुझे बुला लीजिये, मैं आ जाऊंगा।" मैंने अपना नक्शा उसे दिखाया; वह मेर प्रतीक के विस्तार पर आधारित था; वह बहुत जोश में आ गया था, उसे लगा कि यह विलक्षण होगा।

वह योजना रद्द हो गयी। लेकिन दूसरी, जो एक छोटा-सा मध्यम प्रयास है, उसे करके देख सकते हैं।

मुझे ऐसी कोई भ्रांति नहीं है कि वह अपनी मौलिक पवित्रता बनाये रखेगी, लेकिन हम कुछ करने की कोशिश कर सकते हैं।

योजना के आर्थिक संगठन पर बहुत कुछ निर्भर है?

फिलहाल, 'ड' उसकी देख-रेख कर रहा है, क्योंकि उसके पास 'श्रीअरविन्द सोसायटी' के माध्यम से पैसा आता है और उसने जमीन खरीद ली है। काफी सारी जमीन पहले ही खरीदी जा चुकी है। काम अच्छी तरह चल रहा है। स्वभावतः, पर्याप्त धन पाने की कठिनाई है। लेकिन, उदाहरण के लिए, मण्डप—हर एक देश अपने मण्डप का खर्च खुद उठायेगा, उद्योग—हर उद्योग अपने व्यवसाय का खर्च स्वयं देगा; मकान—हर एक अपनी जमीन के लिए आवश्यक धन देगा। मद्रास सरकार ने हमें पहले से ही वचन दे रखा है कि वह साठ और अस्सी प्रतिशत के बीच देंगे : उसमें से एक हिस्सा अनुदान के रूप में होगा; एक हिस्सा उधार के रूप में जो बिना

ब्याज होगा और उसे दस साल, बीस साल, चालीस साल में चुकाया जा सकेगा—लम्बी अवधि में चुकता उधार। 'ड' इसके बारे में सब कुछ जानता है, उसे काफी कुछ परिणाम भी मिले हैं, लेकिन पैसा जल्दी आता है या धीरे-धीरे आता है, उसके अनुसार काम जल्दी या धीरे होगा। निर्माण की दृष्टि से, वह 'ख' की नमनीयता पर निर्भर है; मेरे लिए सभी ब्योरे एक समान हैं—केवल, मैं चाहती हूं कि यह मण्डप बहुत सुन्दर हो। मैं उसे देख सकती हूं। क्योंकि मैंने उसे देखा है, मैंने उसका अंतर्दर्शन किया है; अतः मैं उसे वह समझाने की कोशिश करूंगी जो मैंने देखा है। और उपवन भी, उसे भी मैंने देखा है—ये पुराने अंतर्दर्शन हैं जो मैंने बहुत बार देखे हैं। लेकिन यह कठिन नहीं है।

सबसे बड़ी कठिनाई है पानी की, क्योंकि वहां आसपास कोई नदी नहीं है। नदियों के पानी को घुमाकर नहरें बनाने की कोशिश अब भी की जा रही है; ऐसी योजना भी थी कि हिमालय से लेकर पूरे भारत में पानी दिया जाये : 'च' ने एक योजना बनायी थी और उसके बारे में दिल्ली में बातचीत भी की; उन्होंने इस पर आपत्ति की कि चीज कुछ महंगी पड़ेगी, यह तो स्पष्ट है! लेकिन, फिर भी, इतनी विशाल चीजें करने के स्थान पर, हम पानी के लिए कुछ तो कर ही सकते हैं। यह सबसे बड़ी कठिनाई होगी; इसमें सबसे अधिक समय लगेगा। बाकी सब, बिजली, रोशनी की व्यवस्था वहीं औद्योगिक विभाग में हो सकती है—लेकिन पानी को बनाया नहीं जा सकता! अमरीका के लोगों ने गंभीर रूप से समुद्र के पानी का उपयोग करने का कोई तरीका ढूंढ़ निकालने का सोचा है, क्योंकि अब धरती के पास मनुष्य के लिए पर्याप्त पीने का पानी नहीं है—वह पानी जिसे वे "ताजा" कहते हैं : यह व्यंग्य है; मनुष्य की आवश्यकताओं के लिए पानी की मात्रा पर्याप्त नहीं है, इसलिए उन्होंने समुद्र के पानी को बदलने और उसे उपयोगी बनाने के लिए बड़े पैमाने पर रासायनिक प्रयोग शुरू कर दिये हैं—स्पष्ट है, वह समस्या का समाधान होगा।

लेकिन यह तो अब भी है।

यह है तो, लेकिन काफी बड़े पैमाने पर नहीं।

जी, इज़राइल में है।

क्या इज़राइल में ऐसा करते हैं? क्या वे समुद्र के पानी का उपयोग करते हैं? स्पष्ट है कि वह समाधान होगा—समुद्र वहां है ही।

देखेंगे।

उसे हाथ में लेना होगा।

एक नौका-विहार क्लब अच्छा होगा?

आह! निश्चय ही, औद्योगिक विभाग के साथ।

वहां, आपके बन्दरगाह के पास।

वह "बन्दरगाह" नहीं होगा बल्कि, अच्छा... हां, अतिथियों का होटल और पास ही में नौका-विहार क्लब, यह अच्छा विचार है। मैं इसे भी जोड़ लूंगी। *(माताजी उसे लिख लेती हैं।)*

यह जरूर सफल होगी।

अब देखो! पत्रों की बौछार, मेरे बच्चे! हर जगह से, दुनिया के हर कोने से, लोग मुझे लिख रहे हैं: "आखिर! यही वह योजना है जिसकी मैं प्रतीक्षा करता आया हूं", इत्यादि। एक बौछार।

एक ग्लाइडिंग क्लब भी होगा। हमें एक निर्देशक और ग्लाइडर मिलने का वचन मिल चुका है। यह एक वचन है। यह औद्योगिक विभाग में, पहाड़ी के ऊपर होगा। स्वभावतः, नौका-विहार क्लब समुद्र के पास होगा, झील के पास नहीं; लेकिन मैंने सोचा था—क्योंकि झील को गहरा करने की बहुत जोर-शोर से बातें चल रही हैं, वह प्रायः भर गयी है—मैं वहां जलविमान स्टेशन की बात सोच रही थी।

हम झील में भी नौका-विहार कर सकते हैं?

अगर जलविमान हों तो नहीं। नौका-विहार के लिए वह पर्याप्त बड़ी नहीं

है। लेकिन जलबिमान स्टेशन के लिए वह बहुत अच्छी रहेगी। लेकिन यह निर्भर करता है : अगर हमारे यहां हवाई-अड्डा हो तो यह आवश्यक नहीं है; अगर हवाई-अड्डा न हो तो...। लेकिन 'लेक ऐस्टेट' की योजना में हवाई-अड्डा था। 'छ' जो अब स्क्वाड्रन लीडर बन गया है, उसने मुझे हवाई-अड्डे की योजना भी बनाकर भेजी है, लेकिन छोटे हवाई जहाजों के लिए, जब कि हम एक ऐसा हवाई-अड्डा चाहते हैं, जो नियमित रूप से मद्रास के यातायात को संभाल सके, सवारी हवाई-अड्डा। इसके बारे में बहुत बातचीत हो चुकी है। 'एयर इण्डिया' और दूसरी कम्पनी से बातचीत हुई थी; लेकिन फिर वे कोई समझौता न कर पाये—बहुत तरह की तुच्छ, बेवकूफी-भरी कठिनाइयों के कारण। लेकिन यह सब कठिनाइयां ओरोवील के विकास के साथ, काफी स्वाभाविक रूप से दूर हो जायेंगी—हवाई-अड्डा पाकर लोग बहुत ज्यादा खुश हो जायेंगे।

नहीं, दो कठिनाइयां हैं। हमारे पास धन-राशि थोड़ी है—ठीक-ठीक कहें तो : केवल वही जो सरकार उधार दे सकती है और वह जो व्यक्ति अपनी जमीन के लिए दे रहे हैं—बस, इतना धन आ रहा है। लेकिन, जानते हो, इसके लिए बहुत मोटी रकम चाहिये, किसी नगर को बनाने के लिए अरबों की आवश्यकता पड़ती है!

*

सितम्बर, १९६६

ओरोवील में भीख मांगना निषिद्ध है। जो लोग रास्ते पर भीख मांगते देखे जायेंगे उन्हें इस तरह बांट दिया जायेगा : बच्चों को स्कूल में, बूढ़ों को किसी मकान में, बीमारों को अस्पताल में, स्वस्थ लोगों को काम में।

इसके लिए एक विद्यालय, घर, अस्पताल और विशेष कार्यक्षेत्र की व्यवस्था की जायेगी। उन्हें औरों के साथ घुलने-मिलने न दिया जायेगा, क्योंकि कुछ लोग बाहर से आकर सड़कों पर भीख मांगना शुरू कर सकते हैं।

वहां कोई पुलिस न होगी। हमारे पास... हमारे पास कोई शब्द नहीं

है... रक्षकों का एक दल होगा, रक्षकों की एक टोली, कुछ-कुछ जापान के आग बुझाने वालों जैसी, वे कसरती-पहलवान होते हैं और दुर्घटना होने पर सब कुछ करते हैं—कुछ भी, भूकम्प के समय वे सब कुछ करते हैं। वे चढ़कर मकानों में जा पहुंचते हैं। पुलिस के स्थान पर, रक्षकों की टोली होगी जो सारे नगर में चक्कर लगाती रहेगी और देखेगी कि कहीं उनकी जरूरत तो नहीं है। अगर वे किसी को भीख मांगते देखेंगे तो जैसा मैंने कहा उन्हें उस तरह भेज दिया जायेगा। बच्चों के लिए विद्यालय होगा, बूढ़ों के लिए घर होगा, बीमारों और अपाहिजों के लिए अस्पताल होगा, और एक ऐसा स्थान होगा जहां काम दिया जायेगा, उन सबको जो...। सब प्रकार के संभव काम होंगे, झाड़ू-बुहारू से लेकर... कुछ भी, और वे अपनी क्षमता के अनुसार ऐसा कोई भी काम करेंगे जिसकी जरूरत हो। इसकी व्यवस्था करनी होगी।

एक विशेष विद्यालय जो बच्चों को काम करना सिखायेगा, ऐसी चीजें करना सिखायेगा जो काम के लिए अनिवार्य हैं।

कोई जेल नहीं, कोई पुलिस नहीं।†

*

३० दिसम्बर, १९६७

ओरोवील के बारे में माताजी से जो बातचीत हुई थी उसे किसी ने अपनी स्मरण-शक्ति के आधार पर लिख लिया था। माताजी उसे पढ़ती हैं :

"ओरोवील आत्म-निर्भर नगरी होगी।

"वहां जितने लोग रहेंगे वे सब उसके जीवन और विकास में भाग लेंगे।

"यह सक्रिय या निष्क्रिय सहयोग के रूप में हो सकता है।

"यूं ओरोवील में कोई कर नहीं लगाया जायेगा लेकिन हर व्यक्ति सामूहिक कल्याण के लिए धन, वस्तु या सेवा द्वारा कुछ-न-कुछ सहयोग देगा।

"उद्योग जैसे क्रियात्मक रूप से सहयोग देने वाले विभाग नगर के विकास के लिए अपनी आमदनी का कुछ भाग देंगे।

"या अगर वे कुछ ऐसी चीज पैदा करते हों (मान लो खाद्य) जो नगरवासियों के लिए उपयोगी हो, तो वे नगर को ये चीजें देंगे, क्योंकि नगरवासियों को खिलाने के लिए स्वयं नगर जिम्मेदार है।

"ओरोवील के लिए कोई नियम या विधान नहीं बनाये जा रहे। जैसे-जैसे नगर का आंतरिक सत्य प्रकट होगा वैसे-वैसे चीजें अपना रूप लेती जायेंगी। हम पहले से कोई नियम नहीं बनाते।"

मेरा ख्याल है मैंने इससे ज्यादा कहा था, क्योंकि आंतरिक रूप से, मैंने इसके बारे में बहुत कुछ कहा था—संगठन, भोजन, आदि के बारे में। हम परीक्षण करेंगे।

कुछ ऐसी चीजें हैं जो सचमुच मजेदार हैं; सबसे पहले, उदाहरण के लिए, मैं चाहूंगी कि हर देश का अपना मण्डप हो, और हर मण्डप में उस देश का अपना रसोईघर हो—यानी, जापानी लोग चाहें तो अपने ढंग का खा सकेंगे, आदि लेकिन स्वयं नगर में शाकाहारी-मांसाहारी, दोनों तरह का भोजन मिल सकेगा, और साथ ही आगामी कल के भोजन के बारे में खोज करने की कोशिश भी की जायेगी।

पाचन की सारी क्रिया जो तुम्हें इतना भारी बना देती है—इसमें व्यक्ति का बहुत समय और शक्ति खर्च होती है—यह सब काम पहले ही हो जाना चाहिये, तुम्हें ऐसी कोई चीज मिलनी चाहिये जो एकदम आत्मसात् हो जाये, ऐसी चीजें आजकल बनायी जाती हैं; उदाहरण के लिए, विटामिन और प्रोटीन की गोलियां, जिन्हें तुरंत आत्मसात् किया जा सकता है, ऐसे पौष्टिक तत्त्व जो किसी-न-किसी चीज में पाये जाते हैं, जिनकी मात्रा अधिक नहीं होती—जरा-सी मात्रा आत्मसात् करने के लिए बहुत अधिक खाने की जरूरत पड़ती है। इसलिए अब चूंकि रसायन की दृष्टि से मनुष्य काफी प्रवीण हो चुका है, वह चीजों को ज्यादा आसान बना सकता है।

लोगों को यह केवल इसलिए पसंद नहीं है क्योंकि उन्हें खाने में अपार आनन्द आता है; लेकिन जब कोई खाने में बहुत अधिक रस नहीं लेता, तब भी उस पर समय बरबाद किये बिना पोषण की आवश्यकता तो होती

ही है। बहुत सारा समय बरबाद होता है—खाने में, हजम करने में, और बाकी सब में। इसलिए यहां, मैं चाहूंगी कि एक रसोईघर इस तरह के परीक्षणों के लिए हो, एक प्रकार की पकाने की प्रयोगशाला हो। लोग अपने स्वाद और रुझान के अनुसार जहां चाहें जा सकें।

और फिर भोजन के लिए दाम देने की जरूरत नहीं, लेकिन उन्हें अपनी सेवाएं या उत्पादन अर्पित करने चाहियें : उदाहरण के लिए, जिनके पास खेत हों उन्हें अपने खेतों की उपज देनी चाहिये; जिनके पास कारखाने हों उन्हें कारखाने की बनी चीजें देनी चाहियें; या फिर व्यक्ति भोजन के बदले अपना श्रम दे।

यह विधि एक बड़ी हद तक रुपये-पैसे के अंदरूनी लेन-देन को दूर कर देगी। हर चीज के लिए हमें इस तरह की चीजें खोजनी चाहिये। मूलभूत रूप से, यह नगरी अध्ययन के लिए होनी चाहिये, अध्ययन और शोध के लिए जिससे जीवन अधिक सरल बन सके और उच्चतर गुणों के विकास के लिए *अधिक समय* मिल सके।

यह तो केवल छोटा-सा आरंभ है।

माताजी एक-एक करके लिखे हुए वाक्यों को लेती हैं :

"ओरोवील आत्म-निर्भर नगरी होगी।"

मैं इस बात पर जोर देना चाहती हूं कि यह एक परीक्षण होगा, यह परीक्षण करने के लिए है—परीक्षण, शोध, अध्ययन। ओरोवील एक ऐसी नगरी होगी जो "आत्म-निर्भर" होने की कोशिश करेगी, या उस दिशा में चलेगी, या "आत्म-निर्भर" बनना चाहेगी, यानी...

स्वायत्त?

"स्वायत्त" का मतलब ऐसी स्वाधीनता समझा जाता है जिसमें औरों से संबंध कट जाता है, मेरा मतलब उससे नहीं है।

उदाहरण के लिए, जो लोग 'ओरोफूड' की तरह खाने की चीजें तैयार

करते हैं—स्वभावतः, जब ५०,००० लोग होंगे तो उनकी जरूरतें पूरी करना कठिन होगा, लेकिन फिलहाल तो कुछ हजार ही हैं—अच्छा कारखाना तो हमेशा बहुत ज्यादा पैदा करता है, इसलिए वह अपनी चीजें बाहर बेचेगा और धन कमायेगा। उदाहरण के लिए 'ओरोफूड' अपने कर्मचारियों के साथ विशेष संबंध स्थापित करना चाहता है—पुराने ढंग के नहीं, कोई ऐसी चीज जो साम्यवादी प्रथा का सुधरा हुआ रूप हो, सोवियट पद्धति से अधिक संतुलित व्यवस्था, यानी, जो किसी एक ओर ज्यादा झुककर अति न करेगी।

मैं एक बात कहना चाहती थी: सारे नगर को लें तो रहन-सहन का हिसाब व्यक्ति के हिसाब से नहीं होगा; यानी, हर आदमी को इतना देना पड़ेगा, ऐसा न होगा। साधन, कार्य और उत्पादन की संभावना के अनुसार हिसाब लगाया जायेगा; जनतंत्र का विचार नहीं होगा जो समग्र को बराबर-बराबर के टुकड़ों में काट देता है, यह एक बेहूदा प्रणाली है। इसके बजाय साधनों के अनुपात से हिसाब लगाया जायेगा: जिसके पास ज्यादा है वह ज्यादा देगा, जिसके पास कम है वह कम देगा; जो मजबूत है वह ज्यादा काम करेगा, जो मजबूत नहीं है वह कुछ और करेगा। हां, यह ऐसी चीज है जो ज्यादा सत्य, ज्यादा गहरी होगी। इसीलिए, मैं इसे अभी से समझाने की कोशिश नहीं करती, क्योंकि लोग हर तरह की शिकायतें करना शुरू कर देंगे। असल में तो जैसे-जैसे नगरी बढ़ती जाये वैसे-वैसे इस सबको सच्चे भाव में अपने-आप होते जाना चाहिये। इसलिए यह नोट बहुत संक्षिप्त है।

उदाहरण के लिए, यह वाक्य:

"यहां रहने वाले सब लोग इसके जीवन और विकास में भाग लेंगे।"

यहां रहने वाले इस नगर के जीवन और विकास में अपनी क्षमता और अपने साधनों के अनुसार भाग लेंगे, यांत्रिक रूप में नहीं—हर इकाई के लिए इतना। बात यह है, यह एक जीवित-जाग्रत् और सच्ची चीज होनी चाहिये, कोई यांत्रिक चीज नहीं; और हर एक की क्षमता के अनुसार: यानी, जिसके पास भौतिक साधन हों, जैसे कारखानेवाले, अपनी उपज के

अनुपात में सहायता दें, आदमी गिनकर नहीं।

"सहयोग निष्क्रिय या सक्रिय हो सकता है।"

इसमें "निष्क्रिय" ठीक तरह मेरी समझ में नहीं आया; मैंने फ्रेंच में कहा था, यह उसका अनुवाद है। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या हो सकता है, "निष्क्रिय"? ... यह कुछ-कुछ क्षेत्र या चेतना के भिन्न स्तर होगा।

क्या आपका मतलब यह है कि जो मनीषी हैं, जो अन्दर से काम करते हैं, उन्हें...

हां, यही। जिनके पास उच्चतर ज्ञान है उन्हें हाथों से काम करने की जरूरत नहीं, मेरा यही मतलब था।

"यूं वहां कर न होंगे, लेकिन हर एक सामुदायिक कल्याण के लिए धन, उपज या काम के द्वारा सहयोग देगा।"

तो यह स्पष्ट है : वहां कर नहीं होंगे, लेकिन हर एक से आशा की जायेगी कि सबके भले के लिए काम, उपज या धन से सहायता करें। जिनके पास धन के सिवाय कुछ नहीं है वे धन देंगे। लेकिन सच बात तो यह है कि "काम" का मतलब आंतरिक कार्य हो सकता है—लेकिन हम यह बात नहीं कह सकते, क्योंकि लोग इतने ईमानदार नहीं हैं। पूरी तरह अपने अन्दर-ही-अन्दर, गुह्य कार्य हो सकता है; लेकिन आदमी को उसके लिए पूरी तरह सच्चा और ईमानदार होना चाहिये, और उसके लिए क्षमता होनी चाहिये : कोई ढोंग न हो। यह जरूरी नहीं है कि काम भौतिक काम ही हो।

"उद्योग जैसे क्रियात्मक रूप से सहयोग देने वाले विभाग नगर के विकास के लिए अपनी आमदनी का कुछ भाग देंगे। या अगर वे कुछ ऐसी चीज पैदा करते हों (मान लो खाद्य) जो नगरवासियों के

लिए उपयोगी हो, तो वे नगर को यह चीज देंगे? क्योंकि नगरवासियों को खिलाने के लिए स्वयं नगर जिम्मेदार है।"

हम अभी यही तो कह रहे थे। उद्योग सक्रिय रूप से भाग लेंगे, वे सहयोग देंगे। अगर ये ऐसे उद्योग हैं जो ऐसी चीजें बनायें जिनकी हमेशा खपत न हो और इस कारण शहर के लिए संख्या या मात्रा में अधिक हो जायें तो उन्हें बाहर बेचा जायेगा। तब, स्वभावतः, उन्हें धन से सहायता करनी चाहिये। और मैं खाद्य पदार्थ का उदाहरण लेती हूं; जो लोग खाद्य पदार्थ पैदा करेंगे वे—स्वभावतः, अपनी उपज के अनुपात में—नगर को खाद्य देंगे और नगर सबके भरण-पोषण के लिए जिम्मेदार होगा। मतलब यह कि पैसा देकर खाद्य खरीदने की जरूरत न होगी; बल्कि उसे कमाना होगा।

यह एक प्रकार से साम्यवादी आदर्श से मिलता-जुलता रूप है, लेकिन समतल करने की वृत्ति से नहीं; यहां हर एक का स्थान उसकी क्षमता, आंतरिक स्थिति के अनुसार होगा—बौद्धिक या मनोवैज्ञानिक क्षमता या स्थिति के अनुसार नहीं।

सत्य तो यह है कि हर आदमी को भौतिक दृष्टि से अधिकार है—लेकिन यह "अधिकार" नहीं है...। हमारा संगठन कुछ ऐसा होना चाहिये, उसकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि हर एक की भौतिक आवश्यकताएं पूरी हो सकें, लेकिन इसकी कसौटी अधिकार या बराबरी नहीं, बल्कि न्यूनतम आवश्यकताएं होंगी। और यह एक बार स्थापित हो जाये, तो फिर हर एक अपने जीवन की व्यवस्था—आर्थिक साधनों के अनुसार नहीं, बल्कि अपनी आंतरिक क्षमताओं के अनुसार कर सकने के लिए स्वतंत्र हो सकेगा।

"कोई नियम या विधान नहीं बनाये जायेंगे। जैसे-जैसे इस नगरी का मूलभूत सत्य प्रकट होता और रूप लेता जायेगा वैसे-वैसे चीजें अपना रूप लेती जायेंगी। हम पूर्वानुमान नहीं लगाते।"

मेरा मतलब यह है कि सामान्यतः—आज तक, और अब अधिकाधिक रूप में—लोग अपने मानसिक विचारों और आदर्शों के अनुसार मानसिक

नियम बनाते आये हैं; और फिर वे उनके अनुसार चलते हैं *(माताजी मुट्ठी बांधकर दिखाती हैं कि दुनिया मन की कितनी पकड़ में है)*, लेकिन यह बिलकुल मिथ्या, मनमानी और अवास्तविक स्थिति है—इसके परिणामस्वरूप विद्रोह होते हैं या चीजें मुरझाकर अदृश्य हो जाती हैं... । होना तो यह चाहिये कि जीवन का अनुभव ही, जहां तक संभव हो, अधिक-से-अधिक लचीले और विस्तृत नियम बनाये, ऐसे नियम बनाये जो प्रगतिशील हों। कोई चीज बंधी हुई न हो।

सरकारों की यह बहुत बड़ी भूल है; वे एक चौखटा बनाते हैं और कहते हैं : "लो, अब यह तैयार है, तुम्हें इसके अंदर ही रहना होगा।" स्वभावतः इसके परिणामस्वरूप जीवन कुचला जाता है और वे उसे प्रगति करने से रोकती हैं। होना तो यह चाहिये कि धीरे-धीरे यथासंभव सामान्य नियम बनाते हुए जीवन स्वयं 'ज्योति', 'ज्ञान' और 'शक्ति' की ओर अग्रसर होते हुए अधिकाधिक विकसित हो और ये नियम अत्यधिक नमनीय हों, ताकि आवश्यकतानुसार बदल सकें—उतनी ही तेजी से बदलें जितनी तेजी से जरूरतें और आदतें बदलती हैं।

(मौन)

सारी समस्या का निचोड़ यह है : बुद्धि के मानसिक प्रशासन की जगह आध्यात्मिक चेतना का प्रशासन स्थापित किया जाये।

*

फरवरी १९६८

मनुष्य के अंदर पूर्ण पारदर्शक निष्कपटता होनी चाहिये। निष्कपटता का अभाव ही उन वर्तमान कठिनाइयों का कारण है जिष्का हमें सामना करना पड़ता है। कपट सब मनुष्यों में है। शायद पृथ्वी पर सौ मनुष्य ही ऐसे हों जो पूर्ण रूप से निष्कपट हैं। मनुष्य की प्रकृति ही उसे कपटी बना देती है —यह बहुत पेचीदा चीज है, क्योंकि वह निरंतर अपने-आपको धोखा देता है, अपने-आपसे सत्य को छिपाता है, अपने लिए बहाने बना लेता है।

सत्ता के सभी भागों में निष्कपट बनने का उपाय योग है।

निष्कपट होना मुश्किल है, लेकिन फिर भी व्यक्ति कम-से-कम मानसिक रूप में तो निष्कपट हो सकता है; ओरोवीलवासियों से इसी चीज की अपेक्षा तो की ही जा सकती है। शक्ति इस तरह मौजूद है जैसे पहले कभी नहीं रही थी; मनुष्य का कपट उसे नीचे उतरने से, उसका अनुभव करने से रोकता है। संसार मिथ्यात्व में जीता है, अब तक मनुष्यों के सभी पारस्परिक संबंध मिथ्यात्व और छल पर आधारित हैं। राष्ट्रों के पारस्परिक कूटनीतिक संबंध मिथ्यात्व पर आधारित हैं। वे शांति की इच्छा का दावा करते हैं और साथ-साथ अपने-आपको अस्त्रों से सज्जित करते हैं। पारदर्शक निष्कपटता ही मनुष्यों और राष्ट्रों के बीच रूपान्तरित जगत् को ला सकती है।

इस परीक्षण के लिए ओरोवील पहला प्रयास है। एक नये जगत् का जन्म होगा; अगर मनुष्य रूपांतर के लिए प्रयास करें, निष्कपटता को पाने की कोशिश करें, तो यह संभव है। पशु से मनुष्य बनने में हजारों वर्ष लगे; आज, अपने मन के द्वारा, मनुष्य एक ऐसे रूपांतर की इच्छा कर सकता है और उसे जल्दी ला सकता है जो ऐसे मनुष्य की ओर ले जाये जो देव हो।

मन की सहायता से—आत्म-विश्लेषण से—यह रूपांतर पहला चरण होगा; इसके बाद, प्राणिक आवेगों को बदलना आवश्यक होगा : यह कहीं अधिक कठिन है, और विशेषकर भौतिक का रूपांतर और भी कठिन है। हमारे शरीर के प्रत्येक अणु को सचेतन होना होगा। यही कार्य है जिसे मैं यहां कर रही हूं; यह मृत्यु पर विजय को संभव बनायेगा। यह एक और ही कहानी है; यह भविष्य की मानवता होगी, शायद सैकड़ों साल बाद, शायद उससे पहले। यह मनुष्य पर, राष्ट्रों पर निर्भर करेगा।

ओरोवील इस लक्ष्य की ओर पहला चरण है।†

*

मार्च १९६८

ओरोवील के घोषणा-पत्र की पहली धारा "ओरोवील में रहने के लिए व्यक्ति को 'भागवत चेतना' का इच्छुक और तत्पर सेवक होना चाहिये" के बारे में।

इस समय ओरोवील के बारे में यह एक बड़ा विवादास्पद विषय बना हुआ है। घोषणा-पत्र में मैंने "भागवत चेतना" रखा है, इसलिए वे कहते हैं: "यह हमें खुदा की याद दिलाता है।" मैंने कहा *(माताजी हंसती हैं)*: "मुझे तो यह खुदा की याद नहीं दिलाता!"

इसलिए कुछ इसे "उच्चतम चेतना" में अनूदित करते हैं, दूसरे कुछ और कहते हैं। मैंने रूसी लोगों के "पूर्ण चेतना" शब्द रखने से सहमति प्रकट की, लेकिन यह लगभग समान है... और वह 'तत्'—जिसका कोई नाम नहीं और जिसकी कोई परिभाषा नहीं—है परम 'शक्ति'। यह वह 'शक्ति' है जिसे व्यक्ति पाता है। और परम 'शक्ति' केवल एक पहलू है: वह पहलू जो सर्जन से संबद्ध है।†

*

१० अप्रैल १९६८

ओरोवील के प्रसंग में: धन और प्रशासन पर।

कहा जा सकता है कि धन के लिए युद्ध "परस्पर-विरोधी स्वामित्व" के बीच युद्ध है, लेकिन सचमुच धन किसी का नहीं। धन के *स्वामित्व* के विचार ने सबको गुमराह कर दिया है। धन को किसी की "संपत्ति" नहीं होना चाहिये: शक्ति की तरह यह कर्म करने का साधन है जो तुम्हें दिया गया है और उसका उपयोग... कह सकते हैं " 'देने वाले' की इच्छा" के अनुसार करना चाहिये, यानी निर्वैयक्तिक और ज्ञानपूर्वक करना चाहिये। अगर तुम धन को बढ़ाने और उपयोग करने के अच्छे यंत्र हो, तो तुम्हारे

पास धन आयेगा, और तुम्हारे अंदर उपयोग करने की जितनी क्षमता होगी उसके अनुपात में आयेगा, क्योंकि यह उपयोग करने के लिए ही होता है। यही सच्चा तरीका है।

सच्चा मनोभाव यह है : धन धरती पर कुछ काम करने के लिए एक शक्ति है, धरती को भागवत शक्तियों को ग्रहण करने और उन्हें अभिव्यक्त करने योग्य बनाने के लिए तैयार करना ही उसका काम है। उसे—यानी, उपयोग करने की शक्ति को—ऐसे हाथों में आना चाहिये, ऐसे लोगों के पास होना चाहिये जिन्हें सर्वाधिक स्पष्ट, व्यापक और सच्ची दृष्टि प्राप्त हो।

शुरू करने के लिए सबसे पहली चीज है (यद्यपि यह है एकदम प्रारंभिक) स्वामित्व का भाव न रखना—आखिर "यह मेरा है" का मतलब क्या है? ... मुझे समझ में नहीं आता। लोग उसे अपना क्यों बनाना चाहते हैं?—इसलिए कि वे अपनी मरजी के मुताबिक उसका उपयोग कर सकें, उसका जो चाहें कर सकें? अपने सोच-विचार के अनुसार उसका उपयोग कर सकें? बात ऐसी ही है। दूसरी ओर, हां, ऐसे लोग हैं जो उसे कहीं ढेर लगाकर जमा रखना चाहते हैं... लेकिन यह बीमारी है। वे उसे इसलिए जमा करते हैं ताकि उन्हें यह विश्वास रहे कि वह हमेशा उनके पास है।

लेकिन अगर आदमी यह समझ ले कि उसे ग्रहण करने और बांटने का केंद्र होना चाहिये, केंद्र जितना विस्तृत होगा (व्यक्तिगत का ठीक उलटा) जितना निर्वैयक्तिक, व्यापक और विस्तृत होगा, उतनी ही ज्यादा शक्ति को धारण कर सकेगा ("शक्ति" का मतलब है वह शक्ति जो द्रव्यात्मक रूप में नोट या सिक्के में बदल जाती है)। धारण करने की यह शक्ति सर्वोत्तम उपयोग के अनुपात में होती है—"सर्वोत्तम" आम प्रगति की दृष्टि से विशालतम दृष्टि, उदारतम समझ और सर्वाधिक प्रबुद्ध, यथार्थ और सच्चा उपयोग जो अहंकार की झूठी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं, धरती के विकास और उसकी प्रगति की दृष्टि से आम आवश्यकताओं के अनुसार हो अर्थात् विशालतम दृष्टि में होगी सर्वाधिक क्षमता।

सब मिथ्या गतियों के पीछे एक सत्य गति भी है; इस प्रकार निर्देशन, उपयोग और व्यवस्था करने में एक आनंद है जिसमें कम-से-कम अपव्यय हो और अधिक-से-अधिक परिणाम आये। इस दृष्टिकोण का होना बहुत

रोचक दृष्टिकोण का होना है। और जो लोग धन संचित करना चाहते हैं उनका यह सच्चा पक्ष होना चाहिये : यह है बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग करने की क्षमता। और फिर, ऐसे लोग हैं जो संपन्न होना और खर्च करना बहुत पसंद करते हैं; यह एक दूसरी ही चीज है—वे ऐसे उदार स्वभाव के होते हैं जो न नियमित होते हैं न व्यवस्थित। लेकिन *सच्ची* आवश्यकताओं को, अनिवार्यताओं को संतुष्ट कर पाने का आनंद पाना जरूर अच्छा है। यह रोग को स्वास्थ्य में बदलने, मिथ्यात्व को सत्य में बदलने, पीड़ा को हर्ष में बदलने के जैसा आनंद है; यह वही चीज है : एक कृत्रिम और मूर्खता-भरी जरूरत को—जो किसी स्वाभाविक चीज के साथ मेल नहीं खाती—एक ऐसी संभावना में बदलना जो बिलकुल स्वाभाविक वस्तु बन जाये। विभिन्न कामों के लिए और किसी चीज का प्रबन्ध करने, मरम्मत करने, इधर निर्माण, उधर व्यवस्था करने के लिए इतने धन की जरूरत है—यह बिलकुल ठीक और अच्छा है। और मैं जानती हूं कि लोग इस सबके लिए, जहां आवश्यकता है ठीक वहां धन पहुंचाने के लिए साधन बनना चाहते हैं। ऐसे लोगों में यह भाव समुचित होता है... पर जो लोग धन को हड़प लेना चाहते हैं उनमें यही भाव मूर्खता-भरे अहंकार का रूप ले लेता है।

संचय करने की आवश्यकता और खर्च करने की आवश्यकता (दोनों अज्ञानपूर्ण और अंधी हैं), दोनों मिलकर एक स्पष्ट दृष्टि और श्रेष्ठतम उपयोग ला सकती हैं। यह ठीक है, अच्छा है।

उसके बाद, धीरे-धीरे आती है उसे व्यवहार में लाने की संभावना।

लेकिन, स्वभावतः, तब जरूरत होती है बहुत स्पष्ट, निर्मल मस्तिष्कों की, मध्यस्थों की (!) ताकि व्यक्ति एक ही समय सब जगह रह सके और एक ही समय सब कुछ कर सके। तब धन का यह विख्यात प्रश्न हल हो सकेगा।

धन किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है। यह एक सामूहिक संपत्ति है जिसका उपयोग उन्हीं लोगों को करना चाहिये जिनमें संपूर्ण, व्यापक और वैश्व दृष्टि है। मैं यहां कुछ और भी जोड़ दूं : केवल संपूर्ण और व्यापक ही नहीं, बल्कि मूलतः सत्य-दृष्टि भी हो, ऐसी दृष्टि जिसके अंदर ऐसा विवेक हो जो वैश्व प्रगति के अनुकूल उपयोग में और मनमौजी उपयोग में

फर्क कर सके। लेकिन ये ब्योरे की बातें हैं, क्योंकि भूलें भी, अमुक दृष्टिकोण से अपव्यय भी, सामान्य प्रगति में सहायक होता है : ये कठिनाई से सीखे गये पाठ होते हैं।

(मौन)

मुझे 'क्ष' की बात हमेशा याद रहती है ('क्ष' दानशीलता का कट्टर विरोधी था); वह कहा करता था : दानशीलता मनुष्य के दु:ख-दैन्य को बनाये रखती है, क्योंकि मनुष्य के दु:ख-दैन्य के बिना उसके अस्तित्व का कोई कारण ही न रहेगा!... और वह महादानी, क्या नाम था उसका?— माजारिन के काल में, जिसने Little Sisters of Charity (लिट्ल सिस्टर्ज़ ऑफ चैरिटी) नामक संस्था की स्थापना की थी?...

वैसां द पॉल।

हां, वही। एक बार माजारिन ने उससे कहा : जब से तुमने गरीबों का ख्याल रखना शुरू किया है, उससे पहले कभी इतने गरीब लोग न थे! *(माताजी हंसती हैं।)*

बाद में।

धन के बारे में मैंने जो कहा था उसके बारे में मैंने फिर से सोचा है। ओरोवील का जीवन इसी भांति संगठित होना चाहिये, लेकिन मुझे संदेह है कि लोग इसके लिए तैयार भी हैं।

मतलब यह कि यह तब तक संभव है जब तक वे किसी ज्ञानी का पथ-प्रदर्शन स्वीकार करें?

हां। पहली चीज जिसे सबको मानना और स्वीकार करना चाहिये यह है कि अदृश्य और उच्चतर शक्ति—यानी, वह शक्ति जो चेतना के ऐसे स्तर

की है जो अधिकतर लोगों की आंख से ओझल रहता है, फिर भी जो हर एक के अंदर है, एक ऐसी चेतना जिसे कुछ भी, कोई भी नाम दिया जा सकता है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, लेकिन जो संपूर्ण और पवित्र है, इस अर्थ में कि वह मिथ्या नहीं है, 'सत्य' में है—यह शक्ति किसी भी भौतिक शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक सत्य, कहीं अधिक सुखद, सबके लिए कहीं अधिक हितकर तरीके से भौतिक चीजों पर शासन कर सकती है। यह पहली बात है। एक बार इस बात पर सहमत हो जाओ तो...

यह चीज ऐसी नहीं जिसे पा लेने का ढोंग किया जा सके; कोई इसका दिखावा नहीं कर सकता कि वह उसे प्राप्त है, या तो उसके पास है या नहीं है, क्योंकि *(हंसते हुए)* अगर यह ढोंग है तो जीवन में किसी भी अवसर पर प्रकट हो जायेगा! इसके अतिरिक्त, यह तुम्हें कोई भौतिक शक्ति नहीं देती। और इसके बारे में भी, 'क' ने एक बार कहा था—वह सच्चे अनुक्रम की, प्रत्येक व्यक्ति की चेतना की शक्ति पर आधारित अनुक्रम की बात कर रहा था—वह या वे व्यक्ति जो शीर्षस्थ होते हैं उनकी आवश्यकताएं, निश्चित रूप से, कम-से-कम होती हैं; जैसे-जैसे भौतिक पदार्थ के बारे में उनकी अन्तर्दृष्टि की क्षमता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनकी भौतिक आवश्यकताएं घटती जाती हैं। और यह बिलकुल सच है। यह अपने-आप, सहज रूप में होता है, किसी प्रयास का परिणाम नहीं होता : चेतना जितनी विशाल होगी, वह जितना अधिक वस्तुओं और वास्तविकताओं को अपने उर में ले सकेगी—उसकी भौतिक वस्तुओं की आवश्यकताएं उतनी ही कम होती जायेंगी। यह अपने-आप होता है, क्योंकि चीजें अपना महत्त्व और मूल्य खो बैठती हैं। उनकी भौतिक आवश्यकताएं कम-से-कम रह जायेंगी, 'जड़-द्रव्य' की क्रमिक प्रगति के साथ-साथ अपने-आप बदलेंगी।

और यह आसानी से पहचाना जा सकता है, है न? इस भूमिका का अभिनय करना कठिन है।

और दूसरी चीज है विश्वास की शक्ति; यानी, जब उच्चतम चेतना का 'जड़ द्रव्य' के साथ संपर्क हो जाये, तो सहज रूप से उसमें विश्वास की शक्ति मध्यवर्ती स्तरों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। उसकी विश्वास की शक्ति, यानी, उसकी रूपान्तर की शक्ति महज संपर्क में भी सभी मध्यवर्ती स्तरों से अधिक होती है। यह एक तथ्य है। ये दो तथ्य किसी भी ढोंग का

स्थायी हो सकना असंभव कर देते हैं। मैं सामूहिक संगठन की दृष्टि से देख रही हूं।

जैसे ही व्यक्ति इस परम 'उच्चता' से नीचे उतरता है कि विभिन्न प्रभावों का पूरा-का-पूरा खेल शुरू हो जाता है *(मिश्रण और संघर्ष की मुद्रा)* और यह अपने-आपमें एक असंदिग्ध चिह्न है: जरा-सा अवतरण —चाहे वह उच्चतम मन के, उच्चतर बुद्धि के क्षेत्र में ही क्यों न हो—होते ही प्रभावों का संघर्ष शुरू हो जाता है। सिर्फ जो सबसे ऊपर है, जिसमें पूर्ण पवित्रता है, उसमें सहज दृढ़ विश्वास की शक्ति होती है। इसलिए, तुम उसके स्थान पर जो भी करो, वह बस उसके सदृश भर है, और यह गणतंत्र से ज्यादा अच्छा नहीं है—यानी, एक ऐसी प्रणाली जो निम्नतम स्तर पर अधिकतम संख्या द्वारा शासन करना चाहती है—मैं यहां सामाजिक गणतंत्र की बात कर रही हूं जो सबसे नया आंदोलन है।

अगर परम 'चेतना' का कोई प्रतिनिधि नहीं है—यह हो सकता है, है न?—अगर कोई नहीं है तो, परीक्षण के तौर पर, एक छोटी संख्या शासन का भार ले सकती है—उसके लिए चार और आठ के बीच चुनाव किया जा सकता है, इसी तरह की कोई संख्या हो, चार, सात या आठ—ऐसे लोग जिनमें अन्तर्ज्ञानीय बुद्धि हो: इसमें बुद्धि की अपेक्षा "अन्तर्ज्ञान" का महत्त्व ज्यादा है—एक ऐसा अन्तर्ज्ञान हो जो बुद्धि के द्वारा प्रकट होता हो।

व्यावहारिक दृष्टि से इसमें कठिनाइयां होंगी, लेकिन यह शायद निम्नतम स्तर की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट होगा—फिर चाहे वह समाजवाद हो या साम्यवाद। बीच के सभी उपाय असमर्थ सिद्ध हो चुके हैं: धर्मतंत्र, अभिजाततंत्र, गणतंत्र, धनिकतंत्र आदि सब सरकारें पूरी तरह असफल हो चुकी हैं। दूसरी, साम्यवादी या समाजवादी सरकार भी अपने-आपको असफल सिद्ध करने के मार्ग पर है।

उनके मूल रूप में देखा जाये तो समाजवाद या साम्यवाद में सरकार नहीं होती, क्योंकि उसमें दूसरों पर शासन करने की क्षमता नहीं होती; ये लोग शक्ति किसी ऐसे को दे देने के लिए बाधित हो जाते हैं जो उसका उपयोग कर सके, उदाहरण के लिए, लेनिन, क्योंकि उसमें मस्तिष्क था। लेकिन इस सबका परीक्षण हो चुका है और ये सब प्रणालियां असफल सिद्ध हुई हैं। केवल एक ही चीज समर्थ हो सकती है, और वह है 'सत्य-

चेतना' जो अपने यंत्र स्वयं चुनेगी और अपने-आपको अगर एक न हो तो कुछ यंत्रों के द्वारा प्रकट करेगी—और "एक" पर्याप्त भी नहीं है, अनिवार्य रूप से "एक" को अपना दल चुनना होगा।

जिनमें यह चेतना हो वे समाज के किसी भी वर्ग के हो सकते हैं: यह एक ऐसा विशेषाधिकार नहीं जो जन्म से आता हो, यह प्रयास का फल, व्यक्तिगत विकास का फल होता है। असल में यह एक बाहरी चिह्न, राजनीतिक दृष्टिकोण से हटकर परिवर्तन का एक स्पष्ट चिह्न है—इसमें वर्ग, श्रेणी या जन्म का कोई महत्त्व नहीं रहता—वे सब अप्रचलित और लुप्त हो जाते हैं। उन्हीं व्यक्तियों को शासन करने का अधिकार रहता है जो उच्चतर चेतना तक पहुंच चुके हैं—दूसरों को नहीं, और इस बात का कोई मूल्य नहीं होता कि वे किस वर्ग के हैं।

यही सच्ची दृष्टि होगी।

लेकिन यह जरूरी है कि जो लोग इस परीक्षण में भाग ले रहे हों उन सबको यह विश्वास हो कि उच्चतम चेतना ही अत्यंत भौतिक वस्तुओं की सबसे अच्छी निर्णायक है। जिस चीज ने भारत का नाश किया है वह यह विचार है कि उच्चतर चेतना उच्चतर वस्तुओं के बारे में जानती है और निचले स्तर की चीजों में उसे बिलकुल कोई रस नहीं होता, और वह इन चीजों को बिलकुल नही समझती! इसी ने भारत का सर्वनाश किया। हां तो, इस भ्रांति का पूरी तरह निराकरण होना चाहिये। उच्चतम चेतना ही सबसे ज्यादा स्पष्ट देखती है—सबसे ज्यादा स्पष्ट और सबसे ज्यादा सत्य रूप में देखती है—कि निरी भौतिक वस्तुओं की क्या आवश्यकताएं होंगी।

इसके साथ, एक नये ढंग की सरकार का परीक्षण किया जा सकता है।

*

३१ मई, १९६९

परसों रात, मैंने श्रीअरविन्द के साथ तीन घंटे से अधिक समय बिताया और मैं उन्हें वह सब दिखा रही थी जो ओरोवील में उतरने वाला है। यह काफी मनोरञ्जक था। खेल थे, कला थी, यहां तक कि पाकविद्या भी थी।

लेकिन यह सब बहुत प्रतीकात्मक था। और मैं उन्हें मानों एक मेज के पास बैठी समझा रही थी, एक विशाल भूदृश्य (लैंडस्केप) सामने था। मैं उन्हें वह सिद्धांत समझा रही थी जिसके अनुसार शारीरिक व्यायाम और खेल-कूद व्यवस्थित होने वाले हैं। वह बहुत स्पष्ट, बहुत यथार्थ था, मैं मानों कोई प्रदर्शन दे रही थी, और ऐसा लग रहा था मानों मैं छोटे पैमाने पर, जो कुछ होने वाला है उसका, छोटा रूप दिखा रही थी। मैं व्यक्तियों और वस्तुओं को इधर से उधर घुमा-फिरा रही थी *(शतरंज की बिसात पर मोहरें चलाने का संकेत)*। लेकिन वह था बहुत मजेदार, और वे बहुत रुचि ले रहे थे : वे व्यवस्था के विशाल नियमों का निर्धारण कर रहे थे (मुझे मालूम नहीं इसे कैसे समझाऊं)। वहां कला थी जो सुंदर थी, अच्छी थी। वे बता रहे थे कि निर्माण के किस विधि-विधान के द्वारा घरों को सुखद और मोहक बनाया जाये और फिर रसोईघर को भी; यह इतना मजेदार था, हर एक अपने-अपने आविष्कार ले आया...। यह तीन घण्टे तक चला—रात के तीन घण्टे, बहुत होते हैं! बहुत ही मनोरंजक।

फिर भी धरती की अवस्थाएं उस सबसे बहुत दूर लगती हैं...

(कुछ रुककर) नहीं... वह ठीक यहीं था, वह पृथ्वी पर विजातीय नहीं प्रतीत हुआ। वह एक सामंजस्य था : चीजों के पीछे एक सचेतन सामंजस्य; शारीरिक व्यायामों और खेल-कूद के पीछे एक सचेतन सामंजस्य; सज्जा, कला के पीछे एक सचेतन सामंजस्य; भोजन के पीछे एक सचेतन सामंजस्य...

मेरा मतलब है कि धरती पर अभी जो कुछ है उसको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानों यह सब दूसरे ध्रुव पर है।

नहीं...

नहीं?

मैं आज 'य' से मिली थी, मैं उससे कह रही थी कि कला और खेल-कूद,

यहां तक कि भोजन और बाकी सभी चीजों की सारी व्यवस्था सूक्ष्म-भौतिक में हो चुकी है—ये चीजें नीचे उतरने और मूर्त रूप लेने के लिए तैयार हैं—और मैंने उससे कहा : "केवल मुट्ठी-भर मिट्टी की आवश्यकता है *(हाथों को बंद करने की क्रिया)*, मुट्ठी-भर मिट्टी जहां पौधा उगाया जा सके...। उसे विकसित होने देने के लिए मुट्ठी-भर मिट्टी ढूंढ़नी होगी।"

मातृमंदिर के बारे में

३१ दिसंबर, १९६९

यह पहला विचार था: वहां 'सेंटर' था और नगर उसके चारों तरफ संगठित था। अब वे ठीक इससे उल्टा कर रहे हैं। वे नगर बना लेना चाहते हैं और फिर बाद में 'सेंटर' बनाना चाहते हैं।

और "वस्तु" आने के लिए तैयार है! मैं यह बहुत पहले से जानती थी, वह मौजूद है *(ऊपर की ओर संकेत),* वह प्रतीक्षा कर रही है।

(मौन)

'ए' का विचार है कि बीच में एक द्वीप हो जिसके चारों तरफ पानी रहे, बहता पानी, जो पूरे नगर को पानी देगा; और पूरे नगर में से गुजरने के बाद उसे पम्प-हाऊस में भेज दिया जाये, और वहां से वह आसपास के सभी उर्वर खेतों में सिंचाई के लिए भेजा जाये। तो यह 'सेंटर' एक छोटा द्वीप-सा हुआ जिसके ऊपर वह होगा जिसे हमने पहले "मातृमंदिर" कहा —जिसे मैं हमेशा एक विशाल कमरे के रूप में देखती हूं, एकदम खाली, जो ऊपर से आते हुए प्रकाश को ग्रहण करेगा, इस तरह से व्यवस्था की जायेगी कि ऊपर से आने वाला प्रकाश एक ही स्थान पर केंद्रित हो जहां ... वह हो जिसे हम नगर के केंद्र के रूप में स्थापित करना चाहें। पहले, हमने श्रीअरविन्द के प्रतीक के बारे में सोचा था, लेकिन हम जो कुछ रखना चाहें रख सकते हैं। यूं हर समय प्रकाश की किरण उस पर पड़े जो ... सूर्य के साथ घूमती रहे, घूमती रहे, घूमती रहे, तुम समझ रहे हो न? अगर इसे अच्छी तरह किया जाये, तो बहुत अच्छा होगा। और फिर नीचे, ताकि लोग बैठकर ध्यान कर सकें, या केवल आराम कर सकें, *कुछ नहीं*, कुछ नहीं, केवल नीचे कुछ आरामदेह चीज रखी जायेगी ताकि वे बिना थके बैठ सकें, शायद कुछ खंभों के साथ जो टेक लगाने का काम भी देंगे। कुछ-कुछ ऐसा ही। और इसे ही मैं हमेशा देखती हूं। कमरा ऊंचा होना चाहिये, ताकि सूरज, दिन के समय के अनुसार, किरण के रूप में

प्रवेश कर सके और उस केंद्र पर पड़े जो वहां होगा। अगर इतना हो जाये, तो बहुत अच्छा होगा।

और बाकी के लिए वे जैसा करना चाहें कर सकते हैं, मेरे लिए सब समान है। पहले उन्होंने मेरे रहने के लिए स्थान बनाने का सोचा था, लेकिन मैं वहां कभी नहीं जाऊंगी, इसलिए यह कष्ट उठाने की जरूरत नहीं, वह पूरी तरह से अनुपयोगी होगा। और इस द्वीप की देखभाल करने के लिए यह तय हुआ था कि 'बी' के लिए वहां एक छोटा-सा घर होगा जो वहां बस एक अभिभावक के रूप में रहेगी। और फिर 'ए' ने उसे दूसरे किनारे से जोड़ने के लिए पुलों की पूरी व्यवस्था की थी। और दूसरे किनारे पर चारों तरफ केवल बगीचे-ही-बगीचे होंगे। ये बगीचे... हमने बारह बगीचों का सोचा था—जगह को बारह भागों में बांटकर बारह बगीचे, इनमें से हर एक चेतना की किसी स्थिति पर केंद्रित होगा, और वहां वे फूल होंगे जो उस स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं। और बारहवां बगीचा पानी में होगा, चारों तरफ—नहीं, "मंदिर" के चारों तरफ नहीं, उसके करीब होगा, उस वटवृक्ष के साथ जो वहां है। वही नगर का केंद्र है। और वहां, चारों तरफ के बाहरी बारह बगीचे फूलों की उसी व्यवस्था के साथ दोहराये जायेंगे।

(मौन)

इस तरह के मंदिर के बाहर के लिए, 'ए' ने एक बड़ा कमल बनाने के बारे में सोचा है। लेकिन फिर, यह अंदर का, प्रकाश का यह खेल, मुझे पता नहीं कमल के आकार के साथ यह होना संभव होगा या नहीं?

अगर 'ए' और 'सी' दोनों सहयोग दे सकें... अगर वे दोनों मिल सकें और अगर उनमें से एक हमेशा यहां रह सके, कभी एक तो कभी दूसरा, दोनों में से एक यहां रह सके और एक ही योजना हो जिसे वे मिलकर बनायें—तो काम ज्यादा तेजी से होगा, सौ गुना तेजी से।

सूरज की किरण का यह विचार... जब मैं दृष्टि डालती हूं तो तुरंत यही देखती हूं। सूरज की किरण जो हर समय आ सके—ऐसा व्यवस्था करनी होगी कि वह सारे समय आ सके (सूरज की गति का अनुसरण करने का संकेत)। और फिर, वहां कुछ होगा, एक प्रतीक, जो सीधा खड़ा

होगा ताकि उसे चारों तरफ से देखा जा सके, और साथ-ही-साथ प्रकाश को पूरी तरह से लेने के लिए यह सपाट भी होगा। क्या?... भगवान् के लिए, इसे कोई धर्म न बनाओ!

(मौन)

इसे चरितार्थ करने का उपाय कौन ढूंढ़ सकता है? क्योंकि यहां सूर्य के प्रकाश की कमी नहीं है...। निश्चय ही, कुछ दिन ऐसे होते हैं जब सूरज बिलकुल नहीं दीखता, लेकिन फिर भी, अधिक दिन ऐसे हैं जब वह होता है—ताकि हर तरफ से, किसी भी कोण से किरणें पड़ें। इसे इस तरह व्यवस्थित करना चाहिये। यह ज्यामिति का प्रश्न है। तुम इसके बारे में 'सी' से बातचीत कर सकते हो, क्योंकि उसके पास अगर कोई विचार हो...

इसी की जरूरत है, कोई ऐसी चीज, एक प्रतीक—जिस चीज की जरूरत हो हम पा लेंगे, हम देखेंगे— निश्चय ही, वेदी की तरह, लेकिन...। क्या? जो एक ही साथ प्रकाश को सीधा ऊपर से और हर तरफ से ग्रहण कर सके।

और फिर, और कोई खिड़की नहीं, समझे? बाकी सब अर्ध-प्रकाश में होगा। और वह, एक प्रकाश की तरह... यह अच्छा रहेगा, यह बहुत अच्छा हो सकता है। मैं चाहती हूं कि कोई ऐसा हो जो इसे अनुभव कर सके।

और अगर यह अच्छी तरह चरितार्थ हो गया, तो लोगों के लिए यह पहले से ही बहुत रोमांचक होगा। यह किसी वस्तु की ठोस सिद्धि होगी...। लोग कहना शुरू कर देंगे कि यह सौर धर्म है! *(माताजी हंसती हैं)* ओह, तुम्हें पता है, मैं हर मूर्खता, हर एक मूर्खता की आदी हो गयी हूं।

(मौन)

निश्चय ही, तर्कसंगत बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यह एक भूल है कि चारों तरफ निर्माण पहले कर लो और फिर 'केंद्र' बनाओ।

'ए' और उसके दल का विचार उन उद्योगों को लगाने का है जो

ओरोवील के लिए धन ला सकें, फिर...। यानी जल्दी कर सकने के बजाय, यह शताब्दियों में होगा।

मैं कल 'ए' के साथ इसके बारे में बातचीत करूंगी। मेरा मतलब है मैं उससे कहूंगी कि वह 'सी' से मिले, जिसके पास कई उत्तम विचार हैं —कि वह उसके साथ किसी सहमति पर आये। देखो, यह बहुत सरल है : हम 'ए' को समझाने की और सहयोग स्थापित करने की कोशिश करेंगे।

अब मेरे लिए चीजें ऐकांतिक नहीं रहीं, बिलकुल नहीं। *मैं एक ही साथ* एकदम विपरीत वृत्तियों के उपयोग की संभावनाएं भली-भांति देखती हूं...। यह ऐकांतिक नहीं है। मैं यह नहीं कहती : "ओह ! नहीं, यह नहीं !" नहीं, नहीं, नहीं। सब, सब कुछ एक साथ। मैं यही चाहती हूं : एक ऐसी जगह का निर्माण करना जहां सभी विपरीत चीजें एक हो सकें।

जब तक यह न किया जा सके *(गोल-गोल घूमने का संकेत)* यह चलता ही चला जाता है।

*

३ जनवरी १९७०

मधुर मां, मैंने 'सी' से आने के लिए कहा है। वह बाहर प्रतीक्षा कर रहा है।

हां। एक मजेदार बात है। बहुत समय से मुझे कुछ लग रहा था, तब हमने उस दिन उसके बारे में बात की और मैंने उसे देखा। मैंने इसके बारे में 'ए' से बात की और उसे कहा कि वह 'सी' से बातचीत कर ले और मैंने यह भी कहा कि जो करना चाहिये उसे मैंने देख लिया है। निश्चय ही, उसने 'ना' नहीं की, उसने हर बात पर 'हां' ही कही, लेकिन मुझे लगा कि सचमुच उसका इरादा न था...। लेकिन जो हुआ वह यही था। मैंने स्पष्ट रूप से देखा—बहुत, बहुत स्पष्टता से... यानी वह ऐसा था और वह अभी तक ऐसा है, वह वहां है *(एक शाश्वत स्तर का संकेत)*... इस जगह का आंतरिक भाग...

यह एक स्तंभ के अंदर के हिस्से के जैसा हॉल होगा। खिड़कियां न होंगी। वायु-संचार कृत्रिम होगा, उन मशीनों के साथ *(वातानुकूलन के यंत्र का संकेत)* और बस एक छत। और सूरज केंद्र पर पड़ेगा। या जब सूरज नहीं दिखेगा—रात को या बदली के दिनों में—एक स्पॉटलाइट रहेगी।

और विचार यह है कि अभी से एक तरह का नमूना या मॉडल बनाया जाये जिसमें करीब सौ लोग बैठ सकें। जब नगर बन जाये और हमें अनुभव हो जाये, तो हम उसे कोई बड़ा रूप दे सकते हैं। लेकिन फिर वह बहुत बड़ा होगा, जिसमें हजार से दो हजार तक आदमी समा सकें। और दूसरे को पहले के चारों तरफ ही बनाया जाये : यानी, दूसरा खतम होने से पहले, पहले को न हटाया जाये। यही विचार है।

केवल 'सी' से उसके बारे में बातचीत करने के लिए (अगर संभव हो, अगर मुझे लगे कि 'ए' के साथ इस बारे में बातें करना संभव है) मुझे एक नक्शे की आवश्यकता थी। मैं अपने-आप इसे नहीं बना सकती, क्योंकि अब मैं नहीं बना सकती; एक समय था जब मैं यह कर सकती थी, लेकिन अब भली-भांति नहीं देख पाती। मैं उसे आज तीसरे पहर अपने सामने बनवा लूंगी, फिर इस नक्शे के साथ मैं सचमुच अच्छी तरह समझा पाऊंगी। लेकिन तुमसे मैं केवल वही कहना चाहती थी जो मैंने देखा है।

यह बारह पहलुओं की मीनार होगी, हर पहलू साल के एक-एक महीने का प्रतिनिधि होगा; और ऊपर, मीनार की छत ऐसी होगी *(चारों ओर की दीवार से ऊपर उठती हुई छत का संकेत)*।

और फिर, अंदर, बारह स्तंभ होंगे। दीवारें और फिर बारह स्तंभ और ठीक केंद्र में, फर्श पर, मेरा प्रतीक होगा, और उसके ऊपर श्रीअरविन्द के चार प्रतीक, जो मिलकर समचतुष्कोण बनायेंगे, और उसके ऊपर... एक ग्लोब होगा। संभव हो तो, प्रकाश के साथ या प्रकाश के बिना, पारदर्शक वस्तु का बना ग्लोब, लेकिन सूर्य के प्रकाश को उस ग्लोब पर पड़ना चाहिये; महीने और समय के अनुसार वह यहां से, वहां से, उधर से *(सूरज की गति का संकेत)* पड़ेगा। समझ रहे हो न? एक छिद्र होगा जिसमें से किरण आ सकेगी। कोई विकीर्ण प्रकाश नहीं : एक किरण जो सीधी पड़े, जिसे सीधा पड़ना चाहिये। इसे कर सकने के लिए कुछ तकनीकी

ज्ञान की आवश्यकता होगी, इसीलिए मैं किसी इंजीनियर के साथ डिजाइन बनाना चाहती हूं।

और फिर, अंदर कोई खिड़की या रोशनी नहीं होगी। वह हमेशा, रात-दिन अर्ध-आलोकित होगा—दिन में सूरज से, रात में कृत्रिम रोशनी द्वारा। और फर्श पर, कुछ नहीं, केवल इस तरह का फर्श होगा *(माताजी के कमरे जैसा)*। यानी, पहले लकड़ी (लकड़ी या कुछ और), फिर एक तरह का मोटा, बहुत मुलायम रबर फोम, और फिर एक कालीन। कालीन सब जगह, केंद्र को छोड़ कर सब जगह होगा। और लोग हर जगह बैठ सकेंगे। १२ स्तंभ उन लोगों के लिए होंगे जिन्हें पीठ का सहारा लेने की जरूरत हो!

और फिर, लोग नियमित ध्यान या उस तरह की चीज के लिए नहीं आयेंगे (आंतरिक व्यवस्था बाद में होगी) : वह एकाग्रता का स्थान होगा। हर एक वहां न जा पायेगा; हफ्ते में या दिन में (मुझे पता नहीं) एक समय होगा जब दर्शनार्थियों को अंदर आने की स्वीकृति मिलेगी, लेकिन बहरहाल, कोई मेल-जोल नहीं। लोगों को पूरा स्थान दिखाने का एक निश्चित समय या निश्चित दिन होगा, और बाकी समय केवल उनके लिए होगा जो... गंभीर हैं—गंभीर और सच्चे, जो एकाग्र होना सीखना चाहते हैं।

तो मैं सोचती हूं कि यह अच्छा है। यह वहां मौजूद था *(ऊपर का संकेत)*। उसके बारे में बोलते समय, मैं अब भी उसे देख रही हूं—*मैं देख रही हूं*। जैसा कि मैं देख रही हूं, वह बहुत सुंदर है, सचमुच वह बहुत सुंदर है... एक तरह से अर्ध-आलोकित प्रकाश दिखता है, लेकिन वह बहुत शांत है। और फिर, बहुत स्पष्ट और उज्ज्वल रोशनी की किरणें प्रतीक पर पड़ेंगी (स्पॉटलाइट, कृत्रिम रोशनी, सुनहरी-सी होनी चाहिये, ठण्डी नहीं होनी चाहिये—यह स्पॉटलाइट पर निर्भर होगा)। प्लास्टिक द्रव्य या... मुझे पता नहीं किस वस्तु से बना गोला होगा।

बिल्लौर?

अगर संभव हो तो हां। छोटे मंदिर के लिए गोले का बहुत बड़ा होना आवश्यक नहीं है : अगर वह इतना बड़ा भी हो *(करीब तीस सेंटीमीटर*

का संकेत) तो अच्छा होगा। लेकिन बड़े मंदिर के लिए बड़ा ही होना चाहिये।

लेकिन बड़ा मंदिर कैसे बनेगा? छोटे के ऊपर?

नहीं, नहीं, छोटा हट जायेगा। लेकिन बड़ा बाद में ही बनेगा और बहुत बड़े पैमाने पर... बड़े के बनने के बाद ही छोटा हटेगा। लेकिन स्वाभाविक रूप से, नगर को पूरा होने में बीस साल लगेंगे (हर एक चीज को सुव्यवस्थित होने, अपने स्थान पर होने में)। यह बगीचे की तरह है; ये सभी बगीचे जो बनाये जा रहे हैं अभी के लिए हैं, लेकिन बीस साल में वह सब कुछ दूसरे पैमाने पर होगा; तब, वह सचमुच... सचमुच कोई सुंदर चीज होगी।

मैं सोच रही हूं कि इस बड़े ग्लोब को बनाने के लिए किस वस्तु का उपयोग किया जा सकता है?... छोटा शायद बिल्लौर का हो : इतना बड़ा ग्लोब *(तीस सेंटीमीटर का संकेत)*। मेरा ख्याल है इतना काफी होगा। कमरे के हर एक कोने से आदमी उसे देख सके।

वह फर्श से बहुत ऊपर उठा हुआ भी न होना चाहिये?

नहीं, श्रीअरविन्द के प्रतीक को बड़े होने की आवश्यकता नहीं। वह इतना बड़ा होना चाहिये *(संकेत)*...

पच्चीस, तीस सेंटीमीटर?

अधिक-से-अधिक, हां, अधिक-से-अधिक।

यानी वह करीब आंख की सतह पर होगा?

आंख की सतह पर, हां, यह ठीक है।

और *बहुत* ही शांत वातावरण। और *कुछ नहीं,* समझे—बड़े खंभे...। अब तक यह देखना बाकी है कि खंभे किस शैली के हों... वे *गोल* होंगे,

या फिर उनमें भी *बारह* पहलू होंगे...। और *बारह* स्तंभ।

और दो भागों में एक छत?

हां, एक ऐसी छत होगी जो दो भागों में हो ताकि सूरज आ सके। उसकी कुछ इस तरह व्यवस्था करनी होगी कि बारिश अंदर न आ पाये। हम ऐसा नहीं सोच सकते कि जब कभी बारिश हो तो किसी चीज को खोला और बंद किया जाये, यह संभव नहीं है। उसकी कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि बारिश अंदर न आ सके। लेकिन सूरज को किरणों के रूप में अन्दर आना चाहिये, विकीर्ण होकर नहीं। इसलिए छिद्र छोटा होना चाहिये। इसके लिए किसी ऐसे इंजीनियर की आवश्यकता है जो अपना काम सचमुच अच्छी तरह जानता हो।

और वे काम कब शुरू करेंगे?

मैं तुरंत, जैसे ही नक्शे हमारे हाथ में आयें, काम शुरू करवाना चाहती हूं। केवल, दो प्रश्न हैं : पहला है नक्शे (हमें कार्यकर्ता मिल सकते हैं) और फिर धन...। मेरा ख्याल है कि इस, छोटे मॉडल के विचार के साथ यह संभव है (निश्चय ही "छोटा" कहने का एक ढंग है, क्योंकि सौ आदमियों को बिठा पाने के लिए भी काफी बड़ी जगह की जरूरत होती है), शुरू करने के लिए छोटा-सा मॉडल, और फिर छोटा मॉडल बनाते समय वे सीखेंगे, और नगर के निर्माण के बाद ही विशाल बनेगा—अभी नहीं!

मैंने 'ए' से इसके बारे में बातचीत की, उसने मुझसे अगले दिन कहा : "जी हां, लेकिन इसे तैयार होने में समय लगेगा।" मैंने उससे वह सब नहीं कहा जो अभी-अभी तुमसे कहा है, मैंने केवल कुछ करने की बात कही। उसके बाद मुझे इस कमरे का अंतर्दर्शन हुआ—इसलिए अब मुझे किसी की जरूरत नहीं जो यह सोच सके कि क्या होना चाहिये : मैं जानती हूं। वास्तुकार के स्थान पर इसके लिए किसी इंजीनियर की जरूरत है, क्योंकि वास्तुकार... यह यथासंभव सीधा-सादा होना चाहिये।

मैंने 'सी' को बताया कि आपने यह विशाल, शून्य कमरा देखा है; इस बात से वह बहुत अधिक द्रवित हो उठा। उसने भी ठीक यह विशाल, शून्य कमरा देखा था। वह काफी अच्छी तरह समझ रहा है। हां तो, शून्य—यानी केवल एक आकार।

लेकिन मीनार की तरह का आकार, लेकिन... (इसीलिए मैं दिखाने के लिए खाका बनाना चाहती थी) समान अन्तराल के बारह पहलू, फिर एक दीवार होनी चाहिये, एकदम सीधी खड़ी दीवार नहीं लेकिन कुछ इस तरह की *(कुछ झुकी हुई-सी का संकेत)*। मुझे मालूम नहीं यह संभव है या नहीं और अंदर बारह स्तंभ। फिर सूरज को ग्रहण करने का कोई प्रबंध ढूंढ़ निकालना होगा। बारह पहलू कुछ इस तरह के हों कि सारे साल सूरज अंदर आ सके। इसके लिए ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो काम अच्छी तरह जानता हो।

बाहर... मैंने बाहर की चीज नहीं देखी, मैंने वह बिलकुल नहीं देखी, मैंने केवल अंदर का भाग देखा था।

मैं 'सी' को कागज आने के बाद सब समझाना चाहती थी। इससे ज्यादा आसान होता, लेकिन जब तुमने उसे बुला लिया है...

'डी' जाकर 'सी' को कमरे में बुला लाता है। माताजी उससे कहती हैं :

जब हमने इस मंदिर के निर्माण का निश्चय कर लिया, तो मैंने इसे देखा, मैंने इसे अंदर से देखा। मैंने अभी-अभी 'ई' के आगे उसका वर्णन करने की कोशिश की। लेकिन कुछ ही दिनों में मेरे पास कुछ नक्शे और ड्रॉइंग आ जायेंगी, तब मैं ज्यादा स्पष्टता से समझा पाऊंगी। क्योंकि मुझे एकदम मालूम नहीं कि बाहर से वह कैसा है, लेकिन अंदर के बारे में मैं जानती हूं।

'सी' : बाह्य अंतर से ही विकसित होता है।

वह बारह समान अंतराल के पहलुओं की एक तरह की मीनार है जो साल

के बारह महीनों का प्रतिनिधित्व करती है, और वह एकदम रिक्त है... उसमें सौ से लेकर दो सौ व्यक्तियों तक के बैठने का स्थान होगा। और फिर, छत को सहारा देने के लिए अंदर बारह स्तंभ होंगे (बाहर नहीं, अंदर), और ठीक केंद्र में, एकाग्रता की वस्तु...। सूरज के सहयोग से पूरे साल सूरज को किरणों के रूप में अंदर आना चाहिये : विकीर्ण होकर नहीं, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि वह किरणों के रूप में अंदर आ सके। फिर दिन के समय और साल के महीने के अनुसार किरण घूमेगी (ऊपर ऐसी व्यवस्था होगी) और किरण केंद्र पर पहुंचेगी। केंद्र में श्रीअरविन्द का प्रतीक होगा जो एक ग्लोब को सहारा देगा। ग्लोब हम किसी पारदर्शक वस्तु, जैसे बिल्लौर से बनाने की कोशिश करेंगे या...। एक बड़ा ग्लोब। और फिर, लोगों को एकाग्रता के लिए अंदर आने की स्वीकृति होगी— *(माताजी हंसती हैं)* एकाग्र होना सीखने की! कोई नियमबद्ध ध्यान नहीं, वह सब कुछ न होगा, लेकिन वहां उन्हें मौन रहना होगा, नीरवता और एकाग्रता में रहना होगा।

'सी' : यह बहुत सुन्दर है।

लेकिन स्थान एकदम... यथासंभव सादा होगा। और फर्श ऐसा होगा कि आदमी आराम से बैठ सके, ताकि उन्हें यह न सोचना पड़े कि यह उन्हें यहां चुभ रहा है या वहां चुभ रहा है!

'सी' : यह बहुत सुन्दर है।

और बीच में, फर्श पर, मेरा प्रतीक होगा। मेरे प्रतीक के केंद्र में चार भागों में, समचतुष्कोण की तरह, श्रीअरविन्द के चार प्रतीक होंगे, सीधे, जो एक पारदर्शक ग्लोब को सहारा देंगे। यूं देखा गया है।

तो मैं किसी इंजीनियर से छोटे-छोटे नक्शे बनवाने वाली हूं, सरल-से, जो दिखाने के लिए होंगे, और फिर जब वह तैयार हो जायेंगे तो मैं तुम्हें दिखलाऊंगी। यूं। और तब हम देखेंगे। दीवारें शायद कंक्रीट की बनानी होंगी।

'सी' : सारे ढांचे को रीइनफोर्स्ड कंक्रीट से बना सकते हैं।

छत शायद ढालू होनी चाहिये और फिर बीच में सूरज के लिए विशेष व्यवस्था होनी चाहिये।

आपने कहा कि दीवारें कुछ ढालू होंगी।

दीवारें या फिर छत ढालू होगी—जो बनाने में अधिक आसान हो। दीवारें सीधी बनायी जा सकती हैं और छत ढालू। और छत का ऊपरी हिस्सा बारह स्तंभों के सहारे होगा, और एकदम ऊपर, सूरज के लिए व्यवस्था होगी।

और अंदर, कुछ नहीं; स्तंभों के सिवाय और कुछ नहीं। स्तंभ, मुझे मालूम नहीं, हमें यह देखना होगा कि वे बारह पहलुओं के होंगे (छत की तरह, बारह पहलुओं के) या बस गोल होंगे।

'सी' : गोल।

या फिर केवल समचतुष्कोण—यह देखना बाकी है।

और फिर, फर्श पर, हम कुछ मोटी और मुलायम चीज बिछायेंगे। यहां—तुम जैसे बैठे हो आराम से बैठे हो न? हां? पहले लकड़ी है, और फिर इस तरह का रबर है, और उसके ऊपर ऊनी कालीन है।

आपके प्रतीक के साथ?

कालीन नहीं। प्रतीक के लिए, मैंने सोचा था कि उसे किसी मजबूत चीज से बनाया जाये तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

'सी' : पत्थर में होना चाहिये।

प्रतीक... निस्संदेह, सब कुछ उसके चारों ओर होगा। प्रतीक उसे पूरा

नहीं ढकेगा, वह स्थान के केवल बीचोबीच होगा—*(माताजी हंसती हैं)* उन्हें बीच के प्रतीक पर नहीं बैठना चाहिये। सारी चीज के साथ, ऊंचाई के साथ प्रतीक का अनुपात बहुत सावधानी से देखना पड़ेगा।

'सी' : और कमरा काफी बड़ा होगा?

ओह हां, उसे होना पड़ेगा... वह सूरज की इन किरणों के साथ अर्ध-आलोकित-सा होगा, ताकि किरण दिखायी पड़े। सूरज की एक किरण। फिर दिन के समय के अनुसार, सूरज घूमेगा (दिन के समय और साल के महीने के साथ)। और फिर रात को, जैसे ही सूरज अस्त हो जाये, स्पॉट-लाइटें जला दी जायेंगी जो उसी रंग और उसी का-सा प्रभाव डालेगी। और वहां दिन-रात रोशनी रहेगी। लेकिन कोई खिड़कियां, लैम्प या इस तरह की कोई चीज नहीं होगी—कुछ नहीं। वातानुकूलन के यंत्रों के द्वारा वायु- संचार होगा (उन्हें दीवारों के अंदर बनाया जा सकता है, यह बहुत आसान है)। और होगी नीरवता। अंदर कोई नहीं बोलेगा। *(माताजी हंसती हैं)* यह अच्छा रहेगा। तो, जैसे ही मेरे कागज तैयार हो जायेंगे, मैं तुम्हें बुलाकर दिखा दूंगी।

'सी' : जी, बहुत अच्छा।

'सी' बाहर चला जाता है। माताजी 'ई' के साथ बातचीत जारी रखती हैं।

मैंने 'सी' से इसलिए यह नहीं पूछा कि उसकी 'ए' से मुलाकात हुई या नहीं, क्योंकि... 'ए' पूरी तरह आज के "व्यावहारिक" वातावरण में है। यह अच्छा है—काम शुरू हो जाना चाहिये!

देखो, यही मैंने सीखा है : धर्मों की असफलता। यह इसलिए है क्योंकि वे विभक्त थे। वे चाहते थे कि लोग दूसरे धर्मों से कटकर ऐकांतिक रूप से अमुक धर्म के हों; और ज्ञान का हर क्षेत्र असफल रहा है, क्योंकि वे ऐकांतिक थे; और मनुष्य असफल रहा है, क्योंकि वह ऐकांतिक था। यह नयी चेतना अब और विभाजन नहीं चाहती (यह इसी पर जोर देती है)।

आध्यात्मिक छोर, भौतिक छोर, और... दोनों के मिलन-स्थल को समझना चाहती है, उस स्थल को... जहां वह सच्ची शक्ति बन जाये।

व्यावहारिक दृष्टि से मैं 'क' को समझाने की कोशिश करूंगी; लेकिन मैंने देखा है, मुझे ऐसा लगता है कि आवश्यकता इस बात की है... जब 'ए' यहां हो, तो वह 'ओरोमॉडल' के क्रियात्मक पहलू और बाकी चीजों को देखे। यह बहुत आवश्यक है, यह बहुत अच्छा है; और 'सेंटर' के निर्माण के लिए, मैं चाहती हूं कि 'सी' यह काम करे। तो मैं चाहूंगी कि 'ए' के जाने पर 'सी' यहां रहे; जब 'ए' चला जाये तब 'सी' को यहां रहना चाहिये, और हम 'सी' के साथ यह काम करेंगे। केवल मैं यह नहीं चाहती कि उनमें से किसी को ऐसा लगे कि यह एक-दूसरे के विरुद्ध है। उन्हें यह समझना चाहिये कि वे एक-दूसरे के पूरक हैं। मेरे ख्याल से 'सी' समझ जायेगा।

लेकिन 'ए' इसे अपने दायित्व में हस्तक्षेप की भांति ले सकता है?

शायद नहीं। मैं कोशिश करूंगी, मैं कोशिश करूंगी।

नहीं, जब मैंने उससे कहा कि 'सेंटर' बनाना अनिवार्य है, मैंने उसे देखा है और उसे बनाना चाहिये, तो उसने आपत्ति नहीं की। उसने बस मुझसे यह कहा: लेकिन इसमें समय लगेगा।" मैंने कहा: "नहीं, इसे तुरंत करना चाहिये।" और इसीलिए मैं उसे दिखाने के लिए एक इंजीनियर से ये खाके तैयार करवा रही हूं, क्योंकि यह किसी वास्तुकार का काम नहीं, इंजीनियर का काम है, जिसमें सूरज की रोशनी के लिए बहुत ही यथार्थ गणना की जरूरत है, बहुत ही यथार्थ। इसके लिए किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो सचमुच जानता हो। वास्तुकार को यह देखना होगा कि स्तंभ सुंदर हैं, दीवारें सुंदर हैं, अनुपात ठीक है—यह सब बिलकुल ठीक है—और यह कि प्रतीक केंद्र में है। सौंदर्यपक्ष के बारे में निश्चय ही वास्तुकार को देखना होगा, लेकिन गणना के पूरे पक्ष को...। और महत्त्वपूर्ण चीज यह है, केंद्र में सूरज की क्रीड़ा। क्योंकि वह प्रतीक बन जाता है—भावी सिद्धि का प्रतीक।

*

१० जनवरी १९७०

मेरे पास 'सी' का एक पत्र है...

मैं उससे आज तीसरे पहर मिलने वाली हूं।

मैंने तुमसे कहा था कि मैंने ओरोवील की केंद्रीय इमारत देखी थी... मेरे पास एक नक्शा है, क्या तुम्हें उसे देखने में दिलचस्पी है? यहां कुछ प्रलेख हैं।

(माताजी समझाते हुए नक्शे के कागज खोलती हैं) बारह पहलू होंगे। और, केंद्र से एक समान दूरी पर, बारह स्तम्भ होंगे। केंद्र में, फर्श पर, मेरा प्रतीक है, और मेरे प्रतीक के केंद्र में श्रीअरविन्द के चार प्रतीक हैं, सीधे खड़े, जो एक समचतुष्कोण बनाते हैं, और समचतुष्कोण के ऊपर एक पारभासक ग्लोब (अभी तक हमें यह नहीं मालूम कि वह किस चीज से बनेगा)। और फिर, जब सूरज चमकेगा, तो छत से उसकी रोशनी किरण के रूप में आयेगी (केवल वहीं, और कहीं नहीं)। जब सूरज छिप जायेगा, तो बिजली की स्पॉटलाइटें होंगी जो किरण ही भेजेंगी (केवल किरण, विकीर्ण रोशनी नहीं), ठीक इसके ऊपर, इस ग्लोब के ऊपर।

और फिर दरवाजे नहीं हैं, लेकिन... बहुत नीचे जाने पर व्यक्ति फिर से मंदिर के अंदर आ जायेगा। व्यक्ति दीवार के नीचे जाकर फिर अंदर निकल आयेगा। फिर से यह एक प्रतीक है। सब कुछ प्रतीकात्मक है।

और फिर वहां कोई फर्नीचर नहीं है, बल्कि फर्श पर, यहां की तरह, पहले, शायद, लकड़ी होगी, फिर लकड़ी के ऊपर एक मोटा "डनलप" होगा और उसके ऊपर, यहां की तरह, कालीन होगा। रंग का चुनाव अभी बाकी है। सारा स्थान सफेद होगा। मुझे ठीक नहीं मालूम कि श्रीअरविन्द के प्रतीक भी सफेद होंगे या नहीं... मेरे खयाल से नहीं। मैंने उन्हें सफेद नहीं देखा, मैंने उन्हें किसी ऐसे रंग में देखा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता,—सुनहरे और नारंगी के बीच का कोई रंग, कुछ-कुछ इस तरह का। वे सीधे होंगे। उन्हें पत्थर में बनाया जायेगा। और एक पारदर्शक नहीं बल्कि पारभासक ग्लोब होगा। और फिर एकदम नीचे *(ग्लोब के नीचे का संकेत)* एक रोशनी होगी जो ऊपर जायेगी, विकीर्ण होकर ग्लोब को प्रकाशित करेगी। और फिर, बाहर से रोशनी की किरणें केंद्र पर पड़ेंगी।

इसके सिवाय और कोई रोशनी नहीं, कोई खिड़कियां नहीं, यांत्रिक वायु-संचार होगा। सज्जा का एक भी सामान नहीं, कुछ भी नहीं। एक ऐसा स्थान... अपनी चेतना को पाने की कोशिश करने का स्थान।

बाहर, कुछ ऐसा होगा (माताजी दूसरा नक्शा खोलती हैं)। हमें मालूम नहीं कि छत एकदम नुकीली होगी या... बहुत सादी, बहुत सादी होगी। उसमें करीब २०० आदमी समा सकेंगे।

तो, 'सी' की चिट्ठी?

"बहुत प्यारी मां,

मैं 'ए' से इतवार को मिला। वह मेरे कमरे में आया था, हमने दोपहर का भोजन साथ-साथ किया। प्रेम के साथ, मैंने आपके और 'ए' के लिए कुछ बहुत ही सुन्दर फूल सजाये। आप हमारे साथ थीं। हमने बहुत बातें कीं। मैंने 'ए' को भाई के रूप में अनुभव किया।

"मैंने उससे कहा कि ओरोवील किसी और नगरी की तरह शुरू नहीं हो सकता—नगरी की योजना की कठिनाइयां, सामाजिक, आर्थिक कठिनाइयां, वह सब बाद में। शुरुआत "कुछ और" होनी चाहिये। इसीलिए हमें 'सेंटर' से शुरू करना चाहिये। यही 'सेंटर' हमारा उत्तोलक, हमारा निश्चित बिन्दु होना चाहिये, ऐसी चीज का जिसका, हम दूसरी ओर छलांग लगाने की कोशिश में, सहारा ले सकें—क्योंकि दूसरी ओर से ही हम यह समझना शुरू कर सकते हैं कि ओरोवील को क्या होना चाहिये। सभी स्तरों पर (गुह्य स्तर पर भी) हमारे अंदर आप जो कुछ तत्त्व भेज सकती हैं, जो 'जड़-भौतिक' में उतरता है, यह 'सेंटर' उसी का रूप होगा। हमारी तरफ से बस इतना ही होना चाहिये कि हम खुलें और सच्चे माध्यम बनें जिसके द्वारा आप उसे भौतिक रूप दे सकें।

"और मैंने उससे कहा कि अपने अंदर अनुभव को जीवंत बनाकर मुझे इन सब चीजों के पास पहुंचने की जरूरत महसूस हुई—और सभी, पूरब और पश्चिम के लोग, प्रेम की एक विशाल धारा में एकजुट हों। क्योंकि 'किसी और' चीज का निर्माण करने के लिए यही संभव कंक्रीट है।"

वह जो कह रहा है अच्छा है।

"और 'सेंटर' हमें यह प्रेम तुरंत दे सकता है क्योंकि यह आपके लिए प्रेम है! मैंने उससे कहा कि सचमुच हम सब मौन के दो क्षणों के साथ काम शुरू कर सकते हैं, और अपने अंदर पूरी तरह से शून्य होने की कोशिश कर सकते हैं, और हर एक की अभीप्सा द्वारा उस शून्य में आरंभ करने के लिए संकेत उतार ला सकते हैं। लेकिन सभी मिले हों, एक हों, खास तौर पर वे जो आध्यात्मिक रूप में अधिक आगे बढ़े हुए हैं (भारतीय)।

"'ए' ने पूरी तरह से बात स्वीकार कर ली। उसने कहा कि सचमुच यही होना चाहिये।"

(माताजी अनुमोदन में सिर हिलाती हैं।)

आज तीसरे पहर मैं 'सी' को यह नक्शा देने के लिए मिलूंगी। क्योंकि, जानते हो, मैंने यही देखा। हम उसे सफेद संगमरमर में बनायेंगे। 'एफ' ने कहा है कि वह सफेद संगमरमर ले आयेगा, उसे जगह मालूम है।

सारी इमारत सफेद संगमरमर में?

हां, हां।

लेकिन 'सी' ने मुझसे जो कहा वह मुझे बहुत ठीक लग रहा है। उसने कहा : हम इस 'सेंटर' को बनायेंगे, हम इस 'सेंटर' में अपना सारा हृदय और अपनी सारी अभीप्सा उंडेल देंगे...

हां, हां।

और बीतते वर्षों के साथ यह अधिकाधिक "शक्ति से भरपूर" हो जायेगा...

हां।

तो यह 'सेंटर' सच्ची वस्तु होगा। बाद में दूसरे बड़े मंदिर को बनाने के लिए इसे नहीं हटाना होगा।

मैंने यह बात उन लोगों को आश्वासन देने के लिए कही थी जो यह सोचते हैं कि किसी विशाल वस्तु की आवश्यकता है। मैंने कहा था : "हम इससे शुरू करेंगे, फिर देखेंगे।" समझ रहे हो न? मैंने कहा था : "नगर जब तक पूरी तरह न बन जाये, इस 'सेंटर' को रहना चाहिये, फिर बाद में देखेंगे।" बाद में कोई इसे हटाना न चाहेगा!

लेकिन उसने कहा कि स्थापत्यकला के दृष्टिकोण से यह बिलकुल संभव है कि जो कुछ बन गया है उसे छुए बिना, बाहर से इमारत को बढ़ाया जाये।

ओह, हां। यह बिलकुल संभव है। 'ए' ने मुझसे कहा : "बाद में हम क्या करेंगे?" मैंने कहा : "हम उसके बारे में बाद में सोचेंगे!" तो बात यह है! वे नहीं जानते... वे यह नहीं जानते कि *सोचना नहीं चाहिये*! मैंने इसके बारे में बिलकुल, बिलकुल नहीं सोचा, बिलकुल नहीं। एक दिन, मैंने उसे यूं देखा, जैसे मैं तुम्हें देख रही हूं। और अब भी, वह इतना जीवंत है कि बस मुझे निगाह डालने-भर की जरूरत है और मैं उसे *देख* लेती हूं। मैंने जो देखा वह 'सेंटर' था और उस पर पड़ने वाला प्रकाश और तब, *एकदम स्वाभाविक रूप से*, उसे देखते समय मैंने गौर किया, मैंने कहा : "तो यह ऐसा है।" लेकिन यह कोई विचार न था, मैंने "बारह खंभों और बारह पहलुओं और फिर..." की बात नहीं सोची; मैंने यह बिलकुल नहीं सोचा। मैंने ऐसा देखा।

यह श्रीअरविन्द के इन प्रतीकों की तरह है...। जब मैं 'सेंटर' के बारे में कहती हूं तो मैं अब भी श्रीअरविन्द के चार प्रतीक देखती हूं जिनके कोण एक-दूसरे को सहारा दे रहे हैं, इस तरह, और यह रंग... अजीब-सा रंग... मुझे मालूम नहीं यह कहां से मिल सकेगा। यह नारंगी-सुनहरा है, बहुत ही ऊष्मा से भरा। और उस स्थान पर बस यही एक रंग है; बाकी सब सफेद है, और एक पारभासक ग्लोब।

'सी' ने कहा है कि अभी तुरंत जाकर इटली में स्थित म्यूरानो में पूछताछ करेगा जहां बड़े बिल्लौर बनाये जाते हैं, वह यह पता लगायेगा कि बिल्लौर में, उदाहरण के लिए, तीस सेंटीमीटर का ग्लोब बनाना संभव है क्या?

ठीक-ठीक नाप नक्शे में है, उसे लिख लेना चाहिये।

वहां बहुत बड़ा शीशे का कारखाना है।

ओह! वहां के लोग विलक्षण वस्तुएं बनाते हैं... ग्लोब का नाप नहीं लिखा है क्या?

सत्तर सेंटीमीटर।

वह खोखला हो सकता है। उसके ठोस होने की आवश्यकता नहीं, ताकि वह बहुत भारी न हो जाये।

(मौन)

यह भूमिगत प्रवेशमार्ग... दीवार से लगभग बारह मीटर की दूरी से कलश के नीचे से शुरू होगा। कलश उतराई का सूचक होगा। मुझे यह चुनाव करना होगा कि ठीक किस दिशा से...। और फिर, यह संभव है कि बाद में कलश बाहर होने की जगह, अहाते के *भीतर हो*। तो शायद हम चारों ओर केवल एक बड़ी-सी दीवार खड़ी कर सकते हैं, और फिर बगीचे। अहाते की दीवार और इमारत के बीच, जिसे हम अभी बनाने वाले हैं, हम बगीचे और कलश ले सकते हैं। और उस दीवार में एक प्रवेशद्वार होगा... एक या कई सामान्य द्वार। लोग बगीचे में टहल सकेंगे। और फिर भूमिगत प्रवेशमार्ग में प्रवेश करने और मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार पाने के लिए कुछ शर्तों को पूरा करना आवश्यक होगा...। वह एक प्रकार की दीक्षा होनी चाहिये, बस 'यूं ही' नहीं, जैसे तैसे...

(मौन)

मैंने 'ए' से कहा: "बीस साल में देखेंगे"—तो इसने उसे ठंडा कर दिया। लेकिन पहला विचार तो यह था कि उसके चारों ओर पानी हो, उसे एक द्वीप बना दिया जाये ताकि मंदिर तक पहुंचने के लिए पानी को पार करना पड़े। द्वीप बनाना बिलकुल संभव है...।

*

१७ जनवरी, १९७०

तुम मुझसे क्या कहना चाहते थे?

> *मेरे पास 'सी' और 'जी' आये थे। दो बातें हैं। लेकिन पहले 'सेंटर' का नक्शा—ठीक-ठीक कहें तो 'सेंटर' के बाहर का नक्शा।*

बाहर का—मैंने कुछ भी नहीं देखा। यहां एक सामान्य खाका है, यह 'एफ' का बनाया हुआ है...। मैंने बिलकुल कुछ नहीं देखा और मैं सभी सुझावों के लिए तैयार हूं। और फिर?

> *'सी' ने मुझे कुछ समझाया जो मुझे बहुत सुंदर लगा, जिसे मैं आपके सामने रखना चाहूंगा...। जब आपने इस 'सेंटर' के बारे में कहा, वास्तव में, बाहर के बारे में आपने कहा था: "मुझे मालूम नहीं दीवारें ढालू होंगी या छत ढालू होगी।" आपको कुछ दुविधा-सी थी। तो 'सी' ने कहा कि उसे एक तरह की प्रेरणा-सी आयी, उसने एक बहुत ही सादी-सी चीज देखी, बड़ी सीपी की तरह, जिसका एक भाग सतह से ऊपर रहेगा और दूसरा जमीन के अंदर रहेगा। और उसने एक तरह की रेखाकृति बनायी है जिसे मैं आपको दिखाना चाहूंगा।*

वे 'ए' से भी मिले क्या? क्योंकि 'ए' के दो विचार हैं; वह मेरे पास दो विचारों को लेकर आया था, और मैंने उसे बता दिया कि दोनों में से कौन-सा मुझे ज्यादा पसंद आया, लेकिन अभी तक कोई निश्चय नहीं

हुआ है। और 'ए' को उसके विचारों की रूप-रेखा बनानी है। तो मैं देखूंगी कि 'सी' क्या कहता है, फिर मैं तुम्हें 'ए' के विचारों के बारे में बताऊंगी।

('ई' नक्शा खोलता है) देखिये, यह बाहरी हिस्सा है जो बस एक सीपी की तरह होगा। अंदर ठीक वैसा ही है जैसा आपने देखा है : यह विशाल कालीन, और फिर केंद्र में एक गोला। और 'सी' की इस प्रेरणा का कारण यह है कि आपने कहा था कि व्यक्ति नीचे जाकर वापिस ऊपर आ जायेगा। तो उसका यह गहरे नीचे जाने का विचार था, जिससे यहां एक सर्पिल सीढ़ी बनायी जा सके जो फिर से ऊपर आ जायेगी, और यहां सीढ़ियों की एक शृंखला होगी जो हर दिशा में निकलेंगी (सीपी के निचले हिस्से में) जो मंदिर में जायेगी। तो सारा निचला हिस्सा काले संगमरमर में होगा और ऊपर का सारा सफेद संगमरमर में। और सारी चीज विशाल कली की तरह होगी, मानों वह पृथ्वी से निकल रही है।

क्या तुम्हें विश्वास है कि वह 'ए' से नहीं मिला? क्योंकि 'ए' ने मुझसे कहा : "मैं एक विशाल गोला बनाना चाहता हूं; अंदर का ठीक अर्धगोलाकार होगा और दूसरा अर्धगोलक जमीन के अंदर होगा।" उसने करीब-करीब ऐसे ही शब्दों का उपयोग किया।

क्योंकि 'सी' ने अपने विचार के बारे में उससे कहा था।

ओह! 'सी' ने उससे कहा था! यही बात है।

यह जमीन से निकलती हुई कली के समान है।

हां, हां, यही पहला विचार था जो 'ए' ने मुझे बताया था, करीब-करीब इन्हीं शब्दों में कहा था। और फिर, उसका दूसरा विचार था पिरामिड का। मंदिर को जैसा हमने सोचा था उसी तरह छोड़कर फिर पिरामिड बनाना।

लेकिन मैंने भी पिरामिड के बारे में सोचा था, और मैंने उससे कहा : "मैंने पिरामिड के बारे में सोचा था।" पर उसने कहा कि वह दोनों के नक्शे बनायेगा, फिर हम लोग देखेंगे। अगर वह 'सी' के विचार से मेल खाता हो तो बहुत अच्छा है।

लेकिन वस्तुतः, 'ए' का विचार 'सी' का ही विचार है।

हां, यही बात है।

तो, जब व्यक्ति "नाल" के एकदम ऊपर पहुंच जायेगा, तो सभी दिशाओं में सीढ़ियों की एक पूरी शृंखला होगी, ताकि मनुष्य किसी भी तरफ से ऊपर मंदिर तक पहुंच सके...। और बीच में बिलकुल रिक्त होगा, और उसके चारों तरफ एक तरह की गैलरी होगी जहां लोग नीचे से ऊपर आ सकेंगे; वहीं पर ये सारी सीढ़ियां होंगी। और सब कुछ एकदम खाली होगा। इन गैलरियों के चारों कोनों से लगा हुआ बस एक बड़ा कालीन होगा। ऐसा लगेगा मानों वह हवा में लटका हो। बिलकुल सफेद, बिलकुल सादा।

और बारह स्तंभों का प्रश्न था...। 'सी' कह रहा था कि उसे लगा कि स्तंभ फिर भी पुरातन प्रतीक हैं और उनका सीपी के साथ मेल नहीं बैठेगा, और उसने कहा : "बारह स्तंभों के स्थान पर, प्रतीकात्मक रूप से बारह टेक बनाये जा सकते हैं, स्तंभों के बारह आधार, जो पीठ टिकाने के काम आ सकते हैं।"

ओह! लेकिन स्तंभ उपयोगी होंगे, क्योंकि स्तंभों के ऊपर हम स्पॉटलाइटें लगायेंगे जो प्रकाश को केंद्र में भेजेंगी। रात-दिन प्रकाश होगा; दिन के लिए, छिद्रों की व्यवस्था होगी, लेकिन सूरज के अस्त होते ही स्पॉटलाइटें जला दी जायेंगी और वे स्पॉटलाइटें बारह स्तंभों के ऊपर होंगी और केंद्र पर पड़ेंगी।

लेकिन, मधुर मां, अगर स्तंभ केवल स्पॉटलाइटों के लिए उपयोगी

होंगे, तो उन्हें दीवारों पर भी लगाया जा सकता है?

स्तंभ दीवार के पास नहीं हैं। स्तंभ यहां हैं, दीवार और केंद्र के बीचोबीच।

क्योंकि 'सी' ने यह बीच का स्थान बिलकुल खाली देखा, बस प्रतीक केंद्र में था और कालीन समतल था, बीच-बीच में स्तंभ उसे काटते न थे। लेकिन उनके स्थान पर बड़े ब्लॉक की तरह कुछ रखेंगे, बारह बड़े ब्लॉक जो स्तंभों की जगह दिखायेंगे और साथ ही सहारे का काम देंगे।

उसका कोई अर्थ नहीं है।

प्रतीकात्मक अर्थ? क्योंकि आपने तो स्तंभों के बारे में बहुत कुछ कहा था जो वहां बैठने वालों को सहारा देने के भी काम आयेंगे।

ओह, उनकी पीठ को।

इसीलिए उसने कहा था कि ये बारह ब्लॉक, उदाहरण के लिए, प्रतीक की तरह होंगे, हर एक भिन्न पदार्थ से बना होगा: बारह अलग-अलग पदार्थ।

स्वयं मैंने स्तंभ देखे थे।

बाहरी दीवारों पर आम वायु-संचार की व्यवस्था होगी, जो बिजली से होगा (खिड़कियां न होंगी) और फिर स्तंभों पर प्रकाश था... मैंने स्तंभ देखे थे, मैंने स्पष्ट रूप से स्तंभ देखे थे।

जी अच्छा, मैं उससे कह दूंगा।

रही बात चारों ओर की गैलरी की, पता नहीं मुझे वह बहुत पसंद आयेगी या नहीं... मैंने उसे नहीं देखा था, मैंने दीवारें बिलकुल खाली देखी थीं,

खिड़कियां न थी, और फिर स्तंभ, और फिर केंद्र। इस बारे में निश्चित हूं, क्योंकि मैंने यह देखा था, और बहुत देर तक देखा था।

आपको सीप का आकार कैसा लगा?

यानी वह पूरा वृत्त बनाता है : आधा ऊपर, आधा नीचे...। यह चलेगा। केवल सूर्य के लिए व्यवस्था करनी होगी।

जी हां, 'जी' प्रिज़्म के द्वारा रोशनी करने की समस्या के बारे में बहुत अच्छी तरह जानता है—क्योंकि अगर हम सूर्य की एक किरण को पकड़ना चाहें तो हमें प्रिज्म का उपयोग करना होगा। उसका कहना है कि वह समस्या को आसानी से हल कर देगा, वह उस पर काम कर रहा है। सूर्य की एक ही किरण पकड़ने के लिए वे प्रिज्मों को कुछ अमुक स्थानों पर रख देते हैं।

वह केवल एक किरण होनी चाहिये। मैंने जो देखा था, उसमें किरण *दिखायी देती थी*।

जी हां, यही बात है। प्रिज्म से किरण दिखायी देती है। तो सूर्य की गति के अनुसार अमुक संख्या में ज्यामितिक छिद्र होंगे...। लेकिन अंदर, भीतरी दीवारों पर बारह पहलू होंगे।

हां, हां।

और यह, सिद्धांत रूप में ('ई' गोल गैलरी की ओर इशारा करता है) ये दरवाजे थे जिनके द्वारा आदमी भूमिगत रास्ते से ऊपर आ सकेगा।

पता नहीं इस तरह के बहुत-से दरवाजे बनाना ठीक है या नहीं...। इसमें एक व्यावहारिक समस्या को हल करना होगा; अगर केवल एक ही द्वार हो

और उस पर बड़ी निगरानी रखी जाये, तो ठीक है, परंतु यदि कई दरवाजे हों और काफी रोशनी न हो, तो यह विपत्तिजनक होगा।

जी नहीं, मधुर मां, बाहर से तो केवल एक ही दरवाजा होगा, लेकिन जब आदमी सीपी की तली तक पहुंच जायेगा तब ये अनेक द्वार होंगे। नहीं, बाहर के लिए, केवल एक ही उतार होगा जो यहां आता है, इस सर्पिल सीढ़ी के नीचे।

(मौन)

'सी' ने चारों तरफ की इस गैलरी के बारे में सोचा था क्योंकि उसका कहना है कि इससे यह बिलकुल सफेद कालीन ज्यादा चमक उठेगा; वह ऐसा लगेगा मानों अधर में तैर रहा है, अलग-थलग, दीवारों में धंसा हुआ नहीं है।

मैंने "दीवार से लगे या धंसे" होने की बात नहीं सोची—क्योंकि दीवारों के चारों ओर हमेशा रास्ता था।

तो यह रास्ता है, और कुछ गैलरियां है। और खालीपन के इस विचार से भी उसने स्तंभ हटाने की बात सोची थी।

जो चीज मुझे पसंद नहीं आ रही वह है गैलरी का विचार, क्योंकि दीवारें ऊपर से नीचे तक, एकदम सीधी, सफेद संगमरमर की थीं।

ओह! लेकिन ये गैलरियां ऊंची नहीं हैं। वे जमीन से करीब तीस सेंटीमीटर ऊंची होंगी।

हां, तब ठीक है।

और इसके अतिरिक्त, उसने यह भी कहा कि इस गैलरी पर, या यूं

कहें इस किनारे पर जो चारों तरफ के रास्ते को कम करता है, कालीन पूरे कोण तक आयेगा, कोण को ढक देगा।

हां, यह ठीक है।

(मौन)

अच्छा है, यह ठीक है। तो उन्हें एक सहमति बनानी होगी। लेकिन शायद आधा काम हो चुका हो, क्योंकि 'ए' ने मुझसे इस विचार के बारे में कहा था। अगर मुझे यह पता होता कि यह 'सी' का विचार है, तो मैं तुरंत 'हां' कह देती। लेकिन यह हो जायेगा। ठीक है।

तो मैं उससे कह दूंगा कि इस आधार पर काम करे...। अब जिस प्रश्न का निश्चय करना बाकी है वह है बाहर का : क्या सीपी के चारों तरफ कुछ स्थान छोड़ना चाहिये ताकि सीपी की निचली गोलाई दिखायी पड़े? वरना अगर सब कुछ भर दिया जायेगा, तो बस यही लगेगा मानों एक अर्धगोलक जमीन पर टिका है। व्यक्ति यह अच्छी तरह समझ सके कि यह सीपी भूमिगत है, इसके लिए वह उसे चारों तरफ से खुला रखने की सोच रहा था।

मुझे मालूम नहीं। मैं कह रही हूं, मैंने बाहर का कुछ नहीं देखा, इसलिए मुझे नहीं मालूम। लेकिन वह खतरनाक होगा, लोग इसमें गिर सकते हैं।

या शायद किसी तरह की खाई बनायी जा सके जिसमें चारों तरफ पानी हो, स्वच्छ पानी जिससे, उदाहरण के लिए, सीपी की निचली गोलाई दिख सके?

हां, हां, हो सकता है यह अच्छा लगे।

नाप का भी प्रश्न है। नक्शे के अनुसार, आपने चौबीस मीटर रखा है—गोले के हर तरफ १२ मीटर स्थान छोड़ा है। लेकिन क्या हम

रास्ते के लिए जरा-सा ज्यादा स्थान छोड़ सकते हैं? नक्शे में व्यास है चौबीस मीटर का और ऊंचाई पंद्रह मीटर और बीस सेंटीमीटर।

आह?

'सी' पूछ रहा है अगर अनुपात को बदला जा सके तो? कालीन के नीचे चौबीस मीटर रखें, पर साथ में यह संभावना हो, उदाहरण के लिए, अंतराल के लिए दो या तीन मीटर छोड़ दें।

फिर दीवार कहां आयेगी?

वह यहां होगी ('ई' घुमावदार गैलरी के बाहर संकेत करता है)।

दीवार चौबीस मीटर दूर होनी चाहिये।

'सी' कह रहा था कि अगर ये रास्ते रखने हों, तो चौबीस मीटर स्थान कुछ छोटा पड़ेगा।

(मौन)

और ऊंचाई का भी प्रश्न है।

प्रश्न ठीक-ठीक यह था कि वह पूर्ण वृत्त बने।

अगर वह पूर्ण वृत्त बने, तो ऊंचाई दोनों दीवारों के बीच की दूरी का अर्धव्यास होगी।

हां।

(मौन)

जो चीज मुझे सचमुच प्रसन्नता देगी वह यह होगी कि वे दोनों किसी समझौते पर आ सकें और मुझे उन दोनों की ओर से एक ही योजना मिले। इस तरह, काम करना सरल होगा...। क्या 'ए' ने 'सी' के विचार को नहीं अपनाया? वे दोनों एक साथ मिलकर उसे कार्यान्वित क्यों नहीं करते?

हां, यह बात चीजों को सरल बना देगी।

हां, बहुत अधिक।

(मौन)

वहां नीचे क्या होगा? (माताजी सीपी के भूमिगत भाग की ओर इशारा करती हैं)। यह सब मानसिक है, लेकिन जब एक बड़ा-सा, एकदम अंधेरे से घिरा तहखाना होगा, तो वहां नीचे क्या होगा? क्या होगा वहां? बहुत-सी न कहने लायक बातें। आदमी को यह न भूल जाना चाहिये कि मानवता बदली नहीं है। और सब तरह के लोग आयेंगे...। प्रवेशद्वार पर नियंत्रण रखने पर भी तुम लोगों को देखने के लिए मना नहीं कर सकते, तो वहां नीचे क्या होगा? यह मेरी पहली आपत्ति थी जब 'क' ने मुझसे कहा: "हम विलक्षण भूमिगत रास्ते बना सकते हैं!" मैंने उसे कहा: "यह सब तो बहुत अच्छा है, लेकिन वहां, नीचे क्या होगा इस पर नियंत्रण कौन रखेगा?"

मैंने सोचा था कि ढलान का यह विचार आपका था!

मेरा विचार काफी छोटे ढलान का था, जो यहां बाहर निकल आता था (माताजी मूल नक्शे में एकमात्र प्रवेश की ओर इशारा करती हैं)। काफी छोटा ढलान, इस तरह की विशाल सुरंग नहीं। लेकिन यह संभव है, यह बस नियंत्रण का प्रश्न है। केवल एक बहुत बड़ा अंतर है, एक ऐसा रास्ता हो जो कमरे के साथ हो और लोगों की दो पंक्तियों के लिए हो (एक ऊपर

जाने वाली और दूसरी नीचे आने वाली) और वे लोग यहां से बाहर निकल आयें, उसमें और इस तरह की विशाल सुरंग में बहुत बड़ा अंतर है—बहुत बड़ा अंतर है! और अब, उसके अतिरिक्त वह पूरी तरह अंधेरी होगी।

काले पत्थर में, जी हां।

हां तो फिर? इसका मतलब आदमी वहां, नीचे बहुत स्पष्ट रूप से न देख पायेगा। फिर वहां, नीचे क्या होगा?

ये भूमिगत हिस्से सुरंगों के रूप में न होंगे; यह सर्पिल ज़ीना होगा, और जब हम ज़ीने के एकदम ऊपर पहुंच जायेंगे तो वह बहुत-से खुले ज़ीनों की शृंखलाओं में बंट जायेगा जो अधर में पुलों के समान लटके होंगे। यह बंद न होगा, यह सब अधर में उतराता होगा।

कोई दुर्घटनाएं नहीं होंगी? ओह! ऐसे लोग हैं जिनके सिर बादलों में रहते हैं और जो फर्श पर अपना सर फोड़ने के लिए तैयार रहते हैं। देखो, मेरी रुचि के लिए यह थोड़ा ज्यादा ही मानसिक है—मेरा मतलब है कि मानसिक रूप से यह बहुत आकर्षक होगा, लेकिन अंतर्दर्शन में...

मुख्य विचार था निचले हिस्से को सामूहिक रूप में प्रतीक का रूप देना।

(लंबा मौन)

देखेंगे! *(माताजी हंसती हैं।)*

(मौन)

जो हो, उन्हें मिलना चाहिये। और फिर मैं देखूंगी। मैं चाहूंगी कि दोनों अपने कागज लेकर एक साथ आयें। तब ठीक रहेगा।

(माताजी लंबी एकाग्रता में डूब जाती हैं)

एकमत होने तक प्रतीक्षा करेंगे।

और ऊपर के लिए, क्या हम सीपी का यह विचार छोड़ दें, या इसके बारे में और भी अध्ययन करें?

सीपी... विचार गोले का था। सीपी क्यों?

सीपी... गोल आकार, गोले का आकार।

अंडा लंबूतरा होता है, वह गोलाकार नहीं होता। सच्चा अंडा तो लट्टू की तरह होता है—तो ऊपर का हिस्सा ज्यादा फैला हुआ होगा और नीचे का कम चौड़ा होगा जहां केवल सीढ़ियां होंगी...। यह बिलकुल संभव है।

मुझे कागज का पुरजा दो। *(माताजी समझाती हुई अण्डे का चित्र बनाती हैं)* और फिर, यहां, एकदम नीचे, केवल सीढ़ियां होंगी, ऐसे, हां।

उसका विचार ब्रह्माण्ड को बनाना था, है न, मूल अण्डा। मंदिर को मूल अंडे का प्रतिनिधित्व करना चाहिये।

लेकिन ब्रह्माण्ड किस तरह का होता है?

मुझे नहीं मालूम...। मेरे ख्याल से, अण्डे की तरह!

अण्डे का निचला हिस्सा ऊपर के हिस्से से हमेशा कम चौड़ा होता है। तो अगर हम यूं अण्डा लें *(माताजी चित्र बनाती हैं)*, और नीचे ये सीढ़ियां हों, और सर्पिल सीढ़ी ऊपर मंदिर तक आये। उदाहरण के लिए, सीढ़ी में सात दरवाजे हों।

बारह के स्थान पर सात।

और यहां *(माताजी अण्डे के बीच का हिस्सा बनाती हैं)*, यह चौबीस

मीटर होगा और ऊंचाई में बस साढ़े पंद्रह मीटर। तो इस तरह यह ठीक है।

चौबीस मीटर पूरी चौड़ाई या कालीन के लिए?

नहीं, सीधी दीवारें होनी चाहियें, दीवारें तिरछी नहीं हो सकतीं, मैंने उन्हें सीधा देखा है।

सीधी, और फिर ऊपर जाकर घुमावदार।

मैंने जो देखा उसके अनुसार खंभे दीवार से ज्यादा ऊंचे थे, इसीलिए छत ढालू थी। और बिजली की रोशनी खंभों पर थी। और अण्डे का सबसे चौड़ा हिस्सा यहां होगा *(माताजी कालीन की सतह पर एक लकीर खींचती हैं)*।

फर्श की सतह पर

हां।

और आपने कहा सात दरवाजे?

सात ज़ीने। और एक तहखाने का रास्ता जो अण्डे के तल में ले जायेगा जहां से सात ज़ीने शुरू होते हैं। यह संभव है।

तो वस्तुतः मंदिर के अंदर की दीवारें सीधी होनी चाहियें।

यानी बाहर से, देखने के लिए हम उसे गोल-सी बना सकते हैं। लेकिन अंदर दीवारें सीधी होनी चाहियें।

दीवारें सीधी होंगी, और सीधी दीवारों के ऊपर गुम्बद होगा।

हां, सीधी दीवार के ऊपर गुम्बद। लेकिन गुम्बद अण्डे का गुम्बद भी हो सकता है, और मैंने सोचा था कि वह स्थान जहां गुम्बद दीवारों से मिलेगा खंभों पर होगा। बारह खंभे। और यहां, बाहर के लिए, वे दीवारों को इस तरह गोल बना सकते हैं *(माताजी चित्र बनाती हैं)*।

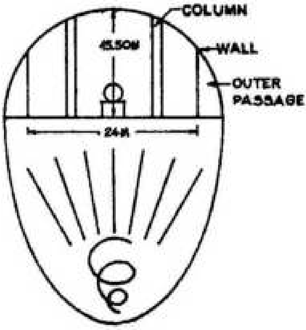

एकदम बाहरी दीवार और अंदर की दीवार के बीच स्थान रखना भी संभव है। कुछ स्थान रखना। यह देखना होगा।

यानी चौबीस मीटर के अतिरिक्त?

हां, यह सीधी-सी बात है। चौबीस मीटर दीवार तक खतम हो जाते हैं।

और सातों ज़ीनों के लिए दरवाजे?

मैं ज्यादा पसंद करूंगी कि वे दीवार के बाहर हों।

हां, यह ज्यादा अच्छा होगा, क्योंकि इससे केंद्र में अधिक स्थान मिलेगा।

ओह! हां, और अंदर अधिक स्पष्ट होगा। मुझे इन सब ज़ीनों के दृश्य पसंद नहीं आये। मैं एक भी ज़ीना देखना न चाहती थी, और सात देखना...। लेकिन बाहर, यह ठीक है।

तो रास्ता बाहर होगा...

रास्ता बाहर होगा।

हां, जैसा भारत में होता है जब आदमी मंदिर की परिक्रमा करता है।

हां। ठीक है।

इस "नाल" के नीचे से निकले बगैर क्या सात ज़ीने सीपी के एकदम आधार से शुरू हो जायेंगे?

वे यही चाहते हैं। नीचे के लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है। चाहे वह ऐसा ज़ीना हो या... जब तक कि वह बहुत खड़ा न हो।

(मौन)

तुम्हारे पास और क्या है?

समस्या का दूसरा पहलू है।

ओह? वह क्या है?

'जी' और 'सी' ने यह समझ लिया है कि अगर ओरोवील या इस 'सेंटर' के निर्माण को आश्रम से एकदम स्वतंत्र, केवल ओरोवीलवासियों पर छोड़ दिया गया तो काम कभी न होगा। वहां सच्चा बल कभी न होगा; जो लोग वहां हैं वे काम करने के लिए पर्याप्त ग्रहणशील नहीं हैं। अगर आश्रम और ओरोवील में यह भेद रहेगा, तो यह कभी सफल न होगा, वे और एक "रचना" कर लेंगे लेकिन कोई सच्ची वस्तु नहीं बना पायेंगे। उनके अनुसार, इसके लिए एकमात्र आशा यही है कि सचमुच इस 'सेंटर' का निर्माण केवल ओरोवीलवासियों के द्वारा नहीं होना चाहिये, बल्कि आश्रम के सभी लोगों के द्वारा होना चाहिये जिसमें ओरोवीलवासी और गैर-ओरोवीलवासी का कोई भेद न हो : इस 'सेंटर' के निर्माण के लिए

सभी शक्तियों को एक करना चाहिये—ओरोवीलवासियों को बाहरी अलगाव के द्वारा छेक नहीं देना चाहिये...। जिस तरह सभी शिष्यों ने 'गोलकुण्ड'[1] बनाया था, उसी तरह बाहर के श्रमिकों के बिना सभी शिष्यों को ओरोवील के 'सेंटर' को बनाना चाहिये।

'गोलकुण्ड' में बाहर के श्रमिक थे।

फिर भी, बाहरी तत्त्व को अधिक-से-अधिक सीमित रखना, ताकि यह समर्पण का कार्य हो। नहीं तो, 'छ' कहता है, ओरोवील के लोग दंभ, नासमझी से भरे हैं, वे चीज का बाहरी रूप देखते हैं। यहां के लोगों की शक्ति को उसके साथ मिलना चाहिये। और अगर आश्रम के लोग अपनी शक्ति भरने न आयें तो कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा...। 'ग' ने मुझसे कहा कि, इस समय, बाहर से ओरोवील कब्रिस्तान-सा दीखता है (माताजी हंसती हैं)। *यह अहं का जीता-जागता परिणाम है। एकमात्र चीज जो इसे बचा सकती है वह है आश्रम के लोग वहां जाकर काम करें और दूसरे उसमें समाविष्ट हों —नहीं तो...*

(लम्बा मौन)

लेकिन आश्रम में, तीन केंद्र हैं जो निर्माण का काम करते हैं। 'एच' है जो मकानों की देखभाल करता है, 'आई' और 'एफ' हैं।

लेकिन 'जी' का यह मतलब नहीं था। वह निर्माण की समस्या के बारे में बिलकुल नहीं कह रहा था। वह इस बात के बारे में कह रहा था कि शिष्य ओरोवीलवासियों के साथ काम करें। 'जी' इंजीनियर के रूप में, और एकत्रित धन के साथ निर्माण का काम करेगा, लेकिन श्रम के लिए पूरे आश्रम के लोगों को आना चाहिये और ओरोवीलवासियों के साथ मिलना चाहिये : यह विचार है।

---

[1] पॉण्डिचेरी में आश्रम का एक गेस्ट-हाऊस।

यह संभव नहीं है। आश्रम के सभी लोग जिनकी काम करने की उम्र है, सब काम कर रहे हैं। उन सभी के अपने-अपने काम हैं।

'जी' का एक तरह की कार्यक्रम-तालिका का विचार है। उदाहरण के लिए, हर व्यक्ति दिन में एक घंटा, या हफ्ते में एक दिन दे। क्योंकि नहीं तो...

वे इससे बहुत ही खुश होंगे! उनके लिए यह असाधारण तमाशा होगा। मुझे उनसे कुछ करवाने की अपेक्षा उन्हें छितरने से रोकने में ज्यादा कठिनाई होती है। उनके लिए तो यह एक मनोरंजन होगा।

क्योंकि उसका कहना है कि आश्रम के लोगों की आंतरिक शक्ति के ओरोवील के लोगों के साथ न मिलने से ओरोवीलवासी वही रहेंगे जो वे हैं...। उसका कहना है कि इसके बिना कोई आशा नहीं है।

ओह नहीं! उसे मालूम नहीं है। यह सब मन में है, यह सब मानसिक है। वे नहीं जानते। कौन जानता है? केवल तभी जब व्यक्ति देखता है। उनमें से एक भी नहीं देखता। सभी विचार, विचार, विचार...। विचार निर्माण नहीं करते।

क्या ओरोवील के लोग निर्माण कर सकते हैं?

मैं काम कर रही हूं *(गूंधने की मुद्रा)*, उन ऊर्जाओं को एक साथ लाने के लिए काम कर रही हूं जो यह कर सकती हैं। और वहां छनाई होनी चाहिये।

(मौन)

लेकिन, तुम समझ रहे हो, वे शारीरिक काम की बात कर रहे हैं, और शारीरिक काम के लिए बस जवान लड़के हैं जो स्कूल में हैं—सारे आश्रमवासी बूढ़े हो गये हैं, मेरे बालक, वे सब बूढ़े हो गये हैं। केवल विद्यालय

में युवक हैं। और जो विद्यालय में हैं वे आश्रमवासी बनने के लिए नहीं आये हैं, वे यहां शिक्षा पाने के लिए हैं—यह चुनाव उन्हें करना है। उनमें से बहुत-से, बहुत-से ओरोवील जाना चाहते हैं। तो आश्रम का शिक्षापक्ष ओरोवील जायेगा...। उनमें बहुत-से हैं। लेकिन मुझे उनके नाम दो— कौन वहां जाकर अपने हाथों से काम कर सकता है?

लेकिन, मधुर मां, एकमात्र संभावना यह है कि आप कहें, और तब मैं कल ही ओरोवील जाकर दो घंटों तक "टोकरियां" इकट्ठी करूंगा।

(माताजी हंसती हैं) मेरे बालक, तुम सबसे छोटों में से हो...। क्या तुम यह सोच सकते हो कि मैं 'जे' से कहूं: "जाओ और काम करो"?

आह, तो इससे और सब भी आकर्षित होंगे।

(माताजी हंसती हैं) बेचारा 'जे'!

(लंबा मौन)

अगर तुम्हें पता होता कि हर रोज मेरे पास कितने तथाकथित ओरोवील-वासियों के पत्र आते हैं जो कहते हैं: "ओह, अंततः मैं चुपचाप रहना चाहता हूं, मैं आश्रम में आना चाहता हूं, मैं अब ओरोवीलवासी नहीं रहना चाहता।" तो यह है, यह एकदम विपरीत है: "मैं चुपचाप रहना चाहता हूं।" लो।

(मौन)

तुम जानते हो, मैं बाहरी निर्णयों पर विश्वास नहीं करती। मैं केवल एक बात पर विश्वास करती हूं: 'चेतना' की शक्ति में जो इस तरह से दबाव डाल रही है *(कुचलने की मुद्रा)*। और दबाव बढ़ता चला जा रहा है... जिसका मतलब है कि वह लोगों की छंटाई कर देगा। मैं केवल इसी पर विश्वास करती हूं—'चेतना' के दबाव पर। बाकी सब चीजें आदमी करते हैं। वे न्यूनाधिक रूप में अच्छी तरह करते हैं, और फिर यह काम जीता

है, और फिर वह मर जाता है, और फिर वह बदलता है, और फिर वह विकृत हो जाता है, और फिर... उन्होंने जो कुछ भी किया है वह सब। यह इतना कष्ट उठाने लायक नहीं है। कार्य पूरा करने की शक्ति ऊपर से आनी चाहिये, इस तरह से, अनिवार्य *(अवतरण का संकेत)*! और उसके लिए, यह *(माताजी अपने माथे की ओर इशारा करती हैं)*, इसे चुप रहना चाहिये। उसे यह न कहना चाहिये : "ओह, यह न होना चाहिये, ओह, यह होना चाहिये, ओह, हमें यह करना चाहिये...।" शांति, शांति, शांति। वह तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानता है कि किस चीज की जरूरत है। तो, ऐसा है।

चूंकि ऐसे लोग ज्यादा नहीं हैं जो समझ सकें, इसलिए मैं कुछ बोलती नहीं। मैं केवल देखती और प्रतीक्षा करती हूं।

(मौन)

अगर उनमें समझौता हो जाये, तो काम ज्यादा तेजी से होगा। बस। ब्यौरे के बारे में आपत्तियों का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि आदमी एक विचार लेकर चलता है और जा पहुंचता है कहीं और... आदमी इस बीच बहुत-सी प्रगति कर लेता है। इसलिए उसके बारे में बातचीत करने की जरूरत नहीं, यह केवल...। केवल अपनी ऊर्जाओं को एक करने की कोशिश करो ताकि काम तेजी से शुरू हो सके। बस।

(माताजी हंसती हैं।)

'ऐस्पिरेशन' वालों के साथ वार्ताएं[1]

१० मार्च, १९७०

'ए': हम आपके साथ 'ऐस्पिरेशन' में काम के बारे में बात करना चाहेंगे। हम जो जानना चाहेंगे, हम जिसकी खोज में हैं, वह है उचित वृत्ति...

मुश्किल क्या है?

'ए': मुश्किल यह है कि...

हर एक अपनी दिशा में खींचता है...।

'ए': हर एक अपनी दिशा में खींचता है। ऐसा कोई नहीं जो सत्य के साथ संपर्क में हो।

हमें यह बात याद रखनी चाहिये कि हम मानवता की वर्तमान स्थिति से आरंभ कर रहे हैं। अतः तुम्हें सभी कठिनाइयों का सामना करना होगा; समाधान खोजना होगा।

(*ध्वन्यांकन यंत्र की ओर इशारा करके*) यह क्या है?

'बी': मधुर मां, मैं 'ओरोमॉडल' के लोगों के लिए ध्वन्यांकित कर रहा हूं।

---

[1]१९७० के मार्च और अगस्त के बीच, माताजी हर सप्ताह अपने कमरे में कुछ थोड़े-से ओरोवीलवासियों से, कई 'ऐस्पिरेशन कम्यूनिटी' वालों से मिला करती थीं—इसीलिए इसका शीर्षक "'ऐस्पिरेशन' वालों के साथ वार्ताएं" रखा गया है। फूल अर्पण करने और नये लोगों का परिचय कराने के बाद कुछ बातचीत होती थी, यद्यपि कई बार वह होता था जिसे माताजी "नीरवता का स्नान" कहती थीं। ये वार्ताएं उन बाईस बैठकों के ध्वन्यांकन से संपादित की गयी हैं।

(*माताजी हंसती हैं*) तुम्हें मुझसे नहीं कहना चाहिये था!

'ए': परंतु मधुर मां, हमारे सामने कई समाधान हैं। उदाहरण के लिए, एक ओर...

हर एक का अपना समाधान होता है, और यही बड़ी मुश्किल है। 'सत्य' में पहुंचने के लिए, हर एक का अपना समाधान है। फिर भी हमें साथ मिलकर काम करने के लिए कोई रास्ता निकालना चाहिये।

(मौन)

तो ढांचा विशाल होना चाहिये, बहुत लचीला, और हर एक की ओर से महान् सद्‌भावना: यह पहली शर्त है—पहली वैयक्तिक शर्त—सद्‌भावना। हर क्षण अच्छे-से-अच्छा कर सकने के लिए काफी नमनीयता।

'ए': लेकिन, उदाहरण के लिए, हमसे कहा गया है कि हमारे यहां कारखाने होने चाहियें, हमें उत्पादन करना चाहिये, और हममें से कुछ लोगों में इस तरह के काम के लिए कोई रुझान नहीं है। हम कोई ऐसी खोज ज्यादा पसंद करेंगे जो...

अधिक अंतर्मुखी?

'ए': धन आदि के लिए कारखाने, काम, उद्योग आरंभ करने के बजाय अधिक अंतर्मुखी हो। हम वैसा अनुभव नहीं करते, इस समय हम 'ऐस्पिरेशन' में यह नहीं करना चाहते। हम जानना चाहेंगे कि इस बारे में आप क्या सोचती हैं।

(*माताजी एकाग्र होती हैं और एक लंबा मौन*)

व्यावहारिक होने के लिए, सबसे पहले तुम्हें अपने लक्ष्य की, तुम जहां जा

रहे हो उसकी, बहुत स्पष्ट धारणा होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से, उदाहरण के लिए, धन को लो। एक आदर्श जो हो सकता है अपने समय से सैकड़ों वर्ष आगे है, पता नहीं : धन को एक ऐसी शक्ति होना चाहिये जो किसी का न हो और उसे वर्तमान की सबसे बड़ी वैश्व प्रज्ञा के नियंत्रण में होना चाहिये। पृथ्वी पर किसी ऐसे के हाथों में जिसे पर्याप्त विस्तृत अंतर्दर्शन प्राप्त हो ताकि वह पृथ्वी की आवश्यकताएं जान सके और ठीक-ठीक यह बताने में समर्थ हो कि धन कहां जाना चाहिये—तुम समझ रहे हो न, हम इस चीज से बहुत दूर हैं, हैं न? फिलहाल तो व्यक्ति अब भी कहता है : "यह मेरा है," और अगर वह उदार हो, तो कहता है : "मैं तुम्हें देता हूं।" इससे बात नहीं बनती।

लेकिन हम जो हैं और हमें जो होना चाहिये उसके बीच बहुत लंबा रास्ता है। और उसके लिए हमें बहुत नमनीय बनना चाहिये, अपने लक्ष्य को दृष्टि से कभी ओझल न होने देते हुए यह भी जानना चाहिये कि एक ही छलांग में तुम उस तक नहीं पहुंच सकते, कि तुम्हें रास्ता ढूंढ़ना होगा। हां, यह अधिक कठिन है, आंतरिक खोज से भी अधिक कठिन। असल में तो, यह यहां आने से पहले ही हो जाना चाहिये था।

क्योंकि एक आरंभबिंदु होता है : जब तुमने अपने अंदर उस निष्कम्प प्रकाश को पा लिया हो, उस उपस्थिति को जो विश्वास के साथ तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सके, तब तुम इस बात से सचेतन हो जाते हो कि निरंतर, चाहे कुछ भी हो, हमेशा कुछ सीखा जा सकता है, और यह कि वर्तमान हालात में हमेशा प्रगति करनी है। इसी तरह व्यक्ति को आना चाहिये, जो प्रगति करनी है उसे जानने के लिए वह हर क्षण उत्सुक हो। एक ऐसा जीवन हो जो बढ़ना और अपने-आपको पूर्ण बनाना चाहे, इसी को ओरोवील का सामूहिक आदर्श होना चाहिये : "ऐसा जीवन जो बढ़ना और अपने-आपको पूर्ण बनाना चाहता है," और सबसे बढ़कर, हर एक के लिए एक ही तरीके से नहीं—हर एक के अपने ही तरीके से।

हां तो, अब तुम तीस हो, यह कठिन है, है न? जब तुम तीस हजार होओगे, तब यह ज्यादा आसान होगा, क्योंकि, स्वभावतः, तब बहुत अधिक संभावनाएं होंगी। तुम अग्रगामी हो, तुम्हारा काम सबसे कठिन है, परंतु मुझे लगता है कि यह सबसे ज्यादा मजेदार है। क्योंकि तुम्हें उस ठोस,

स्थायी और प्रगतिशील मनोभाव को स्थापित करना है जो सच्चे ओरोवीलवासी होने के लिए जरूरी है। सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए जरूरी पाठ रोज-रोज सीखना है। हर रोज रोज का पाठ सीखना...। हर सूर्योदय एक खोज करने का अवसर है। तो, ऐसी मानसिक अवस्था के साथ, तुम पता लगाओ। हर एक यही करे।

और शरीर को कामकाज की जरूरत होती है : अगर तुम उसे निष्क्रिय रखो, तो वह बीमार पड़कर या और कुछ ऐसा ही करके विद्रोह करना शुरू कर देगा। उसे किसी काम की जरूरत होती है, उसे सचमुच काम की जरूरत होती है, उदाहरण के लिए, फूलों के पौधे लगाने, मकान बनाने जैसी भौतिक चीजों की जरूरत होती है। तुम्हें उसे अनुभव करना चाहिये। कुछ लोग कसरत करते हैं, कुछ बाइसिकल चलाते हैं, असंख्य काम हैं, लेकिन तुम्हारे छोटे-से दल में तुम्हें किसी समझौते पर पहुंचना चाहिये ताकि हर एक को ऐसा काम मिल जाये जो उसके स्वभाव से, उसकी प्रकृति से और उसकी आवश्यकता से मेल खाता हो। लेकिन विचारों के साथ नहीं। विचार किसी काम के नहीं होते, वे तुम्हें पूर्वधारणाएं देते हैं, जैसे : "वह काम अच्छा है, वह मेरे लायक नहीं है," और इसी प्रकार का बेहूदापन। कोई काम बुरा नहीं होता—बुरे होते हैं बस काम करने वाले। अगर तुम ठीक तरह से करना जानो तो सभी काम अच्छे होते हैं। सब कुछ। और यह एक तरह का संपर्क स्थापित करना होता है। अगर तुम इतने भाग्यवान् हो कि अंदर की ज्योति के बारे में सचेतन होओ, तो तुम देखोगे कि अपने शारीरिक काम में, तुम मानों भगवान् को नीचे, वस्तुओं में बुला रहे हो; तब यह संपर्क बहुत ठोस हो जाता है, अन्वेषण के लिए एक पूरा जगत् सामने होता है, यह अद्‌भुत है।

तुम युवा हो, तुम्हारे सामने बहुत समय है। और युवा होने के लिए, वास्तव में युवा होने के लिए, हमें हमेशा, हमेशा बढ़ते रहना, विकसित होना और प्रगति करते रहना चाहिये। वृद्धि यौवन का लक्षण है और चेतना की वृद्धि की कोई सीमा नहीं। मैं बीस वर्ष के बूढ़ों और पचास, साठ, सत्तर के युवकों को जानती हूं। और अगर तुम शारीरिक काम करो, तो स्वस्थ रहते हो।

तो अब तुम्हें समाधान पाना चाहिये।

'ए': जी, बहुत ठीक।

तुम सब कुछ कर सकते हो... सब तरह की चीजें हैं, सब तरह की। और तुम्हें आपस में देखना चाहिये कि इसकी व्यवस्था कैसे की जा सकती है। तुम आकर मुझे बतलाओगे, ठीक है?

'बी': जी हां, बिलकुल ठीक।

तो, अब विदा। एक सप्ताह बाद आना।

*

२४ मार्च, १९७०

आओ। *(माताजी हंसती हैं)*

(आनेवाले माताजी को फूल अर्पित करते हैं। 'सेवा' नामक फूल की ओर इशारा करते हुए माताजी हंसकर कहती हैं:)

ओरोवील की सेवा।

(माताजी फूलों को सजाती और बांटती हैं। 'सेवा' और 'रूपांतर' के फूल देते हुए वे कहती हैं:)

सेवा ही रूपांतर की ओर ले जाती है। मैं गंभीरता से कह रही हूं।

'ए': मधुर मां, क्या हम आपसे एक प्रश्न पूछ सकते हैं?

हां।

'ए' : 'ऐस्पिरेशन' की ओर से सबका प्रश्न है।

ओह!

'ए' : 'ऐस्पिरेशन' वाले यह जानना चाहते हैं कि क्या यह संभव है कि हर मंगलवार को आपके पास आने वाले हमेशा वही व्यक्ति न हों?

देखो, मैं बिलकुल तैयार हूं, यह तुम्हारे ऊपर है। *(माताजी हंसती हैं)* नहीं! मैं तुम में से चार से मिलने को तैयार हूं।

('सी' की तरफ मुड़कर) मैंने इसे आज पहली बार बुलाया है, लेकिन इसके स्थान पर दूसरे लोग बारी-बारी से आ सकते हैं। जो हो, मैं उससे मिलूंगी ही। लेकिन तुम तीनों के साथ, कोई चौथा व्यक्ति, हर बार कोई नया, बारी-बारी से आ सकता है।

'ए' : जी, बहुत ठीक।

मैं केवल इसी की मांग करती हूं कि वे सच्चे हों, केवल उत्सुकतावश न आयें। अगर वे सच्चे हों, अगर वे सचमुच प्रगति करना चाहते हों, तो हर बार एक आ सकता है, मैं बिलकुल सहमत हूं। मुझे उनके नाम जानने की भी जरूरत नहीं है। देखो, मेरे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है। केवल ग्रहणशीलता का गुण ही महत्त्व रखता है। अगर वे खुले हों और यह अनुभव करें कि इससे उन्हें लाभ होता है, तो अच्छा है, बहुत ही अच्छा है...

('सी' से) तो तुम बगीचे के बारे में मुझे सूचना देने हफ्ते में एक दिन आओगे...। तुम, तुम लोग ओरोवील से आओगे; यह, यह यहां काम करेगा...। क्या यह ठीक है?

'ए' : बिलकुल ठीक, मधुर मां।

(लंबा मौन)

तुम वहां कितने हो?

'ए': करीब चालीस।

(*माताजी हंसती हैं*) अब मैं तुमसे एक अविवेकी प्रश्न पूछने जा रही हूं। कितने सच्चे हैं? तुम केवल उन्हें देखकर यह पता नहीं कर सकते। चालीस के चालीस यहां नहीं आयेंगे! कितनों ने तुमसे यहां आने के लिए पूछा था?

'बी': जी, पांच-छह ने।

यह पर्याप्त है। किस-किसने?

'बी': 'डी', 'ई', 'एफ' थे—और वहां के बहुत-से लोग आपके प्रति बहुत प्रेम का अनुभव करते हैं।

(मौन)

मैं दो शर्तें रखूंगी। प्रगति की चाह—यह सचमुच साधारण शर्त है। प्रगति की चाह, यह जानना कि अभी सब कुछ करना बाकी है, अभी सभी चीजों को जीतना बाकी है। दूसरी शर्त है: हर रोज कुछ-न-कुछ क़रना, कोई क्रिया-कलाप, कोई कर्म, कुछ भी, कोई ऐसी चीज जो अपने लिए न हो, और सबसे बढ़कर कोई ऐसी चीज जो सबके लिए सद्भावना की अभिव्यक्ति हो—तुम एक दल में हो, हो न?—केवल यह दिखाने के लिए कि तुम केवल अपने लिए नहीं जीते मानों तुम विश्व के केंद्र हो और सारे विश्व को तुम्हारे चारों ओर घूमना है। लोगों के विशाल समूह के लिए बात ऐसी ही है, और वे इसे जानते तक नहीं। हर एक को इसका भान होना चाहिये कि, सहज रूप से, व्यक्ति अपने-आपको विश्व के केंद्र में रख देता है और यह चाहता है कि सभी चीजें यूं ही, किसी-न-किसी तरीके से उसके पास आयें। लेकिन व्यक्ति को समग्र के अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करना

चाहिये, बस यही बात है। केवल अपनी चेतना को विस्तृत करना है, बस कुछ कम छोटा बनना है।

तो जो मेरे कार्यक्रम का अनुसरण करना चाहते हैं वे बारी-बारी से हफ्ते में एक दिन आयेंगे। क्या यह ठीक है?

('सी' से) तुम्हारे लिए, मैं तुम्हारी मां के लिए एक गुलाब दूंगी, क्योंकि उसे गुलाब बहुत पसंद हैं। तो तुम उसे यह दे देना। और तुम आओगे... तुम्हें इसी दिन नहीं आना चाहिये क्योंकि बहुत समय लग जाता है। कौन-सा दिन?

'जी': सोमवार ठीक है, शुक्रवार भी।

('सी' से) तुम्हारे लिए किस दिन ज्यादा सुविधा रहेगी?

'सी': जी, सोमवार, मधुर मां।

सोमवार को तुम मुझे अपनी बागवानी की खबरें दोगे।

बहुत अच्छा। हमारा बगीचा बहुत सुन्दर बगीचा होना चाहिये।

हां, तो फिर, यह ठीक है न? मैं तुमसे अगले मंगलवार मिलूंगी, किसी के साथ, कोई भी हो, मेरे लिए सब एक समान हैं, जब वह आये तो बस तुम मुझसे कह देना...। जो प्रगति करना चाहते हैं और यह सोचते हैं कि जगत् उनसे, उनकी अपनी चेतना से ज्यादा विस्तृत है।

(मौन)

'जी': मधुर मां, उन्होंने वहां जूडो के गद्दे की व्यवस्था की है। 'बी' जूडो सिखा रहा है। वह 'ब्राउन बेल्ट' वाला है और वह सिखा सकता है।

ओह! तुम 'एच' से मिले हो?

'बी': जी हां, मैंने जूडो का अभ्यास उनके साथ किया है।

('जी' से) उसकी इसके बारे में क्या राय है?

'बी': हमने समान तरीके से नहीं सीखा है; मेरे लिए यह कहना मुश्किल है कि उनके बारे में मैं क्या सोचता हूं क्योंकि हमारी तकनीक एक नहीं है।

'जी': इनकी तकनीक एक नहीं है, मधुर मां; इन्होंने एक ही तरीके से नहीं सीखा। इसने उनके साथ जब तक यह यहां, आश्रम में था, तीन महीने काम किया, और फिर यह ओरोवील चला गया।

उनकी तकनीक एक नहीं है?

'जी': जी हां, वे एक ही तरीके से काम नहीं करते।

(*'बी' से*) तुमने कहां सीखा?

'बी': फ्रांस में। मेरा ख्याल है 'एच' ने अल्जीरिया में सीखा।

और फिर कुछ हैं जिन्होंने जापान में सीखा और वे सचमुच जानते हैं। *(सब हंस पड़े)*

'बी': हम लोग करीब दस हैं, मधुर मां, जो जूडो का अभ्यास कर रहे हैं।

उतनी तरह के जूडो हैं जितने लोग उसका अभ्यास करते हैं। दस ठीक हैं। पहली चीज है गिरना सीखना। *(सब हंसते हैं)* ठीक है। तो अब अगले मंगल को मिलेंगे। विदा।

*

३१ मार्च, १९७०

कोई समाचार?

'ए': जी हां।

क्या समाचार है?

'ए': अगर आपको आपत्ति न हो, तो दो प्रश्न पूछने हैं। पहला 'ऐस्पिरेशन' के पास ही, तमिल गांव के एक बच्चे के बारे में है। कुछ समय से वह 'ऐस्पिरेशन' के बगीचे में काम करने आ रहा है; और हम उसे खाना देते हैं, और धीरे-धीरे उसने कैम्प के कार्यों में भाग लेना, रहना शुरू कर दिया है। 'आई', 'जे' और 'के' ने इस बच्चे का उत्तरदायित्व लेना स्वीकार कर लिया है, स्वभावत: पूरे दल के साथ, लेकिन ये तीन विशेष रूप से देखभाल करेंगे; और उन्होंने सोचा है कि वे इसे कैम्प के जीवन का हिस्सा बना लेंगे। आपके विचार से क्या यह ठीक है?

यह ठीक है, बशर्ते कि मां-बाप राजी हों। तुममें से कोई ऐसा होना चाहिये जो उसके मां-बाप से बात कर सके और उनसे कह सके, अगर वे राजी हैं तो उनसे पूछ सके, उन्हें समझा सके। तुम किसी बच्चे को उसके मां-बाप की स्वीकृति के बिना, यूं ही नहीं ले सकते।

'ए': 'एल' गांव के साथ संबंधों को बारे में देखता है। वह कोशिश करेगा कि उसके परिवार से मिल सके, उसके मां-बाप के संपर्क में आ सके, यह जान सके कि यह संभव है या नहीं।

वह वहां जायेगा?

'ए': जी, जी हां।

यही मैं कह रही हूं। यही शर्त है। उसे वहां जाना चाहिये, मां-बाप से बातचीत करनी चाहिये, उन्हें बातें समझानी चाहिये, उनसे यह पूछना चाहिये कि क्या उन्हें स्वीकार है। अगर उन्हें स्वीकार हो, तो बहुत अच्छा है, बिलकुल ठीक है।

'ए': क्योंकि उसका अपने गांव के साथ नाता तोड़ने का कोई प्रश्न नहीं...

नहीं, नहीं।

'ए': बल्कि धीरे-धीरे...

इसके विपरीत...

'ए': हमें नहीं...

इसके विपरीत, उसे संबंध बनाये रखना चाहिये। तब बहुत अच्छा होगा।

अब दूसरा प्रश्न?

'ए': दूसरा प्रश्न अतिथियों के बारे में, 'ऐस्पिरेशन' आने वालों के बारे में है। उनमें दो तरह के होते हैं: एक, जो पूरे दिन वहां रहते हैं और खाना वहीं खाते हैं, और दूसरे जो वहां रात बिताना चाहते हैं, वहां रहना चाहते हैं। हमें मालूम नहीं कि सामान्य रूप में उनके प्रति हमारी कैसी वृत्ति होनी चाहिये?

रात बिताना संभव नहीं है, है क्या? तुम्हारे पास स्थान नहीं है।

'ए': जी नहीं, हमारे पास स्थान नहीं है।

लेकिन वे कहां से आते हैं? क्या वे 'श्रीअरविन्द सोसायटी' द्वारा भेजे

जाते हैं या फिर वे ऐसे ही चले आते हैं?

'ए': कुछ 'सोसायटी' द्वारा भेजे जाते हैं, पर सब नहीं। हम हमेशा यह नहीं जान पाते कि वे कहां से आ रहे हैं।

कुछ ध्यान तो रखना चाहिये।

'ए': क्योंकि कभी-कभी इससे गलतफहमियां हो जाती हैं, जो...

तुम्हारा एक दफ्तर होना चाहिये, यानी, वहां सारे समय कोई होना चाहिये, कोई ऐसा जो बाहर से आने वालों का स्वागत कर सके, बातचीत कर सके, यह पता लगाये कि उन्हें किसने भेजा है, वे कहां से और क्यों आये हैं। यह कोई भारतीय ही होना चाहिये। यह एकदम अनिवार्य है, कोई ऐसा जो...

'ए': कुछ थोड़े-से भारतीय आते हैं, लेकिन बहुत-से यूरोपीय भी आते हैं—उदाहरण के लिए, जर्मन और अंग्रेज, अमरीकी, फ्रांसीसी भी आते हैं; वे यूं ही वहां से गुजर रहे होते हैं और...

वहां एक भारतीय और एक यूरोपीय होना चाहिये जो कम-से-कम अंग्रेजी और फ्रेंच बोल सकता हो। अगर वह जर्मन भी बोल सके तो और भी ज्यादा अच्छा होगा। लेकिन आजकल, अंग्रेजी से...

रात बिताना—मुझे स्वीकार नहीं है क्योंकि हम बिलकुल कुछ नहीं जानते कि वे किस तरह के हैं या वे क्या चाहते हैं या वे क्यों आये हैं। जो किसी की सिफारिश के साथ आये हों, कोई उन्हें जानता हो, उन्हें हमारे पास भेजा गया हो, तो बात अलग है; लेकिन जो बस यूं ही आ जायें—कोई ऐसा होना चाहिये जो उनसे कह सके कि यह सारी चीज क्या है, और यह भी कि यह कोई उत्सुकता की चीज नहीं है।

'ए': लेकिन, मधुर मां, उदाहरण के लिए, अगर कोई 'ऐस्पिरेशन'

में पहले रह चुका हो और कहीं दूसरी जगह काम करने के लिए छोड़कर चला गया हो, अगर वह बीच-बीच में आना चाहे, तो हमारा क्या रवैया होना चाहिये... इस हालत में, क्या वह वहां रात बिता सकता है?

क्या वह सज्जन है?

'ए': जी हां, वह सज्जन है।

तो ठीक है। यह बिलकुल अलग बात है, यह भिन्न है। मैं अजनबियों की बात कर रही हूं, ऐसे लोगों की जिन्हें हम नहीं जानते और जो यूं ही आ जाते हैं। उनसे कौन मिल सकता है?

'ए': वास्तव में मुझे मालूम नहीं। हमें आपस में इस विषय पर बातचीत करनी चाहिये। मुझे नहीं मालूम।

हां, शायद यह ज्यादा मजेदार न हो।

'ए': जी, हमेशा नहीं।

लेकिन यह उपयोगी होगा, बहुत उपयोगी होगा। बस, एक मेज और कुर्सी चाहिये—तुम उनका स्वागत करो और उनसे बातचीत करो। आवश्यक हो, तो उनके लिए एक स्टूल भी हो सकता है।

'ए': हम उन्हें पीने के लिए भी कुछ दे सकते हैं...

(*माताजी हंसती हैं*) ओह! यह बहुत ज्यादा है। "तुम हमसे क्या आशा रखते हो, हमारे बारे में तुमसे किसने कहा," इत्यादि...। और फिर यह कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसमें मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि हो। अगर वह देखे कि व्यक्ति सच्चे और दिलचस्प हैं, तो ठीक है; लेकिन रात

बिताना—ज्यादा अच्छा होगा कि नहीं।

'ए': दूसरी बात, हमने निश्चय किया है कि जो वहां खाना खायें, हम उनसे पैसा लेंगे।

हां, उनसे पैसा देने को कहो।

'ए': उनसे पैसा देने के लिए कहें—क्या यह ठीक है?

हां, हां, यह ठीक है। तुम्हें बस दर निश्चित करनी होगी। खाना कौन बनाता है?

'ए': एक महीने से हमारे पास एक पाचक है, एक तमिल व्यक्ति जो पंद्रह साल फ्रांस में रहा और वहां खाना बनाना सीखा; और दूसरे लोग हैं जो रसोई में उसकी सहायता करते हैं। लेकिन वह हमेशा रहता है।

(*मजाक में*) तुम एक छोटा-सा रेस्तोरां खोल सकते हो!

क्या तुम 'एम' को जानते हो?

'ए': जी हां।

उसकी चीजें बेचने की एक दूकान जैसी है।

'ए': जी हां, एक स्टोर।

हां, यही। लेकिन रात में उसकी देखभाल करने के लिए कोई नहीं रहता, इसलिए चोरियां होती हैं। और ऐसा लगता है कि तुम्हारे यहां बहुत लोग हैं और रहने का स्थान पर्याप्त नहीं है। तो मैं सुझाव दे रही थी कि हर महीने कोई वहां रात को जाकर सोये और सुबह वापिस आ जाया करे। अगर वह बहुत दूर न हो तो।

'ए': वह तीन किलोमीटर दूर है।

'जी': मधुर मां, तीन-चार किलोमीटर।

ओह, यह कुछ नहीं है।

'ए': जी, साइकिल से यह दूरी कुछ भी नहीं है।

साइकिल से—तुम्हारे यहां बाइसिकल हैं?

'ए': जी हां, हैं, पर काफी नहीं हैं। हमें कुछ और लेनी होंगी। हमारे पास काफी साइकिलें नहीं हैं पर और मिल सकती हैं।

तुम्हें बस इतना ही करना है कि शाम को, रात को वहां चले जाओ, और सवेरे लौट आओ। रात को *('ऐस्पिरेशन' में)* साइकिलों की जरूरत न होगी। लेकिन अगर तुम 'एम' को जानते हो तो वह तुममें से एक को अपने साथ ले जा सकता है और उसे सब कुछ दिखा और समझा सकता है।

'ए': जी, अच्छा।

मेरा ख्याल है कि यह ठीक होगा...। मुझे पता नहीं वह कैसा है, मैं नहीं कह सकती लेकिन मुझे आशा है यह आरामदेह होगा।

'ए': और एक बड़ा-सा झोंपड़ा बनाने के बारे में आपका क्या ख्याल है जिसमें बीस-पच्चीस आदमी रह सकें? यह 'एन' का विचार था।

मेरा ख्याल है कि जब तक सबके लिए काफी जगह न हो जाये, तब तक यह अनिवार्य है। मैं यह नहीं कहती कि वह बहुत अधिक आरामदेह होगा, लेकिन यह बहुत अनिवार्य है।

वह छोटा बच्चा, वह तमिल बच्चा जो आता है—उसे तुम क्या सिखा रहे हो, अंग्रेजी या फ्रेंच?

'ए': ओह, अभी हम उसे कुछ भी नहीं सिखा रहे।

ओह, वह बेचारा, छोटा-सा बच्चा, तुम उसे सिर्फ काम में लगा देते हो...

'ए': जी नहीं, केवल यही नहीं।

'जी': उसे खिलाते भी हैं, मधुर मां।

'ए': धीरे-धीरे, जब वह ज्यादा आने लगेगा, तो हम उसे फ्रेंच सिखाने की कुछ व्यवस्था करेंगे।

तुम्हें उसे वहां के जीवन में सम्मिलित करना चाहिये, यह दिलचस्प रहेगा। जब बच्चे तुम्हें बोलते हुए सुनते हैं तो वे जानना चाहते हैं कि क्या कहा जा रहा है और वे भाषा सीख जाते हैं। भाषाएं सीखने में भारतीय माहिर होते हैं। वे खिचड़ी बनाये बिना चार-पांच भाषाएं सीख सकते हैं। यह छोटा बच्चा अच्छी तरह सीख लेगा—यह बड़ी अच्छी बात होगी।

(लंबा मौन)

अच्छा, ठीक है। तो...। फिर मिलेंगे।

*

७ अप्रैल, १९७०

कुछ नहीं कहना?

(लंबा मौन)

क्या तुमने व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किया है? किसी ने मुझसे कहा कि कुछ बदला गया है।

'ए': कुछ बदलने वाले हैं।

ओह! कुछ बदला नहीं?

'ए': अभी नहीं। बदलने वाले हैं।

(लंबा मौन)

अगर कोई "नीरवता का स्नान" चाहते हों तो वे आ सकते हैं, उसमें कोई हर्ज नहीं। अगर कोई कभी-कदास से ज्यादा "नीरवता का स्नान" चाहते हों, तो वे आ सकते हैं, इसमें कोई हर्ज नहीं। वे उधर पीछे बैठ सकते हैं।

मैं यह व्यवस्था तुम्हारे ऊपर छोड़ती हूं।

(मौन)

फिर मिलेंगे।

*

१४ अप्रैल, १९७०

'जी': ('ओ' के बारे में) मधुर मां, यह जर्मन है। यही क्लोद द रिबो-पिएेर की तरह कॉमिक चित्र बनाता है। यही बनाता है, माताजी।

('पी' के बारे में) यह नया ही आया है, माताजी। यह राज है।

ओ!

'जी': यह फ्रांस से आया है। यह राज है। यह अभी कुछ दिनों के लिए जायेगा और अपनी पत्नी को लेकर वापिस आ जायेगा।

यहां काम है।

(लंबा मौन)

मैं तुममें से हर एक को, संपर्क बनाये रखने के लिए, एक पैकेट देती हूं। तुम इन पैकेटों से परिचित हो। तुम्हें पैकेट रखना चाहिये।

ये सब फ्रेंच समझते हैं क्या?

'जी': 'ओ' नहीं।

(*अंग्रेजी में*) तुम चाहो तो मैं अंग्रेजी में बोल सकती हूं।

'जी': मधुर मां, 'ओ' नही समझता। वह जर्मन है। वह अंग्रेजी समझता है।

(*अंग्रेजी में*) इसके अंदर कुछ पंखुड़ियां, फूलों की पंखुड़ियां हैं, जिनमें शक्ति भरी गयी है। और अगर तुम इन्हें अपने साथ रखो, तो मेरे साथ संपर्क बना रहता है। तो, जब तुम अंतर्मुख होओ, अंदर की ओर देखो... अंतर्मुख होओ, तो संपर्क फिर से स्थापित कर सकते हो और अपने प्रश्न का उत्तर भी पा सकते हो।

लो, यह लो।

(मौन)

किसी को कुछ नहीं पूछना? (*अंग्रेजी में*) कोई प्रश्न नहीं है?

(मौन)

२१ अप्रैल, १९७०

'जी': ('एल' के बारे में, जिसने माताजी को पत्र लिखकर पूछा था कि यहां के ग्रामीणों के साथ ओरोवीलवासियों का कैसा संबंध होना चाहिये) *यह 'एल' है। इसी ने प्रश्न पूछे हैं।*

ओह! तुम्हारे प्रश्नों के बारे में, देखो, सबसे अच्छा उपाय है शिक्षा। उन्हें

शब्दों और भाषणों के द्वारा नहीं, उदाहरण द्वारा शिक्षा देना। अगर तुम उन्हें अपने जीवन और अपने काम के साथ घुलने-मिलने दो, और वे तुम्हारे जीने, तुम्हारे समझने के ढंग से प्रभावित हों, तो फिर, थोड़ा-थोड़ा करके वे बदलेंगे। और जब वे उत्सुक हों और प्रश्न पूछें, तब उन्हें उत्तर देने का और तुम जो जानते हो वह समझाने का समय होगा।

'जी': यह ग्रामीणों की ओर से कुछ भेंट-पूजा है।

ओह!

'जी': माताजी, 'एल' इन्हें गांववालों के यहां से लाया है।

ओह!

'एल': दो व्यक्ति।

उन्हें मेरे अस्तित्व के बारे में पता है?

'एल': जी हां, माताजी! (हंसी)

दो?

'एल': जी, दो।

तो तुम उन्हें यह देना। (माताजी आशीर्वाद के दो पैकेट देती हैं।) उनसे कहना: माताजी ने तुम्हारे लिए भेजे हैं। और उनसे कहना: इन्हें अपने साथ रखो, इनसे तुम्हें मदद मिलेगी।

और कोई है?

'जी': जी हां, 'क्यू' एक जर्मन लड़की। यह भी औषधालय में काम करती है, माताजी।

तुम अंग्रेजी बोलती हो? तुम डॉक्टर 'आर' के साथ काम करती हो?

'जी': जी हां, माताजी, डॉक्टर 'आर' के साथ।

(*'ए' से*) तुम अंग्रेजी समझते हो?

'ए': जी हां।

तो फिर मैं अंग्रेजी में बोलती हूं। मैंने सुना है कि 'ऐस्पिरेशन' में कुत्ते-बिल्लियां बड़ी संख्या में हैं। यह सच है? देखो, मेरा कुत्ते-बिल्लियों से कोई विरोध नहीं है। एक समय मैंने भी इन्हें पाला है। लेकिन जलवायु अच्छा नहीं है; इन्हें... पागल होने से बचाना असंभव है। और तब, मामला खतरनाक हो जाता है, समझे, तुम्हें उन्हें मार डालना पड़ता है जो बहुत सुखद नहीं है। जहां तक संभव हो इनकी संख्या को कम करना अच्छा होगा। मुझे बाधित होकर कहना पड़ा कि कुत्ते मत रखो; कुछ लोग फिर भी रखते हैं। तुम्हारा उनके साथ सुखद संपर्क नहीं हो सकता। वे बीमारी के घर होते हैं, कुछ बीमारियां काफी गंभीर होती हैं, और कुत्ते, बिल्ली उनसे ग्रस्त रहते हैं। मैं घिनौने वर्णन करना नहीं चाहती, लेकिन...। यह सुरक्षित नहीं है और यह शांतिप्रद नहीं हो सकता। क्या तुम्हें पता है कि उनमें कौन-सी बीमारियां घर किये होती हैं? दो हैं: एक है प्लेग, दूसरी है कोढ़।

क्या वे निजी पशु हैं या कम्यूनिटी के हैं?

'ए': कुछ कम्यूनिटी के हैं, पर कुछ व्यक्तिगत भी हैं।

वे उनके झोंपड़ों में रहते हैं?

'ए': कुछ। (असम्मति की फुसफुसाहट; 'ए' स्वयं अपनी गलती ठीक करता है) *जी नहीं, अब वे झोंपड़ों में नहीं रहते।*

उनको अंदर आना मना नहीं है क्या?

'ए': जी नहीं, झोंपड़ों में आना मना नहीं है, वैसे भी वे कैम्प में

आते हैं। बहुधा वे रेस्तोरां में होते हैं जहां हम खाना खाते हैं।

और फिर, वे जनते रहते हैं। *(हंसी)* इसका कोई अंत नहीं। और जनने के बारे में हम क्या कर सकते हैं? सबको डुबा दें? यह सुखद नहीं है। स्वभावतः, तुम मुझसे आसानी से कह सकते हो : अगर हम उन्हें यहां से भगा दें तो वे कहीं और चले जायेंगे। जो हो, मैं यह चाहूंगी कि इस चीज को बढ़ावा न मिले। जानते हो, मनुष्यों से ज्यादा कुत्ते-बिल्ली हो जायेंगे। ऐसा ही होता है। फिर—एक मजेदार चीज तुम कर सकते हो। दूर, बहुत दूर, किसी निर्जन स्थान में जहां कोई नहीं रहता, तुम उन सबको एक साथ किसी सुरक्षित स्थान में रख सकते हो, ताकि वहां से निकल न सकें। फिर वे खाने के लिए भी कुछ ढूंढ़ निकालेंगे। उदाहरण के लिए, अछूते वन में —ऐसे वन अब भी भारत में हैं। बिल्लियों के साथ यह बहुत आसान है। जब बिल्ली के बच्चे होते हैं, अगर तुम बच्चों को कहीं दूर रख आओ, तो मां बिल्ली कभी वापिस न आयेगी, वह बच्चों के साथ ही रहती है। कुछ ढूंढ़ निकालना होगा, कोई एकांत स्थान। ऐसे स्थान अब भी भारत में हैं। लेकिन ओरोवील-क्षेत्र में नहीं।

वस्तुतः, मैं तुमसे जो करने के लिए कह रही हूं वह यह है कि, किसी भी हालत में, संख्या को बढ़ने न दो। एक दिन तुम आंखों में आंसू भरे यह कहते हुए मेरे पास आओगे : जीवन दुःसह हो गया है! *(हंसी)* तो, मैं तुम्हें चेतावनी दे रही हूं।

गांव में क्या कुत्ते और बिल्लियां हैं?

'एल': जी हां, कुत्ते हैं—बहुत-से, लेकिन बिल्लियां बहुत नहीं हैं।

क्या तुम कुछ क्षण मौन रहना चाहोगे?

(लंबा मौन)

तो, विदा।

सब: जी, विदा।

२८ अप्रैल, १९७०

कौन-कौन नये हैं?

> *'जी': नये हैं: 'डी', आप उसके जन्मदिन पर उसे एक बार पहले ही देख चुकी हैं। 'एस', उसे आप जानती हैं, आपने उसे कई बार देखा है। 'टी' ने आपको बहुत बार लिखा है; उसने कई पत्र लिखे थे और अपने जन्मदिन पर भी आया था। 'यू', 'यू' को आप नहीं जानतीं; यह एक मैकेनिक है, यह 'वी' के साथ कार का काम करता है। 'डब्ल्यू' के पिता 'एन'। 'बी' जो हर हफ्ते आता है। और 'ए'* (माताजी हंसती हैं)।

तो हम चुप रहेंगे। मैं तुमसे किसी और दिन बातें करूंगी

एक...। क्या तुम आश्रम के छोटे-छोटे ब्रोचों को जानते हो? हां तो, ओरोवील के लिए भी एक होगा। क्योंकि ऐसे लोग हैं जो ओरोवील में आकर वहां की भूमि पर जम जाते हैं और वे 'कमेटी' के पास जाने और मिलने से इन्कार करते हैं। वे कहते हैं: "ओरोवील स्वतंत्र है!" और वे वहां जम जाते हैं। लेकिन फिर भी, हमें मान्यताप्राप्त ओरोवीलवासियों में और जो अधिक मनमौजी हैं उनमें भेद कर सकना चाहिये। इसलिए कोई चीज तैयार हो रही है—निश्चय ही, अभी तक वह तैयार नहीं है। मैं तुम्हें केवल दिखाना चाहती थी। *(माताजी अपनी मेज से एक कागज निकालती हैं।)*

यह करीब इस आकार का एक छोटा-सा ब्रोच होगा। यह यूं है। घेरा चांदी का होगा; और ये रहे चार रूप, और कमल के साथ श्रीअरविन्द का समचतुष्कोण। और उसके चारों तरफ "ओरोवील" लिखा होगा। तो तुम अपने बटन के छेद में उसे पहनोगे—मान्यता-प्राप्त ओरोवीलवासी! *(माताजी मुस्कुराती हैं।)*

(मौन)

आज बस। तो सप्ताह अच्छी तरह बीते।

२६ मई, १९७०

कोई प्रश्न है?

'ए': जी हां। धर्म के बारे में आपने जो हमें छोटी पुस्तिका दी है, उसके बारे में कुछ प्रतिक्रियाएं हुई हैं, उस वाक्य के बारे में जिसमें कहा है: "हमारी खोज रहस्यवादी साधनों द्वारा खोज नहीं होगी।"[1]

क्या वे यह नहीं जानते कि रहस्यवादी साधन क्या हैं?

'ए': शायद वे नहीं जानते, लेकिन शायद जिस चीज को हम नहीं जानते वह यह है: रहस्यवादी साधनों द्वारा क्यों नहीं? मुझसे यह प्रश्न पूछा गया है।

रहस्यवादी साधन से मेरा मतलब उन तरीकों से है जिनमें लोग जीवन से दूर चले जाते हैं, मठवासियों की तरह, जो मठों में चले जाते हैं, या यहां के संन्यासियों की तरह, जो आध्यात्मिक जीवन की खोज के लिए जीवन का त्याग कर देते हैं, जो दोनों में भेद करके कहते हैं: "या तो यह या वह।" हम कहते हैं: "यह सच नहीं है।" जीवन में और जीवन को पूरी तरह जीकर ही मनुष्य आध्यात्मिक जीवन जी सकता है, कि उसे आध्यात्मिक जीवन में जीना *चाहिये*। परम चेतना को *यहां* लाना होगा। शुद्ध भौतिक और जड़-भौतिक दृष्टिकोण से, मनुष्य ही अंतिम जाति नहीं है। जिस तरह मनुष्य पशु के बाद आया, उसी तरह मनुष्य के बाद दूसरी सत्ता को आना चाहिये। और चूंकि 'चेतना' एक ही है, अतः यह वही 'चेतना' होगी जो मनुष्य के अनुभव पाकर अतिमानव सत्ता के अनुभव प्राप्त करेगी। इसलिए अगर हम चले जायें, अगर हम जीवन को छोड़ दें, जीवन का त्याग कर दें, तो हम यह करने के लिए कभी तैयार न होंगे।

[1] "हमारी खोज रहस्यवादी साधनों से प्रभावित खोज न होगी। हम जीवन में ही भगवान् को पाना चाहते हैं। और इस खोज के द्वारा ही जीवन सचमुच रूपांतरित हो सकता है।"

लेकिन अगर तुमने श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़ी होतीं, तो तुम समझ पाते, तुम यह प्रश्न न करते। यह प्रश्न इसलिए उठा कि बौद्धिक दृष्टिकोण से तैयारी की कमी है। बिना अध्ययन किये तुम सब कुछ जानना चाहते हो।

('ए' से) अब, तुम्हें और क्या कहना है?

'ए' : जी, बस इतना ही। जी हां, अगर आपको आपत्ति न हो तो कुछ और भी है। यह 'टी' का पत्र है जो यहां है और उसी ने मुझे पढ़ने के लिए कहा।

ठीक है।

'ए' : (पढ़ता है) *आपने धर्मों के बारे में जो लिखा है उसके सिलसिले में आपके प्रति एक प्रार्थना उठती है। हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् का 'सत्य' हमारी सत्ता के 'सत्य' में भर जाये, हमारे कार्य उस 'सत्य' को अभिव्यक्त करें, हमारे मन और हृदय ऐकांतिक रूप से भगवान् के 'सत्य' द्वारा परिचालित हों। अभी तक जो कुछ अचेतन है हम उस पर भगवान् के 'सत्य' के 'प्रकाश' के लिए याचना करते हैं। हम उन्हीं के 'सत्य' द्वारा जानना, उन्हीं के 'सत्य' द्वारा कार्य करना और उन्हीं के 'सत्य' में रहना चाहते हैं। परम प्रभु के आगे ओरोवील की यही प्रार्थना है। आप हमारी चेतना की विजयी मां हों।"*

यह सूचना-पट्ट पर लगायी जा सकती है। यह बहुत अच्छी है, बहुत अच्छी।

('आर' इशारा करता है कि उसे एक प्रश्न पूछना है।) तुम्हें क्या कहना है?

'आर' : मुझे एक प्रश्न पूछना है, माताजी, एक व्यावहारिक प्रश्न।

व्यावहारिक?

'आर' : किसी विशिष्ट लक्ष्य को पाने की चाह करना और साथ ही

हर एक से प्यार करना बहुत कठिन मालूम होता है। जब हम कोई चीज प्राप्त करना चाहने लगते हैं और किसी विशेष परिणाम को मन में रखकर चलते हैं तो हम तुरंत अपने-आपको उन सबसे अलग कर लेते हैं जो उसके साथ सहमत न हों। व्यावहारिक रूप से हम ये दोनों चीजें एक साथ कैसे कर सकते हैं?

तुम अपने-आपको उन सबसे अलग कर लेते हो जो तुम्हारी तरह नहीं सोचते?

'आर': सचमुच... सारे समय...

लेकिन कोई भी व्यक्ति तुम्हारी तरह नहीं सोचता!

'आर': सचमुच।

तो फिर तुम किसी से भी प्यार कैसे कर सकते हो?

'आर': जब तक कि मैं कुछ चाहता नहीं तब तक ठीक रहता है।

ओह!

'आर': जी!

(माताजी दो-तीन मिनट के लिए ध्यानस्थ हो जाती हैं।)

यह इसलिए है क्योंकि जब तुम कुछ चाहते हो, तो वह अहंकार चाहता है। तो, अहंकार... की उपेक्षा करनी चाहिये। करने लायक पहली चीज यह है कि अपने लिए कार्य न करो, भगवान् की आज्ञा के अनुसार काम करो, भगवान् की 'इच्छा' व्यक्त करने के लिए काम करो। जहां तक तुम्हारा सवाल है, तुम कोई आज्ञा नहीं देते। जब तक निजी इच्छा, निजी कामना हो तब तक वह सच्ची चीज नहीं होती, और तुम...। इतना ही नहीं कि वह

सच्ची चीज नहीं होती, बल्कि तुम सच्ची चीज को जान भी नहीं सकते!

इसे *(बलपूर्वक किसी वस्तु को त्यागने की मुद्रा)*... *इसे निकाल बाहर करना चाहिये।*

इसीलिए अपने-आपमें, हम बिलकुल कुछ नहीं हैं। यह जीवन है। हम अपने लिए कार्य नहीं करते। हम अपनी निजी इच्छा और अपने निजी परिणाम के लिए कार्य नहीं करते। हम केवल भागवत 'संकल्प' के द्वारा और भागवत 'संकल्प' के लिए कार्य करते हैं। यहां तक कि अपने शत्रु के लिए भी बिना प्रयास, सहज रूप से हम अत्यधिक कोमलता का अनुभव कर सकते हैं। जब तुम इसका अनुभव कर लोगे तभी तुम समझोगे। यही सारी सीमितता है, सारी सीमितता।

जब संघर्ष उठते हैं, जो हर समय उठते हैं, हम सबके लिए—तो ऐसा होता है मानों व्यक्ति तुरंत सिकुड़ जाता है। क्योंकि यही होता है : प्रत्येक व्यक्ति अपने अंदर सिमट जाता है। लेकिन कठिनाई यह है कि जब अनुपात में तुम्हारे अंदर निजी इच्छा कम हो, अगर तुम्हारे पास का आदमी तुमसे अपनी निजी इच्छा कहे, तो वह बिलकुल...। सबसे पहले वह जरा-सी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है और फिर, अगर तुम न्यूनाधिक रूप में उसके साथ सहमत होओ, तो तुम उस इच्छा को ले लेते हो, और अपने चारों ओर उसे फैलाने लगते हो। तो देखो क्या होता है। और यह सारे समय चलता रहता है। पहले एक आदमी की कोई इच्छा होती है, फिर दूसरे की, और इस तरह, बिना रुके यह चलती चली जाती है। यही सब जगह हो रहा है; सबसे मजबूत इच्छा जीत जाती है। यह व्यर्थ है, व्यर्थ।

जब हम कहते हैं : "हम भगवान् की सेवा के लिए हैं", तो ये कोरे शब्द नहीं होते। हमें अपने-आप नहीं, बल्कि 'उन्हें' हमारे द्वारा कार्य करना चाहिये। सबसे बड़ी आपत्ति यह होती है : हम भागवत 'संकल्प' के बारे में कैसे जान सकते हैं? लेकिन वस्तुतः, मैं तुमसे कहती हूं : अगर तुम सच्चाई के साथ अपनी निजी इच्छा का त्याग कर दो, तो तुम जान लोगे।

'आर' : जी हां, यह स्पष्ट है।

हां तो, यह बात है।

(माताजी चुप रहती हैं, करीब पंद्रह मिनट के लिए, हर एक उपस्थित व्यक्ति पर एकाग्र होती हैं। फिर 'ए' से :) तो, तुम उन्हें यह समझा दोगे।

हम जीवन को बदलना चाहते हैं—हम उससे दूर भागना नहीं चाहते...। अब तक जिन लोगों ने, जिसे वे भगवान् कहते हैं उसे जानने की कोशिश की, भगवान् के साथ संपर्क बनाने की कोशिश की तो उन्होंने जीवन को छोड़ दिया। उन्होंने कहा : "जीवन एक बाधा है। इसलिए हम जीवन का त्याग करेंगे।" तो, भारत में, संन्यासी हैं जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया; यूरोप में मठवासी या साधु हैं। हां, वे भाग सकते हैं, फिर भी जब उनका पुनर्जन्म होगा तो उन्हें सारी चीज को फिर से शुरू करना होगा। लेकिन जीवन जैसा-का-वैसा बना रहेगा।

*

२ जून, १९७०

मुझसे ओरोवील की अभीप्सा को सूत्रबद्ध करने के लिए कहा गया है। क्योंकि सद्भावना तो बहुत है, पर वह... वह व्यवस्थित नहीं मालूम होती। इसलिए मैंने कहा : सबसे अच्छी चीज यह होगी कि ओरोवील जो चाहता है उसे सूत्रबद्ध कर दिया जाये। इससे कुछ सहयोग आ सकेगा। लेकिन यह एक बड़ा काम है।

हर बार हम अभीप्साओं में से एक को सूत्रबद्ध कर सकते हैं, या फिर हर बार तुम एक प्रश्न ला सकते हो। और ऐसे बहुत-से हो सकते हैं। तो, एक प्रश्न। या तो मैं उसी समय उत्तर दे दूंगी या अगली बार उत्तर दूंगी। या फिर, हम मिलकर ओरोवील की अभीप्सा को व्यक्त करने की कोशिश कर सकते हैं।

> *'ए' : यह अभीप्सा क्या है, इसका आपको कुछ अंतर्दर्शन हुआ है क्या?*

निस्संदेह! निस्संदेह! मैं जानती हूं कि मैं क्या चाहती हूं। मुझे मालूम है

कि मैं ओरोवील को क्या बनाना चाहती हूं। लेकिन काफी अंतराल है...। वह कुछ वर्षों बाद का, बहुत वर्षों बाद का ओरोवील है।

'ए' : लेकिन क्या आपका ख्याल है कि हम इस भावी ओरोवील को पा सकेंगे?

हम इस तरह चलेंगे : हर बार जब तुम आओगे, तो मैं तुम्हें ओरोवील की अभीप्साओं में से एक दूंगी और फिर हम उन्हें एक-के-बाद-एक रखेंगे, और पिछली बार मैंने जो कहा हो उसके बारे में तुम अगली बार प्रश्न कर सकते हो। लेकिन एक असुविधा है; हर बार वही आदमी नहीं आते। तुममें से तीन हमेशा आते हैं। तुम्हें सिलसिला जारी रखना चाहिये।

सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए आदमी को क्या होना चाहिये? तुमने ऐसा प्रश्न किया था। सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए आदमी को क्या होना चाहिये? *('ए' से)* तुम्हारे क्या विचार हैं?

'ए' : मेरे लिए, वास्तव में ओरोवीलवासी होने के लिए पहली चीज है भगवान् के प्रति अपने-आपको पूरी तरह अर्पण करने का संकल्प।

यह अच्छा है, अच्छा है यह; लेकिन ऐसे बहुत नहीं होते। *('जी' से)* जरा कागज का एक पुरजा देना। मैं इसे पहले नंबर पर लिखूंगी।

(माताजी लिखती हैं) "सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए।" मैंने इसे जानबूझकर नंबर १ देकर लिखा है।

तो, हम दूसरे नंबर के बारे में देखें।

आचरण की दृष्टि से, स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से, उदाहरण के लिए : हम सभी नैतिक और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होना चाहते हैं। लेकिन इस मामले में हमें बहुत सावधान होना चाहिये! हमें अपने-आपको इन चीजों से मुक्त करके कामनाओं की अंधी तुष्टि में डूबकर स्वच्छन्द नहीं हो जाना चाहिये; बल्कि इनसे ऊपर उठकर, कामनाओं का निष्कासन करके और नैतिक नियमों के स्थान पर भगवान् की आज्ञाकारिता को स्थापित करके अपने-आपको मुक्त करना चाहिये।

('जी' माताजी को एक नोटबुक देता है जिसमें वे यह सब लिख दें जो उन्होंने अभी कहा है।)

यह उस रूप में नहीं है जिसे लिखा जा सके।

'जी': जी हां, मधुर मां।

अब हम मौन रहेंगे।

'जी': एक प्रश्न है, मधुर मां।

क्या?

'जी': एक प्रश्न है।

एक प्रश्न? क्या प्रश्न? किसे पूछना है?

'जी': 'बी' को, जो 'ऐस्पिरेशन' में जूडो सिखाता है, वह यहीं है। वह पूछता है: "मधुर मां, ओरोवील में, विशेष रूप से 'ऐस्पिरेशन' में खेल-कूद या शारीरिक व्यायामों को जारी रखना इतना कठिन क्यों है?"

कठिन? कठिन क्यों है?

'बी': मधुर मां, नियमित होना कठिन है। खेल-कूद या अन्य कोई कार्यक्रम जिसे हमने शुरू किया हो, उसे जारी रखना मुश्किल होता है। इसीलिए मैं आपसे पूछता हूं, क्यों।

क्या तुम्हारे पास सीखने वाले नहीं हैं?

'बी': हमने जूडो की कक्षाएं शुरू की हैं। दो महीने पहले आठ सीखने वाले थे, और अब हम दो-तीन हैं। कई कार्यक्रमों का यही हाल है।

वे क्या कारण बताते हैं? आलस्य, अकर्मण्यता, या फिर यह कि वे अपने-आपको श्रेष्ठतर समझते हैं?

'बी' : पता नहीं मधुर मां।

अगर आलस्य है, तो तुम्हें धीरे-धीरे शुरू करना चाहिये और जैसे-जैसे शरीर उसका अभ्यस्त होता जाये उसे आगे बढ़ाना चाहिये। अगर यह श्रेष्ठता के भाव के कारण है, तो रोग *गंभीर* है! *(माताजी हंसती हैं)* रोग का उपचार करना चाहिये।

हमें शरीर त्याग देने के लिए नहीं, ज्यादा अच्छा बनाने के लिए दिया गया है। और ठीक यही चीज ओरोवील के लक्ष्यों में से एक है। मानव शरीर को सुधारना, पूर्ण बनाना है, और उसे अतिमानव शरीर बनाना है जो मनुष्य से उच्चतर सत्ता को अभिव्यक्त करने योग्य हो सके। और निश्चय ही अगर हम उसकी अवहेलना करें तो यह नहीं हो सकता। यह हो सकता है सम्यक् शारीरिक प्रशिक्षण, शारीरिक क्रियाकलाप द्वारा—शरीर के व्यायामों द्वारा—जो छोटी-मोटी निजी जरूरतों या तुष्टियों के लिए नहीं, शरीर को उच्चतर सौंदर्य और चेतना को अभिव्यक्त करने में सक्षम बनाने के लिए किया जाये। इसी कारण, शारीरिक प्रशिक्षण का ऊंचा स्थान है, और वह उसे देना चाहिये।

यह प्रश्न कि 'लोग ऐसे क्यों हैं?'—हर एक मुझसे कहता है : "लोग ऐसे हैं। लोग वैसे हैं। वे वैसे क्यों हैं?" और यह बात हर क्षेत्र में है। ठीक इसीलिए मैंने वह करने का निश्चय किया था जो मैंने अभी कहा : ओरोवील की सच्ची अभीप्सा को रूप देना।

और यह शारीरिक प्रशिक्षण पूरी जानकारी के साथ करना चाहिये, असाधारण, अद्‌भुत चीजें करने के लिए नहीं, बल्कि शरीर को उच्चतर चेतना को अभिव्यक्त करने योग्य काफी मजबूत और लचीला बनाने की संभावना देने के लिए।

यह लंबी सूची का एक भाग होगा।

उनसे कुछ कहने की जरूरत है...। हर एक किसी अभीप्सा के साथ, इस विचार के साथ आया है कि उसे कुछ नया मिलेगा, लेकिन वह बहुत

स्पष्ट नहीं है। अतः उन्हें एक स्पष्ट चित्र देना चाहिये जो इतना व्यापक हो कि उसमें सभी अभीप्साओं को अपना स्थान और अपनी अभिव्यक्ति मिल जाये। हम यह करेंगे। हम आपस में सप्ताह में एक बार मिलते हैं। हम थोड़ा-थोड़ा करके इसे करेंगे।

('बी' से) तुम्हें उनसे कहना होगा जो मैंने अभी कहा है। उनसे कहा जा सकता है, तुम उनसे कह सकते हो : शरीर को अपना कार्य करने के लिए तैयार करने में शारीरिक प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तो बस! *(माताजी हंसती हैं)।*

(इसके बाद पंद्रह मिनट का ध्यान हुआ। फिर माताजी ने वह कापी वापिस ले ली जिसमें उन्होंने "एक सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए" और फिर "लंबी सूची" का नंबर एक लिखा था, और फिर कहा :)

लो! मैंने नंबर दो लिख दिया : "ओरोवीलवासी कामनाओं का दास नहीं बनना चाहता।" यह एक बहुत बड़ा संकल्प है।

*

९ जून, १९७०

('ए' से) मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ काम है। *(माताजी उसे "सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए" का मूल पाठ पढ़ने के लिए कहती हैं।)*

हां तो, तुम क्या पसंद करोगे : पहले मौन और फिर यह, या यह पहले और बाद में मौन? यह लिखा हुआ है : ओरोवीलवासियों को क्या होना चाहिये। आसान नहीं है।

> *'ए' : मौन बाद में।*

(मूल पाठ 'ए' को देते हुए) यह देखो। रोशनी काफी है?

> *'ए' : जी हां।* ('ए' "सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए" का मूल पाठ पढ़ता है।)

यह जारी रहेगा। तुम चाहो तो नकल कर लो, जितनी प्रतियां चाहो कर लो, लेकिन इस शर्त पर कि प्रतिलिपियां ठीक-ठीक हों, उनमें हेर-फेर न हो।

'ए': नकल के बारे में, 'पी' ने मुझसे कहा है कि आपने हमारी पहली बातचीत पढ़ी, लेकिन आप उसे वर्तमान रूप में प्रकाशित करना नहीं चाहतीं।

ऐसी चीजें लिखनी होती हैं। वह जैसी है, केवल बातचीत है। जब हम यूं ही बातचीत करते हैं, तो उसका ऐसा रूप नहीं होता जिसे सुरक्षित रखा जाये। देखो, तुम्हारे बोलने का तरीका होता है, तुम्हारी आवाज का लहजा होता है, तुम उसमें जो बल भरते हो, और फिर वह व्यक्तीकरण जो उस चीज की पूर्ति करता है जो स्पष्ट नहीं की गयी। फिर जब वह छापा जाता है, तो ये सब चीजें नहीं होतीं, और वह केवल बातचीत रह जाती है। उसमें सारतत्त्व की कमी रहती है : उस चेतना की कमी जो तुम बोलते समय उसमें भरते हो। शब्द काफी नहीं होते।

अगर मेरे पास समय होता तो मैं ठीक-ठाक कर देती और तब तुम उसे प्रकाशित कर सकते थे; लेकिन अभी जो हाल है, उसमें संभव नहीं है। जब तुम पढ़ते हो, तो तुम शब्दों के साथ अकेले होते हो, और बहुत ही कम लोग पढ़ते समय शक्ति को खींच सकते हैं। शब्द, जहां तक हो सके, सटीक होने चाहियें। इसीलिए मैंने यह मूल पाठ लिख दिया है। जब यह पूरा हो जायेगा तो मैं इसे अंग्रेजी में लिख दूंगी, तब फ्रेंच न जानने वाले भी इसे समझ सकेंगे।

*

२३ जून, १९७०

'सी': आजकल 'ऐस्पिरेशन' में बहुत बीमारी फैली हुई है।

अच्छा!

'सी': पेट की बीमारियां हैं, जैसे अतिसार, पेचिश, जठर-आन्त्रशोथ (गेस्ट्रो-एंट्राइटिस)।

ओ! क्या यह भोजन के कारण है?

'सी': डॉक्टर का कहना है कि यह पानी के कारण है। लेकिन हमने पानी की टंकी को रोगाणुओं से मुक्त कर लिया है।

क्या यह ऊपरी सतह का पानी है?

'सी': यह काफी गहरे कुएं से आने वाला पानी है।

उसकी सूक्ष्म छानबीन करवा लेनी अच्छी रहेगी। क्या तुम्हारे यहां फिल्टर नहीं है?

'सी': जी नहीं।

होना चाहिये। केवल पानी के लिए। या फिर पानी को उबालकर ठंडा कर लिया जाये। नहीं तो, यह तकलीफदेह होगा। सबसे अच्छा तो यह है कि पहले उसे उबाल लो, फिर छानो।

'जी': वह इस बारे में कह सकता है क्योंकि वह पिछले सप्ताह बीमार था।

'सी': मैं अब भी बीमार हूं।

'जी': वह अब भी बीमार है। वह अपने-आप कहता नहीं, पर है बीमार।

आन्त्र-शोथ?

'सी': जी हां, जठर-आन्त्रशोथ।

'जी': इसे यह बहुत समय से है, कोई पन्द्रह दिन से।

अगर पानी खराब हो, तो यह रोग आता ही रहता है। तुम्हें उसका विश्लेषण करवाना चाहिये। *(माताजी 'ई' द्वारा विश्लेषण करवाने की सलाह देती हैं।)* उसे थोड़ा-सा पानी देकर जांचने के लिए कहो। तब हम जो जरूरी होगा कर लेंगे। सबसे अच्छी, सबसे सुरक्षित चीज तो यही है कि उसे उबाल लो और फिर छानो। और फिर तुम्हें बर्तनों के बारे में सावधान रहना चाहिये; ठीक से देख लो कि वे साफ हैं। अगर तुम लापरवाह हो तो...। उबालना आसान है। छानना—कोई फिल्टर बना सकता है। क्या तुम इसकी व्यवस्था कर सकते हो?

'सी': शायद हम मद्रास से खरीद सकते हैं?

'जी': माताजी, 'हारपागों'[1] में कोई फिल्टर बनाना जानता है। अगर यह वहां जाये, तो वे समझा सकेंगे। सिर्फ "कैंडल" मद्रास से खरीदने होंगे।

और फिर, जहां-तहां पानी न पीना! इस देश में यही एक चीज है, तुम्हें पानी के बारे में सावधान रहना चाहिये। पानी से तुम्हें सब तरह के रोग हो जाते हैं। मेरा ख्याल था कि यह बात तुम्हें पहले ही समझा दी गयी होगी। तुम एक फिल्टर बना सकते हो; लेकिन बड़ा-सा बनाना!

*

[1] आश्रम का एक विभाग।

७ जुलाई, १९७०

'ए': यह 'ऐक्स' का पत्र है। वह चाहता है कि मैं आपको पढ़कर सुना दूं। मैं पढ़ूं क्या?

हां।

'ए': (पढ़ता है) "दिव्य मां, ओरोवील की आंतरिक और बाह्य व्यवस्था के बारे में बड़ा घपला है। हम उच्चतर चेतना प्राप्त करने के लिए मिलकर कैसे काम करें? ऐसा लगता है कि ओरोवील को अधिक एकरूप समाज होना चाहिये जिसमें एकता का भाव अधिक हो। यह पाने के लिए क्या यह संभव होगा कि ('प्रोमेस', 'होप', 'ऐस्पिरेशन', 'पीस' (ओरोवील की विविध कम्यूनिटीज़), आदि, के लोग सप्ताह में एक दिन मिलकर किसी सामुदायिक बगीचे में, शायद 'सत्य' के बगीचे में काम कर सकें? या हर व्यक्ति सप्ताह में एक दिन किसी सामुदायिक फार्म में, ओरोवील के लिए अन्न पैदा करने का काम करे। इससे हमें एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह जानने में सहायता मिलेगी और हम उचित भाव के साथ अपने-आपको संगठित करने की ज्यादा योग्यता प्राप्त करेंगे। और शायद ओरोवील के लिए अलग-अलग योजनाओं पर काम करने वाले लोग भी ज्यादा नजदीक आकर काम कर सकेंगे, ताकि ओरोवील के लिए पथप्रदर्शक दल बन सकें, इससे हर एक का काम ज्यादा प्रभावशाली रूप से प्रगति कर सकेगा। क्या ओरोवील में इस तरह मिल-जुलकर किया गया काम हमें आपका काम करने में मदद देगा?

"पूर्णता के लिए प्रार्थना के साथ।"

अभीप्सा अच्छी है, लेकिन... मुझे पता नहीं कि समय आ गया है या नहीं।

'ए': वह अकेला नहीं है। ओरोवील में अलग-अलग स्थानों पर काम करने वाले कई लोग यह अनुभव करते हैं कि हमें मिलकर

एक ही काम करने की जरूरत है।

हां, विचार अच्छा है, लेकिन मैं उसे इस तरह देखती हूं। हम मातृमंदिर बनाना चाहते हैं; तो विचार यही था कि जब हम मातृमंदिर बनाना शुरू करें, तो जो भी वहां काम करना चाहे कर सके। और वह सचमुच केंद्रीय विचार पर काम करना होगा।

और यह जल्दी ही होना चाहिये। यह अभी तक शुरू हो जाना चाहिये था। तो वहां, वहां हर एक के लिए काम होगा। हम बहुत समय से मातृमंदिर शुरू करने की सोच रहे हैं। वस्तुत:, जो अन्य स्थानों पर काम कर रहे हैं उनके सिवा, सभी को, आकर यहां काम करना चाहिये। वहां हर एक के लिए काम होगा। यह ज्यादा अच्छा होगा...। यह नगर का केंद्र है।

तुम उससे यह कह सकते हो : सिद्धांत रूप में विचार अच्छा है। लेकिन व्यावहारिक रूप में, हम बहुत समय से, साल-भर से अधिक से मातृमंदिर शुरू करना चाह रहे हैं ताकि हर एक वहां हर काम कर सके। आदमी को आकर कहना होगा : "नहीं, मैं नहीं करना चाहता" और उसके कारण होंगे।

यह 'शक्ति' की तरह है, ओरोवील की केंद्रीय 'शक्ति', ओरोवील को संबद्ध करने वाली 'शक्ति'।

वहां बगीचे होंगे। वहां सब कुछ होगा, सभी संभावनाएं : इंजीनियर, वास्तुकार, सभी तरह के शारीरिक काम। तो तुम उससे कह सकते हो कि यह विचार हवा में था और उसने पकड़ लिया है, लेकिन हम चाहते हैं कि उसका उपयोग सच्चे प्रतीकात्मक रूप में हो। और जब हम मातृमंदिर बनाना शुरू करेंगे, तो हम वहां पर हर एक को काम में लगा देंगे। हर रोज, सारे समय नहीं, लेकिन उसे व्यवस्थित किया जायेगा।

तुम बस यही कहना चाहते थे?

(मौन)

मैंने जो लिखा था उसके बारे में क्या किया गया है?

'ए' : इसे सूचना-पट्ट पर लगा दिया गया है। इसे लोगों ने पढ़ा है...

लगता तो नहीं कि इसका बहुत असर हुआ हो।

'ए': निश्चय ही इसका असर हुआ है, लेकिन किसी ने मुझसे इस बारे में कुछ कहा नहीं है।

अच्छा। तो अब, क्या तुम ध्यान चाहते हो? ध्यान नहीं: नीरवता। हो सके तो मानसिक नीरवता। सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए तुम्हें मानसिक नीरवता प्राप्त करनी चाहिये। तुम अभी... तुममें से कौन मानसिक तौर पर नीरव हो सकता है?

तुममें से हर एक फ्रेंच समझता है?

'ए': जी नहीं, सब नहीं।

(अंग्रेजी में) मैं पूछ रही हूं, तुममें से कौन मानसिक रूप में पूर्णतः नीरव होना जानता है? नहीं? कोई नहीं? *(हंसी)* यहां हम इसी की कोशिश कर रहे हैं।

('ए' से) कोशिश करें?

'ए': जी हां! (हंसी)

कौन सफल हुआ? अभी तक नहीं। तो अब मौन।

(लंबा मौन)

कोलाहल-भरा मौन!

*

२८ जुलाई, १९७०

कोई प्रश्न नहीं है? है? तुम क्या कहना चाहते हो?

'ए': पहली बात तो यह कि 'वाई' 'ऐस्पिरेशन' के लिए गायें खरीदने वाला है। वह कल मद्रास जायेगा और आपके आशीर्वाद चाहता है। वह तीन चाहता है, गायों के लिए एक-एक और एक अपने लिए।

(माताजी हंसती हैं) वे आशीर्वाद लेकर क्या करेंगी?

वह कहां से खरीदने वाला है?

'ए': मद्रास से।

मद्रास शहर है। गायें शहरों में नहीं पैदा होतीं।

'ए': लेकिन वह एक जानकार के साथ जा रहा है।

ओह! मैं उसके लिए आशीर्वाद का पैकेट देने को तैयार हूं, लेकिन गायों के लिए नहीं! बस?

'ए': एक और बात। हम यह जानना चाहेंगे कि हम 'ऐस्पिरेशन' वालों को 'क्रीड़ांगण' में न घुसने देने के पीछे क्या कारण है। पिछले बुधवार को, वहां 'ज़ैड' ने 'श्रीअरविन्द की कर्मधारा' विषय पर भाषण दिया था और हमें अन्दर न जाने दिया गया।

यह मेरी भूल है कि मैंने पहले से इस बारे में नहीं सोचा। अन्यथा मैं कह सकती थी कि तुम लोगों को इस अवसर पर जाने दें। मैंने पहले से नहीं सोचा। मैं 'ज़ैड' से पूछ सकती हूं, शायद वह तुम्हारे यहां भाषण देने को तैयार हो जाये।

'ए': वह भाषण दे चुका।

ओह, तो फिर...

'ए': जी नहीं, यह सब तो ठीक हो गया। परंतु हम कारण जानना चाहते हैं।

कारण बिलकुल भिन्न है। उसका इसके साथ कोई संबंध न था। इसका कारण सिर्फ यह है कि ऐसा नियम बनाना बहुत मुश्किल है जो एक आदमी पर लागू हो और दूसरे पर न हो—बहुत जटिल है। दुर्भाग्यवश, ओरोवील में रहने वालों में कुछ लोग ऐसे हैं जो पीते हैं। और अन्य चीजें भी हैं...। जो हो, एक आदमी 'प्लेग्राउण्ड' में नशे में धुत पाया गया। तो, स्वभावतया, यहां आश्रम में पीने की, मदिरा पीने की मनाही है। इसके कारण बड़ा शोर मचा। यह कारण है। यह कोई आंतरिक कारण नहीं है, एक बहुत व्यावहारिक कारण है। यह कहना असंभव है: "यह आ सकता है, वह नहीं आ सकता।" द्वार पर क्या किया जा सकता है? और इसके कारण एक फ़साद-सा हो गया। अगर वे मेरी सलाह मांगें, तो मैं कहूंगी, मैं तुम्हें न पीने की सलाह देती हूं, क्योंकि यह तुम्हारी चेतना को गिराता है और स्वास्थ्य को बरबाद करता है। लेकिन कुछ लोग मेरी सलाह नहीं मांगते। और मैंने जैसे आश्रम के लिए नियम बनाये थे उस तरह मैं ओरोवील के लिए नियम नहीं बनाना चाहती। यह एक ही चीज नहीं है।

जो लोग ओरोवील में रहते हैं और अपनी पुरानी आदतों के अनुसार चलने का आग्रह करते हैं—पुरानी और नयी भी—जो चेतना को नुकसान पहुंचाती हैं, जो चेतना को नीचा करती हैं, जैसे धूम्रपान, मदिरापान, और स्वभावतः, नशीली औषधियां... यह सब, ऐसा है मानों तुम अपनी सत्ता के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हो। आश्रम में, स्वभावतः, मैंने कह दिया 'नहीं'। हम चेतना में विकसित होना चाहते हैं, हम कामनाओं के गढ़े में उतरना नहीं चाहते। जो समझने से इन्कार करते हैं उनसे मैं कहती हूं: ओरोवील का लक्ष्य है एक नये, अधिक गभीर, अधिक जटिल, अधिक पूर्ण जीवन की खोज करना और दुनिया को यह दिखाना कि आगामी कल आज से ज्यादा अच्छा होगा।

कुछ लोग मानते हैं कि धूम्रपान, मदिरापान आदि, आगामी कल के जीवन के भाग होंगे। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुजरना चाहते हैं, तो उन्हें करने दो। वे देखेंगे कि वे अपने-आपको

अपनी ही कामनाओं के बंदी बना रहे हैं। बहरहाल, मैं नैतिकतावादी नहीं हूं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुजरना चाहते हैं, तो भले कर लें। लेकिन आश्रम इसका स्थान नहीं है। भगवान् की कृपा से आश्रम में हमने सीख लिया है कि जीवन कुछ और चीज है। सच्चा जीवन कामनाओं की तृप्ति नहीं है। मैं अनुभव से यह प्रमाणित कर सकती हूं कि स्वापक औषधियों के द्वारा लायी गयी सभी अनुभूतियां, अदृश्य जगत् के साथ यह सारा संपर्क, स्वापक औषधियों के बिना ज्यादा अच्छी तरह, ज्यादा सचेतन और संयत ढंग से मिल सकता है। सिर्फ आदमी को अपने ऊपर संयम रखना होगा। यह जहर निगलने से ज्यादा कठिन है। लेकिन मैं उपदेश देने नहीं बैठूंगी।

जब ओरोवील उच्चतर जीवन का उदाहरण बन जायेगा, जब कामनाओं पर विजय पा चुकेगा और अपने-आपको उच्चतर शक्तियों की ओर खोल देगा, तब हम हर जगह जा सकेंगे। जब ओरोवीलवासी जगत् में घूमती-फिरती ज्योतियां बन जायेंगे, तो उनका स्वागत होगा। तो, यह बात है!

लेकिन मेरा ख्याल है कि मैंने ऐसी कुछ चीज लिखी है। नहीं? मैंने तुम्हें जो दिये थे? वे कोरे शब्द न थे; ये ठोस चीजें हैं।

तो बस? या कुछ और पूछना है?

'ए': जी नहीं।

(मौन)

३० मार्च, १९७२ की वार्ता

चूंकि हमने सब परंपराओं को एक ओर कर दिया है, इसलिए हर एक झट यही सोचता है : "आहा! हमारी कामनाओं की पूर्ति के लिए अच्छी जगह!" और प्राय: सभी इसी इरादे से आते हैं।

और चूंकि मुझे जिन लोगों को आश्रम से भेज देना पड़ा था उनके बच्चों के लिए मैंने प्रसूति-गृह बनवाया, ताकि वे प्रसव के लिए कोई जगह पा सकें, तो लोग समझने लगे कि प्रसूति-गृह सभी अवैध बच्चों के लिए है।

मुझे वैधता की परवाह नहीं है, मुझे कानूनों और प्रथाओं की परवाह नहीं है। लेकिन मैं इतना अवश्य चाहती हूं कि वह एक अधिक दिव्य जीवन हो, पाशविक जीवन नहीं।

और लोग स्वाधीनता को स्वच्छन्दता में बदल देते हैं, वे उसका उपयोग अपनी कामनाओं की तुष्टि के लिए करते हैं। और जिन चीजों को वश में करने के लिए हमने सचमुच सारे जीवन काम किया है, वे उनमें, छितराव में रमे रहते हैं। मुझे एकदम विरक्ति-सी हो गयी है।

हम सब यहां कामनाओं को त्यागने के लिए, भगवान् की ओर मुड़ने के लिए और भगवान् के बारे में सचेतन होने के लिए हैं। हम जिस भगवान् को खोजते हैं वह सुदूर और अगम्य नहीं है। वह अपनी सृष्टि के हृदय में है और चाहता है कि हम उसे खोजें, और अपने निजी रूपांतर द्वारा उसे जानने के योग्य बनें, उसके साथ एक होने और अंत में, सचेतन रूप से उसे अभिव्यक्त करने योग्य बनें। हमें अपने-आपको इसके लिए अर्पित करना चाहिये, हमारे जीवन का यही सच्चा प्रयोजन है। और इस उच्चतर उपलब्धि के लिए हमारा पहला कदम है अतिमानसिक 'चेतना' की अभिव्यक्ति।

भगवान् को पाना और अपने जीवन में अभिव्यक्त करना ही इसका उपाय है, जानवर बनना और कुत्ते-बिल्ली का जीवन बिताना नहीं।

इसके बिलकुल विपरीत! ओरोवील की जनसंख्या के अधिकतर लोग अतिमानव नहीं, अवमानव हैं। हां तो, अब समय आ गया है जब इस सबको खतम होना चाहिये।

ऐसे लोग हैं जो बस यूं ही आ गये हैं, और अब जब मैं कहती हूं: "यह नहीं चलेगा", तो वे उत्तर देते हैं: "ओह, हम उसके लिए नहीं आये थे"!

ओह, मैं कितना चाहती हूं कि जाकर उन सबके मुंह पर कह सकूं कि वे गलती पर हैं, कि चीजें इस तरह नहीं हैं लेकिन मेरा ख्याल है कि इसे लिखने का समय आ गया है।

कितनी सुन्दर है यह, कितनी सुन्दर है मानवजाति!

लेकिन मधुर मां, आपकी शक्ति अभी, इस समय बहुत सक्रिय है।

हां, मैं जानती हूं। मैं जानती हूं, जब मैं इस अवस्था में होती हूं मैं 'शक्ति' को सारे समय देखती हूं—यह मेरी शक्ति नहीं है, यह 'भागवत शक्ति' है। अपनी तरफ से मैं कोशिश करती हूं, मैं उसके जैसा बनने की कोशिश करती हूं। यह शरीर केवल... केवल यथासंभव पारदर्शक, यथासंभव निर्वैयक्तिक प्रेषक (ट्रांसमिटर) बनना चाहता है ताकि भगवान् जो चाहें कर सकें।

(मौन)

कल, मुझे यहां पहली बार आये अट्ठावन साल हो गये। अट्ठावन साल से मैं इसके *लिए* काम करती आयी हूं कि शरीर यथासंभव पारदर्शक और अपार्थिव बने, दूसरे शब्दों में, जो शक्ति नीचे उतर रही है उसके मार्ग में बाधक न बने।

अब, अब शरीर ही, स्वयं शरीर ही उसे अपने सभी कोषाणुओं के साथ चाहता है। उसके अस्तित्व का यही एकमात्र कारण है। धरती पर शुद्ध रूप से एक ऐसे पारदर्शक, पारभासक तत्त्व को चरितार्थ करने की कोशिश करना जो 'शक्ति' को बिना विकृत किये कार्य करने दे।

भाग ५

भारत

भारत

(२ जून, १९४७ को उस समय के वायसराय लॉर्ड माउंटबैटन ने भारत के विभाजन के बारे में घोषणा की जिसमें पाकिस्तान के अतिरिक्त भारत के कुछ प्रान्तों को हिन्दू-मुस्लिम प्रान्त घोषित किया गया। इसे सुनने के बाद माताजी ने निम्न वक्तव्य दिया।)

भारत की स्वाधीनता को सुसंगठित करने में हमारे सामने जो कठिनाइयां दिखायी दे रही हैं उनका समाधान करने के लिए एक प्रस्ताव रखा गया है और भारत के नेता उसे काफी कड़वाहटभरे दुःख के साथ और हृदय को थामते हुए स्वीकार रहे हैं।

परंतु क्या तुम जानते हो कि यह प्रस्ताव हमारे सामने क्यों रखा गया है? यह हमें यह दिखाने के लिए रखा गया है कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

और क्या तुम जानते हो कि इस प्रस्ताव को हमें क्यों स्वीकार करना होगा? हमें अपने सामने यह साबित करने के लिए स्वीकार करना होगा कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

स्पष्ट है कि यह कोई समाधान नहीं है; यह एक प्रकार की परीक्षा है, एक अग्निपरीक्षा है, जिसमें, अगर हम पूरी सचाई के साथ उत्तीर्ण हो जायें तो यह हमें सिद्ध करके दिखा देगी कि किसी देश को टुकड़े-टुकड़े करके हम उसमें एकता नहीं स्थापित कर सकते, उसे महान् नहीं बना सकते; विभिन्न विरोधी स्वार्थों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके उसे हम समृद्ध नहीं बना सकते; एक मतवाद को दूसरे मतवाद के विरोध में उपस्थित कर हम 'सत्य' की सेवा नहीं कर सकते। इस सबके बावजूद, भारत की एक ही आत्मा है और जब तक ऐसी अवस्था नहीं आ जाती कि हम एक भारत की, एक और अखण्ड भारत की बात कह सकें, तब तक हमें बस, यही रट लगानी चाहिये :

भारत की आत्मा चिरंजीवी हो।

३ जून, १९४७

*

भारत की आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत संसार में अपने मिशन के बारे में सचेतन है। वह अभिव्यक्ति के बाहरी साधनों की प्रतीक्षा कर रहा है।

६ जून, १९४७

*

आह्वान

१५ अगस्त, १९४७

हे हमारी मां, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननी, तूने कभी, अत्यंत अंधकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे मां, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतंत्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य-जाति को दिखा सकें।

*

(रजत-नील कपड़े पर माताजी के सुनहरे प्रतीक वाली "माताजी की ध्वजा" के बारे में)

यह भारत के आध्यात्मिक मिशन की ध्वजा है। और इस मिशन को चरितार्थ करने से भारत की एकता चरितार्थ होगी।

१५ अगस्त, १९४७

*

सच्चे, साहसी, सहनशील और ईमानदार होकर ही तुम अपने देश की अच्छी-से-अच्छी सेवा कर सकते हो, उसे एक, और संसार में महान् बना सकते हो।

अक्तूबर, १९४८

*

('भारत के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण संघ' के लिए संदेश)

भारत के अतीत की भव्यताएं उसके सन्निकट भविष्य की चरितार्थता में उसकी जीवित-जाग्रत् आत्मा की सहायता और आशीर्वाद के साथ नया जन्म लें।

२३ अगस्त, १९५१

*

संसार के कल्याण के लिए भारत की रक्षा होनी ही चाहिये क्योंकि केवल वही विश्व-शांति और नयी विश्व-व्यवस्था की ओर ले जा सकता है।†

फरवरी, १९५४

*

केवल 'भागवत शक्ति' ही भारत की सहायता कर सकती है। अगर तुम देश में श्रद्धा और संबद्धता पैदा कर सको तो यह किसी भी मनुष्य-निर्मित शक्ति से कहीं ज्यादा शक्तिशाली होगी।†

फरवरी, १९५४

*

भारत और संसार की रक्षा करने के लिए संबद्ध इच्छा-शक्ति वालों का एक बलवान् समुदाय होना चाहिये जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान भी हो। भारत ही संसार में 'सत्य' को ला सकता है। भारत पश्चिम के जड़वाद की नकल करके नहीं, 'भागवत शक्ति' और उसके 'संकल्प' को अभिव्यक्त

करके ही संसार को अपना संदेश सुना सकता है। 'भागवत इच्छा' का अनुसरण करके ही भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर चमकेगा, 'सत्य' का मार्ग दिखायेगा और विश्व-ऐक्य का संगठन करेगा।†

फरवरी, १९५४

*

भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत संसार का गुरु है। संसार की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवित-जाग्रत् आत्मा है। भारत संसार में आध्यात्मिक ज्ञान को जन्म दे रहा है। भारत सरकार को चाहिये कि इस क्षेत्र में भारत के महत्त्व को स्वीकार करे और अपने कार्यों की योजना उसी के अनुसार बनाये।†

फरवरी, १९५४

*

जब घातक युद्ध में से विजयी होकर निकलता हुआ भारत अपनी क्षेत्रीय अखण्डता को फिर से पा लेगा, जब उससे अधिक घातक नैतिक संकट में से विजयी होकर—क्योंकि नैतिक संकट शरीर को मारने की जगह आत्मा के संपर्क को नष्ट कर देता है जो और भी ज्यादा दुःखद है—भारत संसार में अपने सच्चे स्थान और अपने उद्देश्य को पा लेगा, तब सरकारों और राजनीतिक स्पर्धाओं के ये तुच्छ झगड़े, जो पूरी तरह से निजी हितों और महत्त्वाकांक्षाओं से भरे हैं, अपने-आप ही एक न्यायसंगत और प्रकाशमयी सहमति में बदल जायेंगे।

१७ अप्रैल, १९५४

*

(१ नवंबर, १९५४ को पॉण्डिचेरी और भारत के अन्य फ़रासीसी क्षेत्र भारत के साथ मिला दिये गये। इस अवसर को मनाने के लिए सवेरे ६.२० पर माताजी का प्रतीक लिये एक ध्वजा आश्रम पर फहरायी गयी। उस समय माताजी ने निम्न संदेश पढ़ा:)

हमारे लिए १ नवंबर का गहरा अर्थ है। हमारे पास एक ध्वजा है जिसे श्रीअरविन्द ने 'संयुक्त भारत की आध्यात्मिक ध्वजा' कहा है। उसका वर्गाकार, उसका रंग, उसके डिजाइन के हर एक ब्योरे का प्रतीकात्मक अर्थ है। यह ध्वजा १५ अगस्त, १९४७ को फहरायी गयी थी जब भारत स्वाधीन हुआ था। अब यह पहली नवंबर को फहरायी जायेगी जब ये बस्तियां भारत के साथ एक हो रही हैं और भविष्य में जब कभी भारत को अपने अन्य भाग मिलेंगे, यह फहरायी जायेगी। संसार में अखण्ड भारत को एक विशेष मिशन पूरा करना है। श्रीअरविन्द ने इसके लिए अपना जीवन होम दिया और हम भी यही करने के लिए तैयार हैं।

१ नवंबर, १९५४

*

(राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू के नाम संदेश, जब वे आश्रम आये थे)

India must rise
to the height of her
mission and proclaim
the Truth to the world

भारत को अपने मिशन के शिखर तक उठना चाहिये और संसार के आगे 'सत्य' की घोषणा करनी चाहिये।

१५ नवंबर, १९५५

*

मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि भारत की भारतीय लोगों से रक्षा कीजिये।

हां, यह जरूरी-सा मालूम होता है।

१९५५

*

वर्तमान अंधकार और उदासी के बावजूद भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

१९५७

*

(२० अक्तूबर, १९६२ को चीन ने भारत की उत्तर-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर आक्रमण किया। २० और २८ अक्तूबर के बीच चीनियों ने कई सामरिक स्थलों पर कब्जा कर लिया और भारतीय सेना को पीछे हटने के लिए बाधित किया। इस समय माताजी ने निम्न चार वक्तव्य दिये :)

कभी-कभी मुझे लगता है कि हमारे नेताओं में कैनेडी की तरह मेरुदण्ड नहीं है जो उनमें क्यूबा के बारे में निर्णय लेते समय दिखायी दिया था।

इस समय इस तरह के विचार बिलकुल असंगत हैं। तुम्हें किसी की आलोचना तब तक न करनी चाहिये जब तक तुम निर्विवाद रूप से यह प्रमाणित न कर दो कि तुम, उन्हीं परिस्थितियों में, उससे ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हो।

क्या तुम्हें लगता है कि तुम भारत के अद्वितीय प्रधान मंत्री होने के

योग्य हो? मैं उत्तर देती हूं: हर्गिज नहीं, और तुम्हें चुप रहने और शांत रहने की सलाह देती हूं।

२४ अक्तूबर, १९६२

*

देश-भक्ति के भाव हमारे योग के साथ असंगत नहीं हैं, उल्टे, अपनी मातृभूमि की शक्ति और अखण्डता के लिए कामना करना बिलकुल उचित भाव है। यह कामना कि वह प्रगति करे और पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ, अपनी सत्ता के सत्य को अधिकाधिक अभिव्यक्त करे, सुन्दर और उदात्त भाव है जो हमारे योग के लिए हानिकर नहीं हो सकता।

लेकिन तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिये, तुम्हें समय से पहले कर्म में न कूद पड़ना चाहिये। तुम प्रार्थना कर सकते हो और करनी भी चाहिये, सत्य की विजय के लिए अभीप्सा और संकल्प कर सकते हो और, साथ ही, अपने दैनिक कार्य को जारी रख सकते हो और धीरज के साथ ऐसे अचूक चिह्न के लिए प्रतीक्षा कर सकते हो जो तुम्हें कर्तव्य कर्म का निर्देशन दे।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

२७ अक्तूबर, १९६२

*

मौन! मौन!

यह ऊर्जाएं समेटने का समय है, उन्हें व्यर्थ और निरर्थक शब्दों में नष्ट करने का नहीं।

जो कोई देश की वर्तमान स्थिति पर अपनी राय जोर-जोर से घोषित करता है, उसे यह समझ लेना चाहिये कि उसकी रायों का कोई मूल्य नहीं है और वे भारत माता की, कठिनाई से बाहर निकलने में रंचमात्र भी सहायता नहीं कर सकतीं। अगर तुम उपयोगी होना चाहते हो, तो पहले अपने-आपको वश में करो और चुप रहो।

मौन! मौन! मौन!

केवल मौन रहकर ही कोई बड़ी चीज की जा सकती है।

२८ अक्तूबर, १९६२

*

अगर आप अनुमति दें तो हम आपके युवा बालकों से चंदा इकट्ठा करके आपके उपयोग के लिए आपकी सेवा में रख दें।

यह ठीक है। मैं स्वीकार करती हूं। मैं इस अवसर का लाभ उठाकर तुम्हें यह भी बता दूं कि मैंने अभी, भारत की रक्षा के लिए आश्रम की भेंट सीधे दिल्ली भेजी है।

मेरे आशीर्वाद-सहित।

३१ अक्तूबर, १९६२

*

True spirituality is not to renounce life, but to make life perfect with a Divine Perfection.

This is what India must show to the world now.

21.1.63.

सच्ची आध्यात्मिकता जीवन से संन्यास नहीं है, बल्कि 'दिव्य पूर्णता' के साथ जीवन को पूर्ण बनाना है।

अब भारत को चाहिये कि संसार को यह दिखलाये।

२६ जनवरी, १९६३

*

वर्तमान आपत्काल में हर भारतीय का क्या कर्तव्य है?

Overgrow your small egoistic personality and become a worthy child of our Mother India, fulfil your duties with honesty and rectitude, and always keep cheerful and confident with a steady trust on the Divine's Grace

अपने तुच्छ, स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व से बाहर निकलो और अपनी भारतमाता के योग्य शिशु बनो। अपने कर्तव्यों को सच्चाई और ईमानदारी के साथ पूरा करो और 'भागवत कृपा' में अडिग विश्वास रखते हुए हमेशा प्रफुल्ल और विश्वासपूर्ण बने रहो।

३ फरवरी, १९६३

*

१. अगर आपसे, संक्षेप में, केवल एक ही वाक्य में, भारत के बारे में अपनी अंतर्दृष्टि को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाये, तो आपका क्या उत्तर होगा?

भारत की सच्ची नियति है जगत् का गुरु बनना।

२. इसी तरह, अगर आपसे कहा जाये कि आपको वास्तविकता

जिस रूप में दिखायी देती है उस पर एक ही वाक्य में टिप्पणी करें, तो आप क्या कहेंगी?

वर्तमान वास्तविकता एक बड़ा मिथ्यात्व है जो एक शाश्वत सत्य को छिपाये हुए है।

३. आपके मतानुसार, कौन-सी तीन बाधाएं अन्तर्दृष्टि और वास्तविकता के बीच खड़ी हैं?

(क) अज्ञान; (ख) भय; (ग) मिथ्यात्व।

४. स्वाधीनता के बाद सब मिलाकर भारत ने जो प्रगति की है उससे आप संतुष्ट हैं?

नहीं।

५. आधुनिक काल में हमारी सबसे उत्कृष्ट उपलब्धि कौन-सी है? आप उसे इतना महत्त्वपूर्ण क्यों समझती हैं?

'सत्य' के लिए प्यास का जागना। क्योंकि 'सत्य' के बिना कोई वास्तविकता नहीं होती।

६. उसी प्रकार, क्या आप यह बता सकती हैं कि सबसे दुःखद असफलता कौन-सी है? किन कारणों से आप उसे इतना दुःखद समझती हैं?

सचाई का अभाव। क्योंकि सचाई का अभाव नाश की ओर ले जाता है।

(२६ जनवरी, १९६४ में प्रकाशित)

*

माताजी,

बंगाल की नयी परिस्थितियों के बारे में मैंने अभी-अभी सुना है। आपने कहा है कि बंगाल आपकी शक्ति के प्रति ग्रहणशील नहीं है और आपको स्वीकार नहीं करता। बंगाल के लिए इससे अधिक दुःख की बात कोई नहीं हो सकती। लेकिन, माताजी, यह कैसी बात है कि बंगाल जो युगों से आपको दिव्य जननी के रूप में पूजता आया है, जिसने सभी परिस्थितियों में आपसे प्रार्थना की है, अब ऐसी शोचनीय और दुःखद स्थिति में है?

माताजी, मैं इसके लिए कहां तक जिम्मेदार हूं और मुझे क्या करना चाहिये कि आप इस अभागे प्रदेश को भुला न दें (क्योंकि मैं अपने को अपराधी अनुभव करता हूं)?

मेरे प्रिय बालक,

मैंने खास बंगाल के विरुद्ध कुछ नहीं कहा था। मैंने कहा था कि ये सब घटनाएं जो घट रही हैं वे *मनुष्यों* के अंदर ग्रहणशीलता के अभाव के कारण हैं। ऐसा लगता है कि वे अब भी चेतना की उसी अवस्था में हैं जो तीन-चार सौ वर्ष पहले स्वाभाविक और व्यापक थी।

स्पष्ट है कि यह आशा की जा सकती थी कि अपनी श्रद्धा के कारण बंगाली अधिक ग्रहणशीलता के उदाहरण बनेंगे और अचेतन हिंसा की इन गतिविधियों के आगे झुकने से इन्कार करेंगे। लेकिन, जैसा कि तुमने बहुत ठीक कहा, हर एक अपने अंदर से उत्तर पा सकता है और सचाई के साथ अपने-आपसे पूछ सकता है कि उसने अपने यहां रहने का कितना लाभ उठाया है! अगर यहां भी परिणाम बहुत हल्का और घटिया हो, तो हम उनसे क्या आशा कर सकते हैं जिन पर प्रभाव सीधा और प्रत्यक्ष नहीं है?

उपचार एक ही है: "जागो और सहयोग दो!"

३१ जनवरी, १९६४

*

नेहरू शरीर छोड़ रहे हैं पर उनकी आत्मा भारत की 'आत्मा' के साथ

जुड़ी है, जो चिरन्तन है।

२७ मई, १९६४

*

("माताजी के भारत के मानचित्र" के बारे में जिसमें पाकिस्तान, नेपाल, सिक्किम, भूटान, बांगला देश, बर्मा और श्रीलंका भी शामिल हैं। यहां "विभाजन" का मतलब है भारत और पाकिस्तान का विभाजन।)

यह मानचित्र विभाजन के बाद बना था।

यह सब तरह के अस्थायी रूपों के बावजूद सच्चे भारत का मानचित्र है, और यही हमेशा सच्चे भारत का मानचित्र रहेगा, लोग इसके बारे में कुछ भी क्यों न सोचें।

२९ जुलाई, १९६४

*

हमारा उद्देश्य भारत के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति नहीं, बल्कि समस्त संसार के लिए शिक्षा-पद्धति है।

*

परम माता,

हमारा लक्ष्य भारत के लिए ऐकांतिक शिक्षा नहीं है बल्कि सारी मानवजाति के लिए सारभूत और मौलिक शिक्षा है। मगर, क्या यह ठीक नहीं है, माताजी, कि अतीत के अपने सांस्कृतिक प्रयासों और उपलब्धियों के द्वारा अर्जित विशिष्ट योग्यता के कारण यह शिक्षा भारत का सौभाग्य है और अपने तथा जगत् के प्रति इसकी कुछ विशेष जिम्मेदारी है? बहरहाल, मेरा ख्याल है कि वह सारभूत शिक्षा ही भारत की राष्ट्रीय शिक्षा होगी। वास्तव में, मैं यह मानता हूं कि इसी भांति हर बड़े राष्ट्र में अपनी विशेष विभिन्नताओं के आधार पर एक राष्ट्रीय शिक्षा होगी।

क्या यह ठीक है और क्या माताजी इसका समर्थन करेंगी?

क्रीड़ांगण में श्रीमां
(२१ फरवरी १९५२ को भारत के आध्यात्मिक मानचित्र के सामने)

हां, यह बिलकुल ठीक है और अगर मेरे पास तुम्हारे प्रश्न का पूरा उत्तर देने का समय होता तो मैं जो उत्तर देती उसका यह एक भाग होता।

भारत के पास आत्मा का ज्ञान है या यूं कहें था, लेकिन उसने जड़द्रव्य की अवहेलना की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिम के पास जड़द्रव्य का ज्ञान है पर उसने 'आत्मा' को अस्वीकार किया और इस कारण बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

पूर्ण शिक्षा वह होगी जो, कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ, संसार के सभी देशों में अपनायी जा सके। उसे पूर्णतया विकसित और उपयोग में लाये हुए जड़द्रव्य पर 'आत्मा' के वैध अधिकार को वापिस लाना होगा।

मैं जो कहना चाहती थी उसका संक्षेप यही है।

आशीर्वाद सहित।

२६ जुलाई, १९६५

*

(अगस्त १९६५ में भारत सरकार का शिक्षा-आयोग 'शिक्षा-केंद्र' की शिक्षा-पद्धति और इसके आदर्शों का निरीक्षण करने के लिए पॉण्डिचेरी आया था। उस समय कुछ अध्यापकों ने माताजी से ये प्रश्न पूछे थे।)

भारतीय शिक्षा के आधारभूत प्रश्न

१. वर्तमान और भावी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन को दृष्टि में रखते हुए, भारत को शिक्षा में किस चीज को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये?

अपने बालकों को मिथ्यात्व के त्याग और 'सत्य' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करना।

२. किन उपायों से देश इस महान् लक्ष्य को चरितार्थ कर सकता है? इस दिशा में आरंभ कैसे किया जाये?

जड़द्रव्य को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करो।

३. भारत की सच्ची प्रतिभा क्या है और उसकी नियति क्या है?

जगत् को यह सिखाना कि जड़द्रव्य तब तक मिथ्या और अशक्त है जब तक वह 'आत्मा' की अभिव्यक्ति न बन जाये।

४. माताजी भारत में विज्ञान और औद्योगिकी की प्रगति को किस दृष्टि से देखती हैं? मनुष्य के अन्दर 'आत्मा' के विकास में वे क्या योगदान दे सकते हैं?

इसका एकमात्र उपयोग है जड़द्रव्य को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए अधिक मजबूत, अधिक पूर्ण और अधिक प्रभावशाली बनाना।

५. देश राष्ट्रीय एकता के लिए काफी चिंतित है। माताजी की क्या दृष्टि है? भारत अपने तथा जगत् के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कैसे पूरा करेगा?

सभी देशों की एकता जगत् की अवश्यंभावी नियति है। लेकिन सभी देशों की एकता के संभव होने के लिए पहले, हर देश को अपनी एकता चरितार्थ करनी होगी।

६. भाषा की समस्या भारत को काफी तंग करती है। इस मामले में हमारा उचित मनोभाव क्या होना चाहिये?

एकता एक जीवित तथ्य होना चाहिये, मनमाने नियमों के द्वारा आरोपित वस्तु नहीं। जब भारत एक होगा, तो सहज रूप से उसकी एक भाषा होगी जिसे सब समझ सकेंगे।

७. शिक्षा सामान्यतः साक्षरता और एक सामाजिक प्रतिष्ठा की चीज बन गयी है। क्या यह अस्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है? लेकिन शिक्षा को उसका आंतरिक मूल्य और उसका सहज आनन्द कैसे प्रदान किया जाये?

परंपराओं से बाहर निकलो और अंतरात्मा के विकास पर जोर दो।

८. आज हमारी शिक्षा कौन-से दोषों और भ्रांतियों का शिकार है? हम उनसे यथासंभव कैसे बच सकते हैं?

क) सफलता, आजीविका और धन को दिया जाने वाला प्रायः ऐकांतिक महत्त्व।

ख) 'आत्मा' के साथ संपर्क और सत्ता के सत्य के विकास और उसकी अभिव्यक्ति की परम आवश्यकता पर जोर दो।

५ अगस्त, १९६५

*

मैं चाहूंगी कि वे (सरकार) योग को शिक्षा के रूप में स्वीकार कर लें, हमारे लिए उतना नहीं जितना यह देश के लिए अच्छा होगा।

जड़द्रव्य का रूपांतर होगा, वह ठोस आधार होगा। जीवन दिव्य बनेगा। भारत को नेतृत्व करना चाहिये।

*

(१ सितंबर १९६५ को पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर की ओर आक्रमण किया था। २२ सितंबर को युद्ध-विराम हुआ। इस बीच माताजी ने ये पांच वक्तव्य दिये थे।)

श्रीअरविन्द अपनी पुस्तक 'ऐसेज़ ऑन द गीता' (गीता-प्रबंध) *में कहते हैं: "जब तक रुद्र का ऋण न चुक जाये तब तक विष्णु का विधान प्रभावी नहीं हो सकता।"* इसका *क्या अर्थ है?*

माताजी, क्या भारत की वर्तमान अवस्था रुद्र के ऋण की तरह है जिसे चुकाना होगा?

जो लोग वर्तमान स्थिति के बारे में 'क्यों' और 'कैसे' पूछेंगे उनके लिए मैंने यह पूरा उद्धरण पहले से ही तैयार कर रखा था। मैं तुम्हें यह उद्धरण भेज रही हूं जो तुम्हारे प्रश्न से निबट लेगा।

"सच्ची शांति तब तक नहीं हो सकती जब तक मनुष्य का हृदय शांति पाने का अधिकारी न हो; जब तक रुद्र का ऋण न चुकाया जाये तब तक विष्णु का विधान प्रभावी नहीं हो सकता। तो फिर इसे छोड़कर अभी तक अविकसित मानवजाति को प्रेम और ऐक्य के विधान का पाठ पढ़ाना? प्रेम और ऐक्य के विधान के शिक्षक जरूर होने चाहियें, क्योंकि उसी रास्ते से परम मोक्ष आयेगा। लेकिन जब तक मनुष्य के अंदर 'काल-पुरुष' तैयार न हो जाये, तब तक बाह्य और तात्कालिक वास्तविकता पर आंतरिक और परम हावी नहीं हो सकता। ईसा और बुद्ध आये और चले गये, लेकिन अभी तक संसार रुद्र की हथेली में है। और इस बीच अहंकारमयी शक्ति का फायदा उठाने वालों और उनके सेवकों द्वारा सतायी और संतप्त मानवजाति का दुर्धर्ष अग्रगामी परिश्रम 'योद्धा' की तलवार और अपने मसीहा की वाणी के लिए आर्त पुकार कर रहा है।"[1]

८ सितंबर, १९६५

*

It is for the sake and the triumph of Truth that India is fighting and must fight until India and Pakistan have once more become One because that is the truth of their being.

16.9.65.

[1] श्रीअरविन्द, 'गीता-प्रबंध'।

'भारत 'सत्य' के लिए और उसकी विजय के लिए लड़ रहा है और उसे तब तक लड़ते रहना चाहिये जब तक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर से 'एक' न हो जायें, क्योंकि यही उनकी सत्ता का सत्य है।

१६ सितंबर, १९६५

*

आपके प्रधानमंत्री के और सेनापति के नाम १६ सितंबर के संदेश के बावजूद, वर्तमान परिस्थितियों में हमारी सरकार का युद्ध-विराम को स्वीकार कर लेना क्या सर्वश्रेष्ठ उपाय न था?

वे और कुछ कर ही नहीं सकते थे।

२१ सितंबर, १९६५

*

हम देखते हैं कि इस समय पूरा संसार एक प्रकार के असंतुलन और विशृंखलता की स्थिति में है। क्या इसका यह अर्थ है कि वह अपने-आपको एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए, 'सत्य' के अवतरण के लिए तैयार कर रहा है? या फिर यह अवतरण के विरुद्ध आसुरिक शक्तियों के विद्रोह का परिणाम है? इस सबमें भारत का क्या स्थान है?

दोनों बातें एक साथ हैं। यह तैयारी का एक विशृंखल तरीका है। भारत को आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक होना चाहिये जो समझा सके कि क्या हो रहा है, और इस आंदोलन को छोटा करने में सहायता दे। लेकिन, दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अंधी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी आत्मा की उपेक्षा कर रहा है।

१३ अक्तूबर, १९६५

*

मैं आशा करता हूं कि काश्मीर की लड़ाई भारत और पाकिस्तान के एक होने की ओर पहला कदम है।

'परम प्रज्ञा' इस पर नज़र रखे हुए है।

१९६५

*

माना यह जाता है कि जगत् में आध्यात्मिक जीवन स्थापित करने के लिए भारत संसार का गुरु है। लेकिन, माताजी, यह उच्च पद पाने के लिए उसे राजनीतिक, नैतिक और भौतिक दृष्टि से इसके योग्य होना चाहिये, है न?

निःस्संदेह—और अभी इसके लिए बहुत कुछ करना बाकी है।

७ सितंबर, १९६६

*

हमारी वर्तमान सरकार की इतनी विशृंखल दशा क्यों है? क्या यह अच्छे के लिए परिवर्तन का, 'सत्य' के शासन के आने का चिह्न है?

समस्त धरती पर 'सत्य' की शक्ति के दबाव के कारण ही हर जगह अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता और मिथ्यात्व उछल रहे हैं जो रूपान्तरित होने से इन्कार कर रहे हैं।

'सत्य' का मार्ग निश्चित है, पर यह कहना मुश्किल है कि वह कब और कैसे आयेगा।

१४ सितंबर, १९६६

*

माताजी, मैंने सुना है कि १९६७ में भारत "संसार का आध्यात्मिक गुरु बन जायेगा।" लेकिन कैसे? जब हम वर्तमान अवस्था को देखते हैं तो...

भारत को जगत् का आध्यात्मिक नेता *होना चाहिये*। अंदर तो उसमें क्षमता है, परंतु बाहर... अभी तो सचमुच जगत् का आध्यात्मिक नेता बनने के

लिए बहुत कुछ करना बाकी है।

अभी तुरंत ऐसा अद्भुत अवसर है! पर...

८ जून, १९६७

*

(भारत सरकार का शिक्षा-आयोग आश्रम आया था, उसके नाम संदेश)

भारत सरकार को एक बात जाननी जरूरी है—क्या वह भविष्य के लिए जीना चाहती है, या अतीत के साथ भीषण रूप से चिपकी रहना चाहती है?

२० जून, १९६७

*

('आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी के उद्घाटन के अवसर पर प्रसारित संदेश)

हे भारत, ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश! संसार में अपने सच्चे लक्ष्य के प्रति जागो, ऐक्य और सामंजस्य की राह दिखाओ।

२३ सितंबर, १९६७

*

भारत आधुनिक मानवजाति की सभी कठिनाइयों का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि बन गया है।

भारत ही उसके पुनरुत्थान का, एक उच्चतर और सत्यतर जीवन में पुनरुत्थान का देश होगा।

*

सारी सृष्टि में धरती का एक प्रतिष्ठित विशेष स्थान है, क्योंकि अन्य सभी ग्रहों से भिन्न, वह विकसनशील है और उसके केंद्र में एक चैत्य सत्ता है।

उसमें भी, विशेष रूप से भारत भगवान् द्वारा चुना हुआ एक विशेष देश है।

*

केवल भारत की आत्मा ही इस देश को एक कर सकती है।

बाह्य रूप में भारत के प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषा, सभी दृष्टियों से बहुत अलग-अलग हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का प्रयत्न केवल विनाशकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। वह आध्यात्मिक सत्य, सृष्टि की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य मूल के प्रति अभीप्सा में तीव्र है, और इस अभीप्सा के साथ एक होकर सारा देश अपने ऐक्य को फिर से पा सकता है। उस ऐक्य का अस्तित्व प्रबुद्ध मानस के लिए कभी समाप्त नहीं हुआ।

७ जुलाई, १९६८

*

(राष्ट्रपति वी. वी. गिरि जब आश्रम आये थे तो माताजी ने उन्हें यह संदेश दिया)

आओ, हम सब भारत की महानता के लिए काम करें।

१४ सितंबर, १९६९

*

(भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के आने पर माताजी ने उन्हें ये संदेश दिये थे)

भारत भविष्य के लिए काम करे और सबका नेतृत्व करे। इस तरह वह जगत् में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

बहुत पहले से यह आदत चली आयी है कि विभाजन और विरोध के द्वारा शासन किया जाये।

अब समय आ गया है एकता, पारस्परिक समझ और सहयोग के द्वारा शासन करने का।

सहयोगी चुनने के लिए, वह जिस दल का है उसकी अपेक्षा स्वयं मनुष्य का मूल्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्र की महानता अमुक दल की विजय पर नहीं बल्कि सभी दलों की एकता पर निर्भर है।

६ अक्तूबर, १९६९

*

India must find back and manifest her soul.

भारत को फिर से अपनी आत्मा को पाना और अभिव्यक्त करना होगा।

*

आपने अपने एक संदेश में कहा है :

"भारत की पहले नंबर की समस्या है अपनी आत्मा को फिर से पाना और अभिव्यक्त करना।"

भारत की आत्मा को कैसे पाया जाये?

अपने चैत्य पुरुष के बारे में सचेतन होओ। ऐसा करो कि तुम्हारा चैत्य पुरुष भारत की 'आत्मा' में तीव्र रुचि ले और उसके लिए सेवा-वृत्ति से अभीप्सा करे; और अगर तुम सच्चे हो तो सफल हो जाओगे।

१५ जून, १९७०

*

भारत वह देश है जहां चैत्य के विधान का शासन *हो सकता है और होना चाहिये* और अब *यहां* उसका समय आ गया है। इसके अतिरिक्त इस देश के लिए, जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य के प्रभाव और आधिपत्य के कारण विकृत हो गयी है, यही एक संभव निस्तार है। हर चीज के बावजूद, उसके पास एक अनोखी आध्यात्मिक परंपरा है।

आशीर्वाद।

२ अगस्त, १९७०

*

('आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित संदेश)

हम प्रकाश और सत्य के संदेशवाहक होना चाहते हैं। सामंजस्यपूर्ण भविष्य जगत् के सामने उद्घोषित होने के लिए तैयार खड़ा है।

समय आ गया है जब भय द्वारा शासन करने की आदत के स्थान पर प्रेम का शासन आये।

५ नवंबर, १९७०

*

(माताजी के जन्मदिन २१ फरवरी, १९७१ को 'आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित संदेश)

सच्ची स्वाधीनता ऊपर उठती हुई गति है जो निम्न वृत्तियों के आगे नहीं झुकती।

सच्ची स्वाधीनता एक भागवत अभिव्यक्ति है।

हम भारत के लिए सच्ची स्वाधीनता चाहते हैं ताकि वह संसार के

सामने इस बात का उचित उदाहरण बन सके कि मानवजाति को क्या होना चाहिये?

१३ फरवरी, १९७१

*

(बांगला देश की लड़ाई के दिनों में, माताजी ने ये चार संदेश दिये थे।)

अवस्था गंभीर है। कोई शक्तिशाली और प्रबुद्ध कदम ही देश को इसमें से निकाल सकता है।

आशीर्वाद।

३० अप्रैल, १९७१

*

(यह संदेश आश्रम में इस भूमिका के साथ बांटा गया था :
"देश के वर्तमान संकट के समय सब लोगों के लिए माताजी का दिया हुआ मंत्र।")

परम प्रभो, शाश्वत सत्य
वर दे कि हम तेरी ही आज्ञा का पालन करें
और 'सत्य' के अनुसार जियें।

जून, १९७१

*

मैं बाह्य रूप से तब तक कुछ नहीं कर सकती जब तक वे 'सत्य' का अनुसरण करने के लिए कटिबद्ध न हो जायें।

वैसा 'सत्य' नहीं जैसा वे देखते हैं बल्कि वह 'सत्य' जैसा कि वह है।

'सत्य' को जान सकने के लिए तुम्हें पसंदों से ऊपर और कामनाओं से रहित होना चाहिये, और जब तुम 'सत्य' के लिए अभीप्सा करो तो तुम्हारा मन नीरव होना चाहिये।

८ जुलाई, १९७१

*

यह इसलिए है कि क्योंकि समस्त संसार मिथ्यात्व में सराबोर है—इसलिए वे सभी काम जो किये जाते हैं मिथ्या होंगे, और यह अवस्था लंबे समय तक चल सकती है और लोगों के लिए और देश के लिए बहुत कष्ट ला सकती है।

बस, एक ही चीज करने लायक है, हृदय से भागवत हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना करो, क्योंकि वही एक चीज है जो हमारी रक्षा कर सकती है। वे सब जो इस विषय में सचेतन हो सकते हैं उन्हें बहुत दृढ़ता के साथ निश्चय करना चाहिये कि वे केवल 'सत्य' पर ही डटे रहेंगे और केवल 'सच्चाई' से ही काम करेंगे। *कोई समझौता नहीं होना चाहिये*। यह बहुत आवश्यक है। यही एकमात्र मार्ग है।

चीजें भले भटकती या हमारे लिए बुरी होती दिखायी दें, वस्तुतः जैसा कि इस समय फैले हुए मिथ्यात्व के कारण होगा—हम 'सत्य' के लिए डटे रहने के अपने निश्चय से न डिगें।

यही एकमात्र रास्ता है।†

जुलाई १९७१

*

भारत संसार में अपना सच्चा स्थान तभी पायेगा जब वह पूर्ण रूप से 'भागवत जीवन' का संदेशवाहक बन जायेगा।

२४ *अप्रैल, १९७२*

*

भारत क्या है?

भारत इस भूमि की मिट्टी, नदियां और पहाड़ नहीं है, न ही इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भारत है। भारत एक जीवंत सत्ता है, इतनी ही जीवंत जितने कि, कह सकते हैं, शिव। भारत एक देवी है जैसे शिव एक देवता हैं। अगर वे चाहें तो मानव रूप में भी प्रकट हो सकती हैं।†

*

जब तुम्हें सुंदरता से कतराना सिखाया जाता हो तो इसका अर्थ है कि इसके पीछे असुर का एक बहुत बड़ा अस्त्र क्रियाशील है। इसी ने भारत का विनाश किया है। भगवान् चैत्य में प्रेम, मन में ज्ञान, प्राण में शक्ति तथा भौतिक में सौंदर्य के रूप में प्रकट होते हैं। अगर तुम सौंदर्य का बहिष्कार करो तो तुम भगवान् को भौतिक स्तर पर प्रकट होने से रोकते हो और उस भाग को असुर के हाथ में सौंप देते हो।†

*

अति प्राचीन काल से (कुछ विद्वान् कहते हैं ईसा से ८००० वर्ष पहले से) भारत आध्यात्मिक ज्ञान और साधना का देश, 'परम सद्वस्तु' की खोज और उसके साथ ऐक्य का देश रहा है। यह वह देश है जिसने एकाग्रता का सर्वोत्तम और सबसे अधिक अभ्यास किया है। इस देश में जो पद्धतियां सिखायी जाती हैं, जिन्हें संस्कृत में योग कहते हैं, वे अनंत हैं। कुछ केवल भौतिक हैं, कुछ शुद्ध रूप से बौद्धिक हैं, कुछ धार्मिक और भक्तिपरक हैं; अंततः कुछ हैं जो अधिक सर्वांगीण परिणाम प्राप्त करने लिए इन विविध पद्धतियों को मिला देती हैं।

*

> *"ओह! क्योंकि भारत जो धर्म का पालना है, जहां इतने सारे देवता उसके भाग्य के अधिष्ठाता हैं, उनमें से कौन-सा इस नगर को पुनरुज्जीवित करने का चमत्कार सिद्ध करेगा?"*
>
> (१९२८ में लिखे पॉण्डिचेरी के बारे में ए. शूमेल के एक लेख में से)

वह मिथ्या बाह्य छवियों से अंधा होकर, बदनामियों से धोखा खाकर, भय और पक्षपात की पकड़ में आकर, उस देव के पास से होकर गुजर गया जिसके हस्तक्षेप का वह आवाहन कर रहा है और जिसे उसने देखा नहीं; वह उन शक्तियों के पास से होकर निकल गया जो वह चमत्कार सिद्ध करेंगी जिसकी वह मांग कर रहा है परंतु उसमें उन्हें पहचानने की इच्छा न थी। इस भांति वह अपने जीवन का सबसे बड़ा अवसर खो बैठा—उन

रहस्यों और अद्‌भुत चमत्कारों के संपर्क में आने का अद्वितीय अवसर खो बैठा जिनके अस्तित्व के बारे में उसके मस्तिष्क ने अनुमान किया है और जिसके लिए उसका हृदय अनजाने ही अभीप्सा करता है।

सदा से अभीप्सुओं को, दीक्षा पाने से पहले, कुछ परीक्षाएं देनी होती थीं। प्राचीन संप्रदायों में ये परीक्षाएं कृत्रिम होती थीं, और इस कारण वे अपना अधिकतर मूल्य खो बैठती थीं। लेकिन अब ऐसा नहीं है। परीक्षा किसी बहुत ही मामूली, दैनिक परिस्थिति के पीछे छिप जाती है और संयोग और दैवयोग का निर्दोष रूप धारण कर लेती है जिसके कारण वह और भी अधिक कठिन और खतरनाक बन जाती है।

भारत अपने खजानों का रहस्य उन्हीं के सामने प्रकट करता है जो मन की अभिरुचियों और जाति तथा शिक्षा के पक्षपातों पर विजय पा लें। अन्य जो खोजते हैं उसे न पाकर निराश लौटते हैं; क्योंकि उन्होंने उसे गलत तरीके से खोजा था और 'दिव्य खोज' का मूल्य चुकाने के लिए तैयार न थे।

११ सितंबर, १९२८

*

(आश्रम के एक कलाकार ने पॉण्डिचेरी राज्य के लिए एक प्रतीकात्मक मॉडल बनाया था, उसका वर्णन)

यहां पॉण्डिचेरी के नये राज्य को एक छोटी देसी नौका का रूप दिया गया है जिसमें एक मण्डप बना है। इस मण्डप के चार मुख्य स्तम्भ हैं : एशिया, यूरोप, अफ्रीका और अमरीका—चार महाद्वीप। एशिया का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं बुद्ध, यूरोप का पालास ऐथिनी, अफ्रीका के लिए आइसिस है और अमरीका का प्रतीक है स्वाधीनता की मूर्ति। ये आध्यात्मिक सहारे संसार के गोले को उठाये हुए हैं जिसमें ऊपर से 'शांति की फाख्ता' उतरती है। गोले के एक ओर एक भारतीय नारी तालपत्र लिये स्वागत करने को खड़ी है और दूसरी ओर एक फरासीसी नारी मंगलसूचक जैतून की शाखा लिये है। पूर्व और पश्चिम की यह मैत्री राष्ट्रों के बीच चिरस्थायी शांति और सुसंगति के लिए शुभ शकुन है।

मण्डप के चार स्तंभों के बीच की खुली जगह उनसे लिपटी हुई बेलों से ढकी है जिनमें बारी-बारी से लाल और सफेद कमल हैं। लाल और सफेद कमल पार्थिव विकास का पथ-प्रदर्शन करने वाली यमल आध्यात्मिक 'चेतना' के प्रतीक हैं।

मण्डप के चार कोनों पर आध्यात्मिक 'शक्तियों' के प्रतीक चार रक्षक सिंह खड़े हैं।

आशा की जाती है कि पॉण्डिचेरी राज्य इस आध्यात्मिक अंतर्दर्शन को मूर्त रूप देगा और संसार की समस्त संस्कृतियों का मिलन-स्थल होगा जिसमें संसार-भर के लोगों को एक साथ बांध रखने वाली मौलिक 'एकता' की पूरी-पूरी चेतना होगी।

१९५४

*

[मादाम इवोन रोबैर गाबले (सुव्रता) नामक एक फ्रेंच महिला के नाम जिनकी फ्रेंच पुस्तक 'पॉण्डिचेरी का इतिहास' १९६० में छपी थी]

मेरी प्रिय बालिका,

मैंने अभी-अभी तुम्हारी सुन्दर और *बहुत मजेदार* पुस्तक देखी है; मैंने चित्र देखे और प्रस्तावित स्थल भी पढ़े हैं, कुछ अन्य स्थल भी देखे। वे जानकारी के लिए बहुमूल्य हैं।

यह बहुत अच्छी है, इस सुन्दर कृति पर बधाई देते हुए मुझे खुशी होती है।

क्या हमें पुस्तकालय के लिए एक प्रति मिलेगी? तो, मैं अपनी पुस्तक वहां न भेजूंगी।

मैं आशा करती हूं कि एक दिन आयेगा जब हम खुलकर और यथार्थ रूप से यह कह सकेंगे कि पॉण्डिचेरी नगर के लिए श्रीअरविन्द की 'उपस्थिति' का क्या मूल्य है।

इस बीच, मैं तुम्हें अपना प्रेम और आशीर्वाद भेजती हूं।

१२ जनवरी, १९६१

*

मुझे भारतीय भाषाओं के लिए बहुत अधिक मान है और जब समय मिलता है मैं संस्कृत का अध्ययन जारी रखती हूं।

*

संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा होना चाहिये।

आशीर्वाद।

१९ अप्रैल, १९७१

*

हिन्दी सिर्फ उन लोगों के लिए ठीक है जो हिन्दी-भाषी प्रदेश के हों। संस्कृत सभी भारतवासियों के लिए अच्छी है।

*

जिन विषयों पर आपने और श्रीअरविन्द ने सीधे उत्तर दिये हैं, उनके बारे में हम ('श्रीअरविन्द ऐक्शन' वाले) भी सुनिश्चित हैं, उदाहरण के लिए... भाषा के बारे में जहां आपने कहा है कि (१) क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम होना चाहिये, (२) संस्कृत को राष्ट्रभाषा होना चाहिये, और (३) अंग्रेजी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा।

क्या हम ऐसे प्रश्नों पर ये उत्तर देकर ठीक करते हैं?

हां।

आशीर्वाद।

४ अक्तूबर, १९७१

भाग ६

भारत से इतर राष्ट्र

भारत से इतर राष्ट्र

अमरीका के नाम संदेश

यह सोचना बंद कर दो कि तुम पश्चिम के हो और अन्य लोग पूर्व के। सभी मनुष्य उसी एक दिव्य मूल के हैं और धरती पर इस मूल की एकता को अभिव्यक्त करने के लिए हैं।

४ अगस्त, १९४९

*

पॉण्डिचेरी में फ्रेंच इंस्टिट्यूट के उद्घाटन के लिए संदेश

किसी भी देश में बच्चों को जो सबसे अच्छी शिक्षा दी जा सकती है वह यह है : उन्हें यह सिखाया जाये कि उनके देश का सच्चा स्वरूप और उसकी विशेषताएं क्या हैं, जगत् में उनके राष्ट्र को कौन-सा कर्तव्य पूरा करना है और भूमण्डल में उसका सच्चा स्थान क्या है। उसमें दूसरे राष्ट्रों की भूमिका का विस्तृत ज्ञान भी जोड़ देना चाहिये, लेकिन नकल के भाव से रहित और अपने देश की प्रतिभा को आंखों से ओझल किये बिना!

फ्रांस की विशेषता है भावना की उदारता, विचारों की नूतनता और निर्भीकता व कर्म में शौर्य। वही फ्रांस था सबके आदर, सम्मान और प्रशंसा का पात्र : इन्हीं गुणों से वह जगत् पर छा गया था।

स्वार्थी, हिसाबी और व्यापारिक फ्रांस फ्रांस नहीं रहा। ऐसी चीजें उसके सच्चे स्वरूप के साथ मेल नहीं खातीं और इन चीजों को अपने आचरण में लाकर वह संसार में अपनी भव्य प्रतिष्ठा की स्थिति को खो रहा है।

आज के बच्चों को यह अवश्य सिखाया जाना चाहिये।

४ अप्रैल, १९५५

*

फ्रांस ही यूरोप को भारत के साथ मिला सकता है। फ्रांस के लिए महान् आध्यात्मिक संभावनाएं हैं। अपनी वर्तमान बुरी अवस्था के बावजूद वह

बहुत बड़ी भूमिका निभायेगा। फ्रांस के माध्यम से आध्यात्मिक संदेश यूरोप में पहुंचेंगे। इसीलिए मैंने अपने जन्म के लिए फ्रांस को चुना था, यद्यपि मैं फ्रेंच नहीं हूं[1]।†

*

प्रिय 'क्ष',

मैंने अक्तूबर १९६१ में माताजी को 'विश्व ऐक्य' के संबंध में जल्दी ही अपने अफ्रीका के दौरे पर जाने के बारे में लिखा था; मैंने उन बहुत-से नये देशों के बारे में लिखा था जो अब स्वतंत्र होने जा रहे हैं। क्या वे इन राष्ट्रों के लिए कोई संदेश देंगी? "क्या इससे तुम्हें सहायता मिलेगी?" इतना लिखकर उन्होंने यह संदेश दिया :

सच्ची स्वाधीनता है कामना से मुक्त होना।
सच्ची स्वतंत्रता है आवेग से मुक्त होना।
सच्चा प्रभुत्व है स्वयं अपना प्रभु होना।
यही एक प्रसन्नता की चाबी है, बाकी सब अस्थायी भ्रांति है।

विभाजन में नही बल्कि ऐक्य में मानव समस्याओं का हल और मानव कष्टों का उपचार पाया जा सकता है।

अक्तूबर, १९६१

*

दिव्य मां,

क्या हम आपसे एक ऐसा संदेश पा सकते हैं जो अमरीका में उन लोगों को दिया जा सके जो हमारे कोष-संग्रह के काम में सहायता करने के लिए धन इकट्ठा कर रहे हैं?

[1] माताजी के पिता तुर्क थे और मां मिस्र की। वे माताजी के जन्म से एक वर्ष पहले, १८७७ में मिस्र से फ्रांस आये थे।

धन धन कमाने के लिए नहीं है; धन का प्रयोजन है धरती को 'नयी सृष्टि' के लिए तैयार करना।[१]

१५ जून, १९६६

*

जो 'सत्य' की सेवा करते हैं वे कोई एक या दूसरा पक्ष नहीं ले सकते।

'सत्य' संघर्ष और विरोध से ऊपर है।

सभी देश प्रगति और उपलब्धि के लिए मिले-जुले प्रयास करते हुए 'सत्य' के अंदर आ मिलते हैं।

८ जून, १९६७

*

एक राष्ट्र के तौर पर इजराईल को भी जीने का वही अधिकार है जो अन्य राष्ट्रों को है।

१२ जून, १९६७

*

तुम यह कैसे मान सकते हो कि 'कृपा' किसी एक राष्ट्र के पक्ष में या दूसरे के *विरोध* में काम करती है। 'कृपा' *'सत्य'* के लिए काम करती है और संसार की वर्तमान अवस्था में 'सत्य' और मिथ्यात्व, दोनों हर जगह, सभी राष्ट्रों में मौजूद हैं। मानव मन सोचता है : यह ठीक है और वह गलत—ठीक और गलत सब जगह उपस्थित हैं।

'सत्य' सभी संघर्षों और विरोधों से ऊपर है।

१३ जून, १९६७

*

क्या मैं आपसे दो विषयों में स्पष्टीकरण पा सकता हूं?

(१) क्या 'कृपा' दोनों पक्षों में जो कुछ 'सत्य' है उसके लिए काम नहीं करती?

[१] यही संदेश पहले किसी और अवसर पर भी दिया गया था।

करती है।

या वह अपने-आपको अलग-थलग रखती है, क्योंकि दोनों पक्षों में मिथ्यात्व भी है?

नहीं। मैंने कहा *काम करती है*—यह अनवरत क्रिया है।

(२) क्या वर्तमान संघर्ष द्वितीय महायुद्ध के जैसे संघर्षों से मूलत: भिन्न है जिसमें 'कृपा' ने निश्चित और निर्णायक रूप से एक पक्ष में काम किया था—कम-से-कम सब मिलाकर?

तुम दो चीजों को आपस में मिलाये दे रहे हो, 'कृपा' की क्रिया और परिणाम जो निश्चित रूप से 'सत्य' की विजय का परिणाम है। ये बिलकुल भिन्न चीजें हैं और भिन्न स्तर पर हैं।

'सत्य' की बढ़ती विजय अपने-आप कुछ जटिल और मानव मन के लिए अप्रत्याशित परिणाम लाती है। मन हमेशा सुस्पष्ट परिणाम चाहता है। देश और काल दोनों में समग्र दृष्टि ही समझ सकती है।

१४ जून, १९६७

*

(समान पुरखों के होते हुए भी) अरबों और यहूदियों में चिरकाल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो परस्पर घृणा चली आ रही है और जिसके परिणाम-स्वरूप हमें कुछ समय से इस गतिरोध में से गुजरना पड़ रहा है, उसके लिए क्या कहा जाये?

शायद यह दुश्मनी केवल इसलिए है कि वे पड़ोसी हैं!

हिंसा और शत्रुता... जब भाई-भाई घृणा करते हैं, तो वे औरों की अपेक्षा कहीं अधिक घृणा करते हैं। श्रीअरविन्द ने कहा है : "घृणा कहीं अधिक प्रगाढ़ प्रेम की संभावना का संकेत है।"

क्या हम यह मान सकते हैं कि ये दो महान् संघर्षरत जातियां उन

'शक्तियों' का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें हमारी सभ्यता के भाग्य का निर्णय करना है?

यह संघर्ष हमारी सभ्यता के भविष्य का निर्णायक नहीं है।

मुसलमान और इज़राइली उन दो धर्मों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें भगवान् पर श्रद्धा अपने चरम पर है। बस, इजराइलियों को निर्वैयक्तिक भगवान् पर श्रद्धा होती है और मुसलमान व्यक्तिगत भगवान् पर श्रद्धा रखते हैं।

अरब बहुत आवेशमयी राजसिक प्रकृति के होते हैं। वे प्रायः ऐकांतिक रूप से आवेशों और कामनाओं से भरे प्राण में रहते हैं, जब कि इजराइली मुख्यतः मन में रहते हैं जिसमें बहुत व्यवस्था और उपलब्धि की शक्ति होती है, जो काफी विलक्षण है। इजराइली असाधारण संकल्प वाले बुद्धिप्रधान होते हैं। वे भावुक नहीं होते, यानी वे कमजोरी पसंद नहीं करते।

मुसलमान आवेगशील होते हैं और इजराइली विचारशील।

जून, १९६७

*

('श्रीअरविन्द सोसायटी', ओसाका, जापान के नाम संदेश)

जापान भौतिक जगत् में सौंदर्य का शिक्षक था।

उसे अपना यह विशेषाधिकार न त्यागना चाहिये।

आशीर्वाद।

१६ अक्तूबर, १९७२

*

सभी देश समान और तात्त्विक रूप से "एक" हैं।

उनमें से हर एक 'परम देव' के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

पार्थिव अभिव्यक्ति में उन सभी को अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति का समान अधिकार है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किसी देश का महत्त्व उसके आकार, उसकी

शक्ति या अन्य देशों पर उसके प्रभुत्व पर नहीं बल्कि 'सत्य' को स्वीकार करने और उसे अभिव्यक्त कर सकने में उसकी क्षमता के परिमाण पर निर्भर होता है।

माताजी के वचन-I में मुख्यतया श्रीअरविन्द के बारे में, अपने बारे में, श्रीअरविन्द आश्रम, ओरोवील, भारत और भारत से इतर राष्ट्रों के बारे में माताजी के संक्षिप्त लिखित वक्तव्य हैं। सन् १९१४ से १९७३ तक के लगभग साठ वर्ष के अन्तराल में लिखे ये वक्तव्य उनके परिपत्रों, सन्देशों और शिष्यों के साथ पत्रव्यवहार से संकलित किये गये हैं। इस खण्ड में अनेक वार्ताओं का भी समावेश है।

ISBN 978-81-7058-906-8
9 788170 589068

ISBN 978-81-7058-906-8
Rs 190